लेनिन

राष्ट्रीय नीति तथा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के प्रश्न

अनुवादक : त्रिभुवन नाथ

संपादक : नरेश वेदी

प्रकाशक की ओर से

इस संग्रह में जातीय प्रश्न के बारे में व्ला० इ० लेनिन की मुख्य कृतियां सम्मिलित हैं, जिनकी रचना उन्होंने १९१३ से १९१६ के काल में की थी, और 'जातियों या "स्वायत्तीकरण" का प्रश्न' शीर्षक उनका वह पत्र भी है, जो उन्होंने १९२२ के अंत में लिखा था।

इन कृतियों में जातीय समस्या के बारे में पार्टी के सिद्धांत और नीति की वैज्ञानिक व्याख्या की गयी है। यह नीति है – सभी उत्पीड़ित जातियों के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का समर्थन, उपनिवेशवाद के खिलाफ़ अविचल संघर्ष, प्रत्येक जाति के आत्मनिर्णय के अधिकार तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता की मांग के लिए, जातियों की पूर्ण समानता के लिए तथा सभी प्रकार के राष्ट्रीय उत्पीड़न तथा असमानता के खिलाफ़ संघर्ष।

В. И. Ленин

ВОПРОСЫ НАЦИОНАЛЬНОЙ ПОЛИТИКИ
И ПРОЛЕТАРСКОГО ИНТЕРНАЦИОНАЛИЗМА

На языке хинди

V. I. Lenin

QUESTIONS OF NATIONAL POLICY
AND
PROLETARIAN INTERNATIONALISM

in Hindi

पहला संस्करण : १९७४
दूसरा संशोधित संस्करण : १९८६
सोवियत संघ में मुद्रित

Л $\frac{0101020000-277}{014(01)-86}$ 360-86

विषय-सूची

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का जातीय कार्यक्रम

केंद्रीय समिति के सम्मेलन ने जातीय प्रश्न के बारे में एक प्रस्ताव* स्वीकृत किया है, जिसे सम्मेलन की 'विज्ञप्ति'[1] में प्रकाशित किया गया है, और कांग्रेस की कार्यसूची में जातीय कार्यक्रम का प्रश्न रखा है।

प्रतिक्रांति की पूरी नीति में, बुर्जुआज़ी की वर्ग-चेतना में तथा रूस की सर्वहारा सामाजिक-जनवादी पार्टी में जातीय प्रश्न क्यों और किस प्रकार इस समय उभरकर सामने आ गया है – यह प्रस्ताव में ही बड़ी तफ़सील से दिखाया गया है। परिस्थिति इतनी स्पष्ट है कि उसकी चर्चा करने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं है। हाल में मार्क्सवादी सैद्धांतिक साहित्य में (जिसमें स्तालिन के लेख को सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त है[2]) इस परिस्थिति और सामाजिक-जनवाद के जातीय कार्यक्रम के आधारभूत सिद्धांतों की चर्चा हुई है। इसलिए हमारा विचार है कि इस लेख में हमें अपने को शुद्धतः पार्टी के दृष्टिकोण से समस्या के निरूपण तक और उन व्याख्याओं तक सीमित रखना समीचीन होगा, जो स्तोलीपिन-मक्लाकोव के दमन-चक्र में पिस रहे क़ानूनी अख़बारों में प्रकाशित नहीं की जा सकतीं।

रूस में सामाजिक-जनवाद पुराने देशों, अर्थात यूरोपीय देशों के

---

* देखें व्ला० इ० लेनिन, 'पार्टी-कार्यकर्ताओं के साथ रू० सा० ज० म० पा० की केंद्रीय समिति के १६१३ के ग्रीष्म सम्मेलन के प्रस्ताव' में 'जातीय प्रश्न के बारे में प्रस्ताव'। – सं०

अनुभव तथा उस अनुभव की सैद्धांतिक अभिव्यक्ति, अर्थात मार्क्सवाद का ही दामन पकड़कर पनप रहा है। हमारे देश के तथा हमारे देश में सामाजिक-जनवाद की स्थापना के ऐतिहासिक युग के विशिष्ट लक्षण ये हैं: पहला, यूरोप से भिन्न हमारे देश में सामाजिक-जनवाद ने बुर्जुआ क्रांति से **पहले ही** रूप ग्रहण करना शुरू किया और वह उस क्रांति के **दौरान** रूप ग्रहण करता रहा। दूसरा, हमारे देश में सर्वहारा जनतंत्र को सामान्य बुर्जुआ तथा निम्न-बुर्जुआ जनतंत्र से पृथक करने का संघर्ष – मूलतः वही संघर्ष, जिसका प्रत्येक देश ने अनुभव किया है – पश्चिम में तथा हमारे देश में मार्क्सवाद की पूर्ण सैद्धांतिक विजय की अवस्थाओं में चलाया जा रहा है। इसलिए इस संघर्ष ने जो रूप लिया है, वह उतना मार्क्सवाद के लिए संघर्ष का रूप नहीं है, जितना "प्रायः मार्क्सवादी" शब्दावली की आड़ में छिपे हुए निम्न-बुर्जुआ सिद्धांतों के लिए अथवा ख़िलाफ़ संघर्ष का है।

"अर्थवाद"[3] (१८६५–१६०१) और "क़ानूनी मार्क्सवाद"[4] (१८६५–१६०१, १६०२) से लेकर आज तक यही स्थिति रही है। वे ही लोग, जो ऐतिहासिक सत्य से मुंह चुराते हैं, इन प्रवृत्तियों तथा मेंशेविज़्म[5] (१६०३–१६०७) और विसर्जनवाद[6] (१६०८–१६१३) के गहरे, घनिष्ठ संसर्ग तथा संबंध को भूल सकते हैं।

पुरानी 'ईस्क्रा'[7] को, जिसने १६०१–१६०३ के काल में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के लिए एक कार्यक्रम की तैयारी के संबंध में कार्य किया और उसे पूरा किया, और साथ ही रूसी मज़दूर आंदोलन के सिद्धांत तथा व्यवहार में मार्क्सवाद का प्राथमिक तथा मौलिक आधार स्थापित किया, जातीय प्रश्न के प्रसंग में निम्न-बुर्जुआ अवसरवाद से उसी प्रकार जूझना पड़ा, जिस प्रकार अन्य प्रश्नों के विषय में। यह अवसरवाद सर्वप्रथम बुंद[8] की राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों और ढुलमुलाहटों में प्रकट हुआ। पुरानी 'ईस्क्रा' ने बुंदीय राष्ट्रवाद के ख़िलाफ़ दृढ़ संघर्ष चलाया और इस चीज़ को भूल जाना फिर वही भुलक्कड़ बाबा बन जाने और अपने को रूस के समूचे सामाजिक-जनवादी मज़दूर आंदोलन के ऐतिहासिक तथा सैद्धांतिक आधारों से वियुक्त कर लेने के बराबर है।

दूसरी ओर, जब अगस्त, १६०३ में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का कार्यक्रम दूसरी कांग्रेस में अंततः स्वीकृत हुआ, वहां

एक ऐसा संघर्ष हुआ, जो कांग्रेस के कार्य-विवरण में अंकित नहीं है, क्योंकि यह संघर्ष **कार्यक्रम-आयोग** के अंदर हुआ था, जहां कांग्रेस के प्रायः सभी प्रतिनिधि आये थे – यह था कतिपय पोलिश सामाजिक-जनवादियों की "जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार" में शंका उत्पन्न करने की भोंडी कोशिशों के, अर्थात एक सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण ग्रहण कर अवसरवाद तथा राष्ट्रवाद की दिशा में भटक जाने की कोशिशों के ख़िलाफ़ संघर्ष।

और आज दस साल बाद यह संघर्ष इन्हीं दो मौलिक **दिशाओं** में चल रहा है, जिससे यह बात समान रूप से प्रत्यक्ष हो जाती है कि इस संघर्ष तथा रूस में जातीय प्रश्न को प्रभावित करनेवाली सभी वस्तुगत अवस्थाओं के बीच गहरा संबंध है।

आस्ट्रिया में ब्रून कांग्रेस (१८६६) में (क्रिस्टन, एल्लेनबोगेन, आदि द्वारा समर्थित तथा दक्षिणी स्लावों के मसौदे में अभिव्यक्त) "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" कार्यक्रम को **ठुकरा दिया गया था। प्रादेशिक** जातीय स्वायत्तता को स्वीकार किया गया था और सामाजिक-जनवादी प्रचार को सभी जातीय प्रदेशों की अनिवार्य संघबद्धता के पक्ष-पोषण तक सीमित कर देना "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" के विचार के साथ एक **समझौता** था। इस अभागे विचार के प्रमुख सिद्धांतकार स्वयं इस बात पर विशेष बल देते हैं कि उसे यहूदियों के मामले में **लागू नहीं किया जा सकता।**

रूस में **– हस्ब मामूल –** ऐसे लोग देखे गये हैं, जिन्होंने किसी छोटी-मोटी अवसरवादी ग़लती को विस्तार देना और उसे अवसरवादी नीति की एक प्रणाली के रूप में विकसित करना अपना धंधा बना लिया है। जिस प्रकार जर्मनी में बर्नस्टीन की प्रेरणा से रूस में दक्षिणपंथी कैडेटों[9] – स्त्रूवे, बुल्गाकोव, तुगान और उनकी मंडली – का आविर्भाव हुआ, उसी प्रकार (अति-सावधान काउत्स्की के शब्दों में) ओटो बावेर के "अंतर्राष्ट्रीयतावाद के विस्मरण" के **फलस्वरूप** रूस में **सभी** यहूदी बुर्जुआ पार्टियों और बहुतेरी निम्न-बुर्जुआ प्रवृत्तियों (बुंद तथा १६०७ में हुए समाजवादी-क्रांतिकारी राष्ट्रीय पार्टियों के **सम्मेलन**) ने "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" को **पूर्णतः** स्वीकार कर लिया। कोई चाहे, तो कह सकता है कि पिछड़ा हुआ रूस इसका उदाहरण उपस्थित करता है कि किस प्रकार पश्चिम-यूरोपीय अवसरवाद के

रोगाणु हमारी बर्बर ज़मीन पर सचमुच ही **महामारी** उत्पन्न कर देते हैं।

रूस में लोग यह कहने के शौक़ीन हैं कि बर्नस्टीन को यूरोप में "सहन" किया जाता है, परंतु वे इतना और कहना भूल जाते हैं कि "पवित्र" रूस जननी को छोड़कर संसार में कहीं भी बर्नस्टीन[10] ने स्त्रूवेवाद को जन्म नहीं दिया है, न ही "बावेरवाद" के प्रभाव से सामाजिक-जनवादियों ने यहूदी बुर्जुआज़ी के परिष्कृत राष्ट्रवाद को उचित ठहराया है।

"सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" यथार्थतः सबसे अधिक परिष्कृत और इसीलिए सबसे अधिक हानिप्रद राष्ट्रवाद की द्योतक है, वह इस बात की द्योतक है कि जातीय संस्कृति के नारे द्वारा तथा जाति-भेद के अनुसार स्कूलों के घोर हानिकारक, यहां तक कि जनतंत्रविरोधी, पृथक्करण के प्रचार द्वारा मज़दूरों को भ्रष्ट किया जाता है। संक्षेप में यह कार्यक्रम असंदिग्ध रूप से सर्वहारा के अंतर्राष्ट्रीयतावाद के प्रतिकूल है और वह केवल राष्ट्रवादी निम्न-बुर्जुआ वर्ग के आदर्शों के अनुकूल है।

परंतु **एक मामला** ऐसा है, जहां मार्क्सवादी, यदि वे जनतंत्र से तथा सर्वहारा से विश्वासघात नहीं करना चाहते, तो जातीय प्रश्न के अंतर्गत एक विशेष मांग की, अर्थात जातियों के आत्मनिर्णय के **अधिकार** (रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम का अनुच्छेद ९) की, यानी राजनीतिक अलगाव के अधिकार की हिमायत करने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं। सम्मेलन के प्रस्ताव में इस मांग की और उसके प्रेरक हेतु की इतनी विशद व्याख्या की गयी है कि ग़लतफ़हमी की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

इसीलिए कार्यक्रम के इस मुद्दे के प्रति जो आश्चर्यजनक रूप से मूर्खतापूर्ण तथा अवसरवादी आपत्तियां प्रकट की गयी हैं, उनका हम संक्षिप्त वर्णन ही करेंगे। इस सिलसिले में हम इस बात का ज़िक्र करेंगे कि इस कार्यक्रम के अस्तित्व के **दस वर्षों के दौरान** पार्टी की **एक भी शाखा ने**, एक भी जातीय संगठन ने, एक भी प्रादेशिक सम्मेलन ने, एक भी स्थानीय समिति ने, किसी कांग्रेस अथवा सम्मेलन के एक भी प्रतिनिधि ने अनुच्छेद ९ को बदलने या रद्द करने के सवाल को उठाने की कोशिश **नहीं** की है!!

इसे ध्यान में रखना ज़रूरी है। इससे यह फ़ौरन ज़ाहिर हो जाता है कि इस बात को लेकर जो आपत्तियां की जाती हैं, उनमें क्या रंचमात्र भी गंभीरता अथवा पार्टी-भावना है?

विसर्जनवादियों के समाचारपत्र के सेम्कोव्स्की महोदय को ही ले लीजिये। वह उस आदमी की तरह, जिसने एक पार्टी को विसर्जित कर दिया हो, बड़ी बेपरवाही से कहते हैं: "कतिपय कारणों से हम कार्यक्रम से अनुच्छेद ९ को बिलकुल ही निकाल देने के रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के प्रस्ताव का समर्थन नहीं करते" ('नोवाया राबोचाया गाज़ेता', अंक ७१)।

तो ये कारण गोपनीय हैं! परंतु जब हमारे कार्यक्रम के इतिहास के बारे में ऐसी नावाक़िफ़ियत हो, तो गोपनीयता के सिवा चारा ही क्या है? या जब यही सेम्कोव्स्की महोदय इंतिहा बेपरवाही से (पार्टी और पार्टी के कार्यक्रम का महत्व ही क्या है!) फ़िनलैंड को अपवाद के रूप में पेश करते हैं?

> "अगर पोलिश सर्वहारा एक राज्य के दायरे में रूस के समूचे सर्वहारा के साथ मिलकर संघर्ष चलाना चाहता है और इसके विपरीत पोलिश समाज के प्रतिक्रियावादी वर्ग पोलैंड को रूस से पृथक करना चाहते हैं और वे जनमत-संग्रह द्वारा इस पृथक्करण के पक्ष में बहुमत प्राप्त कर लेते हैं, ... तो हम क्या करेंगे: क्या हम रूसी सामाजिक-जनवादी केंद्रीय संसद में अपने पोलिश साथियों के साथ मिलकर पृथक्करण के **ख़िलाफ़** वोट देंगे या 'आत्मनिर्णय के अधिकार' का उल्लंघन न होने पाये, इस हेतु पृथक्करण के **पक्ष में** वोट देंगे?"

जब ऐसे भोले और बुरी तरह उलझे हुए सवाल उठाये जायें, तब सचमुच हमें क्या करना चाहिए?

प्रिय विसर्जनवादी महोदय, आत्मनिर्णय के **अधिकार** का अर्थ समस्या का केंद्रीय संसद द्वारा **नहीं**, बल्कि **अलग होनेवाली अल्पसंख्यक जाति** की संसद, विधान-सभा अथवा जनमत-संग्रह द्वारा समाधान है। जब नार्वे स्वीडन से अलग हुआ (१९०५), तब इस प्रश्न का निपटारा **केवल** नार्वे (जो आकार में स्वीडन का आधा है) ने ही किया था।

बच्चा भी देख सकता है कि सेम्कोव्स्की महोदय बुरी तरह उलझे हुए हैं।

"आत्मनिर्णय का अधिकार" एक **ऐसे प्रकार की** जनतांत्रिक व्यवस्था का परिचायक है, जिसमें जनतंत्र अपने सामान्य रूप में ही नहीं, बल्कि एक ऐसे विशिष्ट रूप में है कि अलगाव के प्रश्न को **ग़ैर-जनतांत्रिक तरीक़े से** हल **नहीं किया जा सकता**। सामान्यतः जनतंत्र उग्र तथा अत्याचारी राष्ट्रवाद के साथ मेल खा सकता है। सर्वहारा एक ऐसे जनतंत्र की मांग करता है, जिसके लिए किसी भी जाति को राज्य की सीमाओं में ज़बर्दस्ती रखना **वर्जित** है। इसलिए "आत्म-निर्णय के अधिकार का उल्लंघन न होने पाये, इस हेतु" हम "अलगाव के पक्ष में वोट देने के लिए" कर्तव्यबद्ध **नहीं** हैं, जैसा कि प्रपंची सेम्कोव्स्की महोदय मान लेते हैं, बल्कि इस पक्ष में वोट देने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं कि अलग होनेवाले प्रदेश को इस प्रश्न का **स्वयमेव** निपटारा करने का अधिकार हो।

प्रकटतः सेम्कोव्स्की महोदय की मानसिक क्षमतावाले व्यक्ति के लिए भी इस नतीजे पर पहुंचना कुछ मुश्किल नहीं है कि "तलाक़ के **अधिकार**" के लिए यह अपेक्षित नहीं है कि आप तलाक़ के लिए **वोट दें!** परंतु जो लोग अनुच्छेद ९ की आलोचना करते हैं, उनका यही दुर्भाग्य है – वे तर्कशास्त्र का ककहरा भी भूल जाते हैं।

जिस समय नार्वे स्वीडन से अलग हुआ, उस समय स्वीडनी सर्व-हारा – अगर वह राष्ट्रवादी निम्न-बुर्जुआज़ी के पीछे नहीं चलना चाहता था, तो – इसके लिए **कर्तव्यबद्ध** था कि वह नार्वे के उस बलात संयोजन के ख़िलाफ़ **वोट दे** और प्रचार करे, जिसकी इच्छा स्वीडन के पादरी और ज़मींदार करते थे। यह एक प्रत्यक्ष बात है और इसे समझना बहुत कठिन नहीं है। स्वीडन के राष्ट्रवादी जनतंत्रवादी उस प्रकार के आंदोलन से परहेज़ कर सकते थे, जिसकी आत्मनिर्णय के **अधिकार** का सिद्धांत **शासक, उत्पीड़क** जातियों के सर्वहारा से अपेक्षा करता है।

"अगर प्रतिक्रियावादी बहुमत में हों, तो हमें क्या करना चाहिए?" – सेम्कोव्स्की महोदय पूछते हैं। यह एक ऐसा सवाल है, जो तीसरी कक्षा के विद्यार्थी को ही ज़ेब देता है। यदि जनतांत्रिक मतदान से प्रतिक्रियावादियों का बहुमत स्थापित हो जाये, तो **रूसी** संविधान के बारे में क्या करना चाहिए? सेम्कोव्स्की महोदय बेकार, बेसिरपैर के सवाल पूछते हैं, जिनका मामले से कोई ताल्लुक़ नहीं है – ऐसे ही सवालों के बारे में कहा गया है कि सात बेवक़ूफ़ इतने सवाल कर सकते हैं कि सत्तर दानिशमंद उनका जवाब न दे सकें।

यदि जनतांत्रिक मतदान द्वारा प्रतिक्रियावादियों का बहुमत स्थापित हो जाये, तो दो में से एक बात हो सकती है और अमूमन होती भी है: या तो प्रतिक्रियावादियों के फ़ैसले की तामील की जाती है और उसके दुष्परिणामों की बदौलत जनसाधारण न्यूनाधिक तेज़ी से जनतंत्र के पक्ष में और प्रतिक्रियावादियों के ख़िलाफ़ हो जाते हैं; या जनतंत्र और प्रतिक्रिया के बीच के संघर्ष का निपटारा गृहयुद्ध द्वारा या अन्य प्रकार के युद्ध द्वारा होता है। जनतंत्र के अंतर्गत यह भी बिलकुल संभव है (और निस्संदेह सेम्कोव्स्की जैसे लोगों ने भी ऐसा सुना होगा)।

सेम्कोव्स्की महोदय हमको विश्वास दिलाते हैं कि आत्मनिर्णय के अधिकार को मान लेना "एकदम पक्के बुर्जुआ राष्ट्रवाद के हाथ में कठपुतली बन जाना है"। यह एक निरी बचकाना बेवक़ूफ़ी है, क्योंकि इस **अधिकार** की मान्यता न तो अलगाव के **ख़िलाफ़** प्रचार और आंदोलन का निषेध करती है, न ही बुर्जुआ राष्ट्रवाद के भंडाफोड़ का। परंतु यह बिलकुल ही निर्विवाद है कि अलगाव के **अधिकार** से इन्कार करना **एकदम पक्के महत रूसी यमदूतसभाई[11] राष्ट्रवाद** "के हाथ में कठपुतली बन जाना है"!

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की हास्यास्पद ग़लती का लुब्बेलुबाब, जिसके लिए बहुत दिन पहले जर्मन और रूसी (अगस्त, १९०३ में) सामा-जिक-जनवादियों ने उनका मज़ाक़ उड़ाया था, इस बात में निहित है कि उत्पीड़ित जातियों के बुर्जुआ राष्ट्रवाद के हाथों में कठपुतली बन जाने के भय से लोग **उत्पीड़क** जाति के बुर्जुआ ही नहीं, यमदूतसभाई राष्ट्रवाद के हाथों में भी कठपुतली बन जाते हैं।

यदि सेम्कोव्स्की महोदय पार्टी-इतिहास तथा पार्टी-कार्यक्रम से संबंधित मामलों में इतने कोरे न होते, तो उन्होंने समझा होता कि उनका यह कर्तव्य है कि वह प्लेख़ानोव का खंडन करें, जिन्होंने **ग्यारह वर्ष पहले** 'ज़ार्या'[12] में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम के मसौदे की (जो १९०३ में कार्यक्रम बन गया) हिमायत करते हुए आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता को एक **विशेष मुद्दे** के रूप में ग्रहण किया (पृ० ३८) और उसके विषय में यह लिखा:

"यह मांग, जो बुर्जुआ जनवादियों के लिए सिद्धांत रूप में भी अनिवार्यतः मान्य नहीं है, हम सामाजिक-जनवादियों के लिए अनिवार्य है। यदि हम महत रूसी जाति के अपने देशवासियों के जातीय पूर्वग्रहों से टकराने के भय से इस मांग को भूल जायें या उसे उठाने से कतरायें, तो विश्व सामाजिक-जनवाद का जुझारू नारा 'दुनिया के मज़दूरो, एक हो!' हमारे लबों पर एक शर्मनाक झूठ बन जायेगा!"

प्लेखानोव ने बहुत दिन पहले, 'ज़ार्या' के ज़माने में ही वह बुनियादी तर्क उपस्थित किया था, जिसे सम्मेलन के प्रस्ताव में विस्तार से विकसित किया गया था। पिछले ग्यारह वर्षों से सेम्कोव्स्की महोदय जैसे लोगों ने इस तर्क की ओर ध्यान दिलाने की कोशिश नहीं की है। रूस में महत रूसी लोग आबादी का ४३ प्रतिशत हैं, परंतु महत रूसी राष्ट्रवाद शेष ५७ प्रतिशत पर शासन करता है और सभी जातियों का उत्पीड़न करता है। राष्ट्रीय-उदारवादियों (स्त्रूवे-मंडली, प्रगतिवादियों[13], इत्यादि) ने अभी से राष्ट्रीय-प्रतिक्रियावादियों के साथ सांठ-गांठ कर ली है और **राष्ट्रीय**-जनतंत्र के "प्रथम अग्रदूत" प्रकट हो गये हैं (अगस्त, १९०६ में पेशेखोनोव महोदय ने रूसी किसान के राष्ट्रवादी पूर्वग्रहों के प्रति सावधान दृष्टिकोण ग्रहण करने के बारे में जो अपील की थी, उसका स्मरण कीजिये)।

रूस में केवल विसर्जनवादी ही यह समझते हैं कि बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति समाप्त हो चुकी है, और जातीय आंदोलन ही सारी दुनिया में सदा से **ऐसी** क्रांति के सहवर्ती रहे हैं और अब भी हैं। विशेषतः रूस में, अनेक सीमावर्ती प्रदेशों में, उत्पीड़ित जातियों का अस्तित्व है, जिन्हें पड़ोस के राज्यों में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। ज़ारशाही पड़ोसी राज्यों से अधिक प्रतिक्रियावादी है, वह निर्बाध आर्थिक विकास के रास्ते में **सबसे बड़ा** रोड़ा है और महत रूसी राष्ट्रवाद का अपनी भरसक अधिक से अधिक पोषण करती है। बेशक, एक मार्क्सवादी के लिए बड़े राज्य छोटे राज्यों की अपेक्षा सदा श्रेयस्कर हैं, **बशर्ते कि अन्य सभी अवस्थाएं समान हों**। परंतु यह मानना हास्यास्पद ही नहीं, प्रतिक्रियावादी भी है कि ज़ारशाही राजतंत्र के तहत जो अवस्थाएं हैं, वे किसी भी यूरोपीय देश अथवा अधिकांश एशियाई देशों की अवस्थाओं के समान हो सकती हैं।

इसलिए मौजूदा रूस में जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को न मानना असंदिग्ध रूप से अवसरवाद है और अब भी सर्वशक्तिमान बने हुए यमदूतसभाई महत रूसी राष्ट्रवाद के खिलाफ़ संघर्ष करने से इन्कार करना है।

'सोत्सिआल-देमोक्रात', अंक ३२,
१५ (२८) दिसंबर, १९१३।

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
पांचवां रूसी संस्करण,
खंड २४, पृ० २२३–२२९

जातीय प्रश्न पर आलोचनात्मक टीकाएं[14]

यह प्रत्यक्ष है कि जातियों के प्रश्न ने इस समय रूस के सार्वजनिक जीवन की समस्याओं में प्रमुख स्थान ले लिया है। प्रतिक्रियावादियों के आक्रामक राष्ट्रवाद, प्रतिक्रांतिकारी बुर्जुआ उदारवाद का राष्ट्रवाद में (विशेष रूप से महत रूसी और पोलिश, यहूदी, उक्रइनी, आदि राष्ट्रवाद में) संक्रमण और अंततः विभिन्न "जातियों के" (यानी ग़ैर-महत रूसी) सामाजिक-जनवादियों की राष्ट्रवादी ढुलमुलाहट का बढ़ना, जो पार्टी कार्यक्रम का उल्लंघन करने की हद तक चली गयी है – इन तमाम चीज़ों ने जातियों के प्रश्न की ओर पहले से ज्यादा ध्यान देना हमारे लिए असंदिग्ध रूप से आवश्यक बना दिया है।

प्रस्तुत लेख का एक विशेष उद्देश्य है – जातीय प्रश्न पर मार्क्सवादियों और मार्क्सवादी होने का दम भरनेवालों की कार्यक्रम संबंधी ठीक इसी ढुलमुलाहट पर इसके सामान्य संदर्भ में विचार करना। 'सेवेरनाया प्राव्दा'[15] के अंक २९ में (५ सितंबर, १९१३, 'भाषा के प्रश्न पर उदारवादी तथा जनतंत्रवादी') मुझे जातियों के प्रश्न पर उदारवादियों के अवसरवाद के बारे में कहने का मौक़ा मिला था; मेरे इस लेख पर अवसरवादी यहूदी अख़बार 'त्साइत'[16] ने श्री फ़० लीबमैन के लेख में प्रहार किया था। दूसरी ओर, जातियों के प्रश्न पर रूसी मार्क्सवादियों के कार्यक्रम की उक्रइनी अवसरवादी श्री लेव युरकेविच द्वारा आलोचना की गयी है ('द्ज्विन'[17], १९१३, अंक ७–८)। इन दोनों लेखकों ने इतने सारे प्रश्नों का उल्लेख किया

है कि उन्हें उत्तर देने के लिए हमें विषय के सर्वथा विभिन्न पहलुओं की चर्चा करनी पड़ रही है। मेरे ख़याल में 'सेवेरनाया प्राव्दा' से लेख को दुबारा छापकर शुरूआत करना सबसे अधिक सुविधाजनक होगा।

१. भाषा के प्रश्न पर उदारवादी तथा जनतंत्रवादी

अख़बारों ने कई मौक़ों पर काकेशिया के गवर्नर की रिपोर्ट की चर्चा की है, जो अपनी यमदूतसभाई भावना के लिए नहीं, अपितु भीरुतापूर्ण "उदारवाद" के लिए उल्लेखनीय है। अन्य बातों के अलावा गवर्नर ग़ैर-रूसी जातियों के कृत्रिम रूसीकरण पर आपत्ति करते हैं। काकेशिया में ग़ैर-रूसी जातियों के प्रतिनिधि अपने बच्चों को रूसी सिखाने का **स्वयं** प्रयास कर रहे हैं, इसका एक उदाहरण, आर्मेनियाई चर्च-स्कूल हैं, जिनमें रूसी की शिक्षा अनिवार्य नहीं है।

रूस में एक सबसे ज्यादा प्रसारित उदार अख़बार – 'रूस्स्कोये स्लोवो'[18] (अंक १९८) – ने इसकी तरफ़ इशारा किया है और यह सही निष्कर्ष निकाला है कि रूस में रूसी भाषा के प्रति वैरभाव का "एकमात्र स्रोत" इस भाषा का "कृत्रिम" (कहना चाहिए था – बलात) रोपण है।

"रूसी भाषा की नियति के बारे में चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं अपने लिए पूरे रूस में मान्यता प्राप्त कर लेगी," अख़बार लिखता है। और यह सच है, इसलिए कि आर्थिक विनिमय के तक़ाज़े एक ही राज्य में बसनेवाली जातियों को (जब तक वे साथ-साथ रहना चाहें) बहुसंख्या की भाषा सीखने के लिए मजबूर करेंगे। रूस में राजनीतिक व्यवस्था जितनी अधिक जनतांत्रिक बनती जायेगी, पूंजीवाद का उतना ही सशक्त, द्रुत तथा व्यापक विकास होगा, आर्थिक विनिमय के तक़ाज़े आम वाणिज्यिक संबंधों के लिए सबसे ज्यादा सुविधाजनक भाषा का अध्ययन करने के लिए विभिन्न जातियों को उतने ही ज़ोरदार ढंग से प्रेरित करेंगे।

परंतु उदार अख़बार अपने ही गाल पर थप्पड़ लगाने और अपनी उदारवादी असंगति को प्रदर्शित करने में देर नहीं करता।

"वे भी, जो रूसीकरण का विरोध करते हैं," अख़बार लिखता है, "इससे शायद ही इन्कार करें कि रूस जैसे विराट देश में एक ही राजभाषा का होना आवश्यक है और यह भाषा ... केवल रूसी ही हो सकती है।"

सिर के बल खड़ा कर दिया गया तर्क! बित्ते भर के स्विट्ज़रलैंड को इससे कोई नुक़सान नहीं, अपितु लाभ ही हुआ है कि उसके पास राजभाषा **एक** नहीं, बल्कि तीन हैं – जर्मन, फ़्रांसीसी तथा इतालवी। स्विट्ज़रलैंड में ७० प्रतिशत आबादी जर्मनों की (रूस में ४३ प्रतिशत रूसी हैं), २२ प्रतिशत फ़्रांसीसियों की (रूस में १७ प्रतिशत उक्रइनी हैं) तथा ७ प्रतिशत इतालवियों की है (रूस में ६ प्रतिशत पोल तथा ४.५ प्रतिशत बेलोरूसी हैं)। अगर स्विट्ज़रलैंड में इतालवी अपनी साझी संसद में बहुधा फ़्रांसीसी में बोलते हैं, तो वे ऐसा किसी जंगली पुलिस क़ानून (स्विट्ज़रलैंड में ऐसा कोई क़ानून नहीं है) के डर से नहीं करते, अपितु महज़ इसलिए कि किसी जनतांत्रिक राज्य में सभ्य नागरिक स्वयं ऐसी भाषा को तरजीह देते हैं, जिसे बहुसंख्या समझती हो। फ़्रांसीसी भाषा इतालवियों में घृणा पैदा नहीं करती, इसलिए कि यह एक स्वतंत्र, सभ्य जाति की भाषा है, घिनौने पुलिस उपायों द्वारा थोपी गयी भाषा नहीं।

तो फिर "विराट" रूस को, एक कहीं अधिक विविधतापूर्ण, बुरी तरह पिछड़े हुए देश को किसी एक भाषा के लिए किसी भी तरह का विशेषाधिकार बरक़रार रखकर अपने विकास को क्यों **निरुद्ध करना चाहिए?** उदारवादी सज्जनो, क्या बात इसके उलट नहीं होनी चाहिए? क्या रूस को, यदि वह यूरोप की बराबरी पर पहुंचना चाहता है, प्रत्येक विशेषाधिकार का शीघ्रातिशीघ्र, यथासंभव पूर्ण रूप से तथा यथासंभव निर्णायक ढंग से ख़ात्मा नहीं कर देना चाहिए?

यदि सारे विशेषाधिकार लुप्त हो जायें, यदि किसी एक भाषा का थोपा जाना ख़त्म हो जाये, तो सारे स्लाव आसानी से और शीघ्रतापूर्वक एक-दूसरे को समझना सीख लेंगे और इस "डरावने" विचार से भयभीत नहीं होंगे कि साझी संसद में विभिन्न भाषाओं में भाषण सुनायी देंगे। आर्थिक विनिमय के तक़ाज़े ख़ुद इसका **फ़ैसला करेंगे** कि संबद्ध देश की किस भाषा को जानना वाणिज्यिक लेन-देन के हितार्थ

बहुसंख्या के लिए लाभकर है। जनतंत्र जितना अधिक सुसंगत होगा और उसके फलस्वरूप पूंजीवाद का विकास जितना ही अधिक द्रुत होगा, विभिन्न जातियों की आबादी द्वारा स्वेच्छया स्वीकृत किये जाने के कारण यह फ़ैसला उतना ही अधिक दृढ़ होगा, और उसका स्वीकरण उतना ही अधिक द्रुत तथा व्यापक होगा।

उदारवादी वैसा ही नज़रिया अपनाते हैं, जैसा वे सभी राजनीतिक प्रश्नों के प्रति अपनाते हैं: वे पाखंडी फेरीवालों की तरह एक हाथ (खुलेआम) जनतंत्र की ओर और दूसरा हाथ (पीठ पीछे) सामंतवादियों और पुलिस की ओर बढ़ाते हैं। हम विशेषाधिकारों के विरुद्ध हैं – उदारवादी चिल्लाते हैं, परंतु चोरी-छिपे पहले एक, फिर दूसरे विशेषाधिकार के लिए सामंतवादियों से मोल-तोल करते हैं।

ऐसा है **समस्त** उदार-बुर्जुआ राष्ट्रवाद – न केवल महत रूसी राष्ट्रवाद (वह तो अपने हिंसात्मक चरित्र तथा पुरिश्केविचों के साथ नाते-रिश्ते के कारण सबसे बुरा है), बल्कि पोलिश, यहूदी, उक्रइनी, जार्जियाई तथा हर और राष्ट्रवाद का स्वरूप। आस्ट्रिया तथा रूस, दोनों जगह की **सभी** जातियों का बुर्जुआ वर्ग "जातीय संस्कृति" के नारे की आड़ में **दरअसल** मज़दूरों में फूट डालने, जनतंत्र को अशक्त बनाने, जनता के अधिकारों तथा जनता की स्वतंत्रता की बिक्री के बारे में सामंतवादियों से मोल-तोल करने की नीति पर चल रहा है।

मज़दूर जनतंत्र का नारा "जातीय संस्कृति" नहीं, बल्कि जनतंत्र तथा विश्व मज़दूर आंदोलन की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति है। बुर्जुआ वर्ग विभिन्न "सकारात्मक" जातीय कार्यक्रमों से जनता की आंखों में धूल झोंकता रहे। सचेत मज़दूर बुर्जुआज़ी को उत्तर देता है – जातीय समस्या का केवल एक ही हल है (जहां तक उसे पूंजीवादी दुनिया, मुनाफ़े, झगड़ों तथा शोषण की दुनिया में सामान्यतया हल किया जा सकता है) और यह हल है सुसंगत जनतंत्र।

प्रमाण: पश्चिमी यूरोप में स्विट्ज़रलैंड – प्राचीन संस्कृतिवाला देश तथा पूर्वी यूरोप में फ़िनलैंड – तरुण संस्कृतिवाला देश।

मज़दूर जनतंत्र का जातियों संबंधी कार्यक्रम है – किसी एक जाति अथवा किसी एक भाषा के लिए क़तई विशेषाधिकार नहीं; जातियों के राजनीतिक आत्मनिर्णय, अर्थात राज्यों के रूप में उनके पृथक्करण के प्रश्न का पूर्णतया स्वतंत्र, जनतांत्रिक विधियों द्वारा हल; पूरे

राज्य के लिए ऐसे क़ानून का जारी किया जाना, जिसके बल पर किसी एक जाति के लिए किसी भी तरह का विशेषाधिकार लागू करनेवाली अथवा जातियों के समान अधिकारों का या किसी अल्पसंख्यक जाति के अधिकारों का उल्लंघन करनेवाली किसी भी कार्रवाई (ज़ेम्स्त्वोई[19], शहरी अथवा सामुदायिक, आदि) को ग़ैर-क़ानूनी तथा प्रभावहीन घोषित कर दिया जायेगा तथा राज्य के किसी भी नागरिक को यह मांग करने का अधिकार होगा कि ऐसी कार्रवाई को असांविधानिक मानकर रद्द कर दिया जाये तथा जो लोग उसे अमल में लाने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें सज़ा दी जाये।

भाषा, आदि के प्रश्न पर विभिन्न बुर्जुआ पार्टियों के राष्ट्रवादी कलह-तक़रार के मुक़ाबले मज़दूर जनतंत्र किसी भी प्रकार के बुर्जुआ राष्ट्रवाद के विपरीत **समस्त** जातियों के मज़दूरों के **समस्त** मज़दूर संगठनों, ट्रेड-यूनियनों, सहकारी, उपभोक्ता, शैक्षणिक तथा अन्य संगठनों में निरपेक्ष एकता तथा पूर्ण विलय की मांग रखता है। केवल ऐसी एकता तथा विलय ही जनतंत्र की रक्षा कर सकते हैं और पूंजी के विरुद्ध – जो पहले ही अंतर्राष्ट्रीय बन चुकी है तथा अधिकाधिक बनती जा रही है – मज़दूरों के हितों की रक्षा कर सकते हैं, मानवजाति की नूतन जीवन-प्रणाली के, जो समस्त विशेषाधिकारों तथा समस्त शोषण के प्रतिकूल है, विकास के हितों की रक्षा कर सकते हैं।

२. "जातीय संस्कृति"

जैसाकि पाठक देखता है, 'सेवेरनाया प्राव्दा' के एक लेख ने उदार बुर्जुआज़ी की, जो जातियों के प्रश्न के मामले में एक हाथ सामंतवादियों तथा पुलिस की ओर बढ़ाता है, असंगति तथा अवसरवाद दर्शाने के लिए एक उदाहरण, अर्थात एक राजभाषा के प्रश्न, का उपयोग किया। सब जानते हैं कि एक राजभाषा के प्रश्न के अलावा उदार बुर्जुआज़ी दूसरे बहुत-सारे प्रश्नों के मामले में भी इतने ही ग़द्दारीभरे, पाखंडपूर्ण ढंग से (उदारवाद के हितों के दृष्टिकोण तक से) पेश आता है।

इसका निष्कर्ष? निष्कर्ष यह है कि **हरेक** उदार-बुर्जुआ राष्ट्रवाद

मज़दूरों में अधिकतम भ्रष्टाचार पैदा करता है तथा स्वतंत्रता और सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के ध्येय को अधिकतम हानि पहुंचाता है। यह बुर्जुआ (तथा बुर्जुआ-सामंती) प्रवृत्ति "जातीय संस्कृति" के नारे की आड़ में **छुपाये जाने** के कारण और भी अधिक ख़तरनाक है। जातीय संस्कृति – रूसी, पोलिश, यहूदी, उक्रइनी, आदि – के नाम पर ही **सारी** जातियों के यमदूतसभाई, पादरी-पुरोहित तथा बुर्जुआज़ी भी अपने घिनौने और प्रतिक्रियावादी कार्य कर रहे हैं।

ऐसी है आधुनिक जातीय जीवन की यथार्थता, अगर उसे मार्क्स-वादी दृष्टिकोण से, यानी वर्ग संघर्ष के दृष्टिकोण से देखा जाये, अगर नारों की तुलना अर्थहीन "आम सिद्धांतों", उद्घोषणाओं तथा लफ़्फ़ाज़ी से नहीं, बल्कि वर्गों के हितों तथा नीतियों से की जाये।

जातीय संस्कृति का नारा बुर्जुआ (और बहुधा यमदूतसभाई तथा पुरोहिती भी) छल-कपट है। हमारा नारा है जनतंत्र तथा विश्व-व्यापी मज़दूर आंदोलन की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति।

यहां बुंदपंथी श्री लीबमैन मैदान में कूद पड़ते हैं और इस घातक शब्दवर्षा से मुझे ख़त्म कर देते हैं:

> "जो कोई जातीय प्रश्न से ज़रा भी परिचित है, वह जानता है कि अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति ग़ैर-राष्ट्रीय संस्कृति (राष्ट्रीय रूपहीन संस्कृति) नहीं है; ग़ैर-राष्ट्रीय संस्कृति, जिसे रूसी, यहूदी या पोलिश नहीं, बल्कि केवल शुद्ध संस्कृति होना चाहिए, बकवास है; अंतर्राष्ट्रीय विचार मज़दूर वर्ग को तभी आकर्षित कर सकते हैं कि वे मज़दूर द्वारा बोली जानेवाली भाषा के और जिन ठोस जातीय परिस्थितियों के अंतर्गत वह रहता है, उनके अनुकूल ढले हुए हों; मज़दूर को अपनी जातीय संस्कृति की अवस्था तथा विकास के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए, क्योंकि उसके ज़रिये और सिर्फ़ उसके ज़रिये ही उसे 'जनतंत्र तथा विश्व मज़दूर आंदोलन की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति' में भाग लेने की संभावना प्राप्त होती है। यह तो बहुत पहले से सुविदित है, परंतु व्ला० इ० इस सब की तरफ़ से कान बंद कर लेते हैं।"

इस ठेठ बुंदपंथी तर्क पर विचार करें, जो, अगर आप मान लें, मेरी मार्क्सवादी स्थापना को ध्वस्त करने के लिए अभीष्ट है। एक ऐसे व्यक्ति की, जो "जातीय प्रश्न से परिचित" है, परम आत्म-

विश्वासपूर्ण मुद्रा में यह बुंदपंथी महाशय साधारण बुर्जुआ विचारों को हमारे सामने "बहुत पहले से सुविदित" स्वयंसिद्ध सत्यों के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

जी हां, अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति ग़ैर-राष्ट्रीय नहीं होती, प्रिय बुंदपंथी। किसी ने भी नहीं कहा है कि वह ग़ैर-राष्ट्रीय होती है। किसी ने भी कोई "शुद्ध" संस्कृति, चाहे वह पोलिश हो, या यहूदी, रूसी, आदि, घोषित नहीं की है, और इसलिए आपके खोखले शब्दों की घमरौल महज़ पाठक का ध्यान बंटाने और मसले को टुनटुनाते शब्दों से अस्पष्ट करने की कोशिश भर है।

प्रत्येक जातीय संस्कृति में जनतांत्रिक तथा समाजवादी संस्कृति के **तत्व**, भले ही अविकसित रूप में, मौजूद होते हैं, इसलिए कि प्रत्येक जाति में मेहनतकश तथा शोषित जनसाधारण होते हैं, जिनके जीवन की अवस्थाएं जनतंत्र तथा समाजवाद की विचारधारा को अवश्यंभावी रूप से जन्म देती हैं। परंतु **प्रत्येक** जाति में बुर्जुआ संस्कृति भी होती है (तथा अधिकांश जातियों में यमदूतसभाई तथा पुरोहिती संस्कृति भी) – केवल "तत्वों" के रूप में ही नहीं, अपितु **अभिभावी** संस्कृति के रूप में भी। इसलिए "जातीय संस्कृति" सामान्य रूप में ज़मींदारों, पुरोहितों तथा बुर्जुआज़ी की संस्कृति **है**। इस आधारभूत तथा मार्क्सवादी के लिए स्वयंसिद्ध सत्य को इन बुंदपंथी ने पृष्ठभूमि में रखा, उसे शब्दों की अपनी घमरौल में "डुबो दिया", अर्थात वर्गों के बीच खाई को प्रकट करने और स्पष्ट करने **के बजाय** उसे वस्तुतः पाठक के लिए और अस्पष्ट कर दिया। यह बुंदपंथी **वस्तुतः** ऐसे बुर्जुआ के रूप में पेश आये, जिसके सारे हित ग़ैर-वर्गीय जातीय संस्कृति में विश्वास के प्रसार का तक़ाज़ा करते हैं।

"जनतंत्र तथा विश्व मज़दूर आंदोलन की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति" का नारा रखते समय हम **प्रत्येक** जातीय संस्कृति से **केवल** उसके जनतांत्रिक तथा समाजवादी तत्वों को लेते हैं, उन्हें **केवल** तथा **असंदिग्ध रूप में प्रत्येक** जाति की बुर्जुआ संस्कृति तथा बुर्जुआ राष्ट्रवाद के मुक़ाबले में लेते हैं। कोई भी जनतंत्रवादी, मार्क्सवादी की तो बात ही क्या, इससे इन्कार नहीं करता कि सभी भाषाओं का बराबरी का दरजा होना चाहिए या "देशी" बुर्जुआज़ी से देशी भाषा में वाद-विवाद करना, चर्चविरोधी या बुर्जुआविरोधी विचारों का "देशी"

किसान समुदाय या निम्न-बुर्जुआज़ी के बीच देशी भाषा में प्रचार करना आवश्यक है। इस बारे में कहने की ज़रूरत ही नहीं, परंतु बुंदपंथी इन अकाट्य सत्यों का विवादास्पद प्रश्न को, यानी असल प्रश्न को अस्पष्ट करने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

प्रश्न यह है कि क्या मार्क्सवादी के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जातीय संस्कृति का नारा देना उचित है, अथवा क्या अपने को समस्त स्थानीय तथा जातीय विशेषताओं के अनुकूल "ढालते हुए" मज़दूरों के **अंतर्राष्ट्रीयतावाद** के नारे का तमाम भाषाओं में प्रचार करके अनिवार्य रूप से जातीय संस्कृति के नारे का **विरोध** करना चाहिए।

"जातीय संस्कृति" के नारे का महत्व किसी छोटे-मोटे बुद्धिजीवी के इस नारे की "उसके ज़रिये किसी अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति के विकास के अर्थ में" "व्याख्या करने" के वचन या नेक इरादे से निर्धारित नहीं होता। इसे इस तरह देखना बालसुलभ आत्मपरकता होगी। जातीय संस्कृति के नारे का महत्व संबद्ध देश तथा संसार के तमाम देशों में तमाम वर्गों के वस्तुपरक विन्यास द्वारा निर्धारित होता है। बुर्जुआज़ी की जातीय संस्कृति एक **तथ्य** है (और, मैं दुहराता हूं, बुर्जुआ वर्ग सर्वत्र ज़मींदारों तथा पादरी-पुरोहितों के साथ सौदेबाज़ी करता है)। आक्रामक बुर्जुआ राष्ट्रवाद मज़दूरों को मदहोश करता, उन्हें विमूढ़ बनाता, उनमें फूट डालता है, ताकि अपनी उंगली पर नचा सके – ऐसा है आधुनिक युग का आधारभूत तथ्य।

जो लोग सर्वहारा की सेवा करना चाहते हैं, उन्हें समस्त जातियों के मज़दूरों को ऐक्यबद्ध करना चाहिए, बुर्जुआ राष्ट्रवाद के, "**अपने**" और पराये, दोनों के विरुद्ध अडिगतापूर्वक लड़ना चाहिए। जो लोग जातीय संस्कृति के नारे की पैरोकारी करते हैं, उनका स्थान मार्क्स-वादियों के बीच नहीं, अपितु राष्ट्रवादी निम्न-बुर्जुआज़ी के बीच है।

एक ठोस मिसाल लें। क्या कोई महत रूसी मार्क्सवादी जातीय, महत रूसी संस्कृति का नारा स्वीकार कर सकता है? नहीं। जो भी ऐसा करता है, उसे मार्क्सवादियों के बीच नहीं, अपितु राष्ट्रवादियों के बीच स्थान ग्रहण करना चाहिए। हमारा कार्यभार है महत रूसियों की अभिभावी, यमदूतसभाई तथा बुर्जुआ जातीय संस्कृति से जूझना और अंतर्राष्ट्रीयतावादी भावना तथा अन्य देशों के मज़दूरों के साथ घनिष्ठतम संघबद्ध होकर उन अंकुरों को विकसित करना, जो हमारे

जनतांत्रिक तथा मज़दूर आंदोलन के इतिहास में विद्यमान हैं। अपने महत रूसी ज़मींदारों तथा बुर्जुआज़ी से लड़ना, उनकी "संस्कृति" के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीयतावाद के नाम पर लड़ना और अपने को पुरिश्केविचों तथा स्त्रूवेओं की विशेषताओं के अनुसार "ढालकर" लड़ना – यह है आपका कार्यभार, जातीय संस्कृति के नारे का प्रचार करना या उसे स्वीकृति देना नहीं।

यही बात सबसे ज़्यादा उत्पीड़ित तथा सतायी जानेवाली जाति, यहूदियों, पर लागू होती है। यहूदी जातीय संस्कृति यहूदी रब्बियों तथा बुर्जुआज़ी का नारा है, हमारे दुश्मनों का नारा है। परंतु यहूदी संस्कृति तथा समग्र रूप में यहूदी इतिहास में दूसरे तत्व भी हैं। दुनिया के एक करोड़ पांच लाख यहूदियों में से कोई आधे गैलीशिया तथा रूस में, पिछड़े हुए और अर्धबर्बर देशों में रहते हैं, जहां यहूदियों को **ज़बरदस्ती** एक वर्ण की स्थिति में रखा जाता है। बाक़ी आधे सभ्य संसार में रहते हैं और वहां यहूदी एक पृथक्कृत वर्ण की तरह नहीं रहते। वहां यहूदी संस्कृति के महान विश्वव्यापी प्रगतिशील गुण सुस्पष्ट रूप से व्यक्त होते हैं – उसका अंतर्राष्ट्रीयतावाद, युग के अग्रगामी आंदोलनों के साथ उसकी एकात्मकता (जनतांत्रिक तथा सर्वहारा आंदोलनों में यहूदियों का प्रतिशत आबादी में उनके प्रतिशत से सामान्यतया सर्वत्र अधिक है)।

जो कोई प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से यहूदी "जातीय संस्कृति" का नारा उठाता है, वह (उसका नेक इरादा चाहे कुछ भी हो) सर्वहारा का दुश्मन, यहूदियों में **जो कुछ जीर्ण-शीर्ण तथा वर्णगत है,** उसका समर्थक, यहूदी रब्बियों और बुर्जुआज़ी का संगी-साथी है। इसके विपरीत, वे यहूदी मार्क्सवादी, जो रूसी, लिथुआनी, उक्रइनी तथा अन्य मज़दूरों से अंतर्राष्ट्रीय मार्क्सवादी संगठनों में घुलते-मिलते हैं तथा मज़दूर आंदोलन की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में अपना योग देते हैं (रूसी और यहूदी, दोनों भाषाओं में) – वे यहूदी बुंद के पार्थक्यवाद के बावजूद "जातीय संस्कृति" के नारे के विरुद्ध लड़ते हुए यहूदियों की सर्वश्रेष्ठ परंपराओं को जारी रखे हुए हैं।

बुर्जुआ राष्ट्रवाद तथा सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद – ये परस्पर कट्टर शत्रुता रखनेवाले दो नारे हैं, जो संपूर्ण पूंजीवादी जगत में दो महान वर्ग शिविरों के अनुरूप हैं और जातीय प्रश्न में **दो** नीतियां (यही

नहीं, दो विश्वदृष्टिकोण) व्यक्त करते हैं। जातीय संस्कृति के नारे की पैरोकारी करते तथा उसके आधार पर तथाकथित "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" की एक पूरी योजना और व्यावहारिक कार्यक्रम बनाते हुए बुंदपंथी **व्यवहार में** मज़दूरों के बीच बुर्जुआ राष्ट्रवाद का साधन करते हैं।

३. "स्वांगीकरण" का राष्ट्रवादी हौआ

स्वांगीकरण, अर्थात जातीय विशेषताओं के विलोपन तथा दूसरी जाति द्वारा आत्मसात्करण का प्रश्न बुंदपंथियों और उनके हमख़यालों के राष्ट्रवादी ढुलमुलपन के परिणामों को अत्यंत प्रभावशाली रूप से दर्शाता है।

श्री लीबमैन, जो बुंदपंथियों के आम तर्कों, या कहना चाहिए, तरीक़ों को सही ढंग से प्रस्तुत करते तथा दुहराते हैं, संबद्ध राज्य में तमाम जातियों के मज़दूरों की संयुक्त मज़दूर संगठनों में ऐक्यबद्धता तथा विलय की मांग को (देखें 'सेवेरनाया प्राव्दा' के लेख का अंतिम भाग) "**स्वांगीकरण का पुराना क़िस्सा**" कहते हैं।

"फलस्वरूप," श्री फ़० लीबमैन 'सेवेरनाया प्राव्दा' के लेख के अंतिम भाग के सिलसिले में कहते हैं, "इस प्रश्न का कि आप किस जाति के हैं, मज़दूर को यही उत्तर देना चाहिए: मैं सामाजिक-जनवादी हूं।"

हमारे बुंदपंथी महाशय इसे वाग्विदग्धता का चरम मानते हैं। दरअसल वह सुसंगत रूप से जनवादी तथा **मार्क्सवादी** नारे **के विरुद्ध लक्षित ऐसी** वाग्विदग्धताओं तथा "स्वांगीकरण" के बारे में चीख़-पुकारों से अपनी क़लई खोलते हैं।

विकासमान पूंजीवाद जातीय प्रश्न में दो ऐतिहासिक प्रवृत्तियों से परिचित है। पहली – जातीय जीवन तथा जातीय आंदोलनों की जाग्रति, समस्त जातीय उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष तथा जातीय राज्यों का निर्माण। दूसरी – जातियों के बीच सब प्रकार के संसर्गों का विकास तथा बढ़ती बारंबारता, जातीय अवरोधों का टूटना, पूंजी की, सामान्यतया आर्थिक जीवन, राजनीति, विज्ञान, आदि की अंतर्राष्ट्रीय एकता का निर्माण।

दोनों प्रवृत्तियां पूंजीवाद का सार्वभौमिक नियम हैं। पहली उसके विकास के आरंभ में हावी रहती है और दूसरी समाजवादी समाज में रूपांतरण की ओर अग्रसर हो रहे परिपक्व पूंजीवाद की लाक्षणिकता है। मार्क्सवादियों का जातीय कार्यक्रम दोनों प्रवृत्तियों को ध्यान में रखता है और वह, पहले, जातियों तथा भाषाओं की समानता की तथा इस मामले में किसी भी तरह के **विशेषाधिकारों** को अस्वीकार्यता की (और साथ ही जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की, जिसके बारे में आगे कहा जायेगा) और, दूसरे, अंतर्राष्ट्रीयतावाद के तथा सर्वहारा के बुर्जुआ राष्ट्रवाद द्वारा, भले ही वह सबसे परिष्कृत प्रकार का हो, दूषित किये जाने के विरुद्ध अनम्य संघर्ष के सिद्धांत की पैरवी करता है।

सवाल उठता है – हमारे बुंदपंथी महाशय जब वह "स्वांगीकरण" के विरुद्ध छाती पीटते हैं, तो उनका मतलब क्या होता है? उनका आशय यहां जातियों का उत्पीड़न, किसी एक जाति द्वारा भोगे जानेवाले **विशेषाधिकार** यहां नहीं हो **सकता था,** इसलिए कि "स्वांगीकरण" शब्द यहां पूरी तरह ठीक नहीं बैठता; इसलिए कि सारे मार्क्सवादियों ने व्यक्तिगत रूप से और अधिकृत समष्टि के रूप में भी जातियों के विरुद्ध लेशमात्र हिंसा तथा उनके उत्पीड़न और असमानता की सर्वथा निश्चित तथा असंदिग्ध रूप से निंदा की है; अंततः इसलिए कि 'सेवेरनाया प्राव्दा' के लेख में भी, जिस पर बुंदपंथी महाशय ने प्रहार किया है, यह सामान्य मार्क्सवादी विचार अत्यंत निर्णायक रूप से व्यक्त किया गया है।

नहीं। यहां टाल-मटोल की कोई गुंजाइश नहीं है। श्री लीबमैन के दिमाग़ **न** "स्वांगीकरण" की निंदा करते हुए **न** हिंसा की, **न** असमानता, न विशेषाधिकार की बात थी। सारी हिंसा तथा सारी असमानता का उन्मूलन हो जाने पर क्या स्वांगीकरण की अवधारणा में कोई भी वास्तविक वस्तु बच रहती है?

हां, असंदिग्ध रूप में। **बच** रहती है जातीय अवरोधों को तोड़ने की, जातीय भेदों को मिटाने की, जातियों का **स्वांगीकरण** करने की पूंजीवाद की विश्व-ऐतिहासिक प्रवृत्ति, जो अपने को हर गुज़रते दशक के साथ अधिकाधिक सशक्त रूप से प्रकट करती है, जो पूंजीवाद को

समाजवाद में रूपांतरित करनेवाली सबसे बड़ी प्रेरक शक्तियों में से एक है।

जो भी जातियों तथा भाषाओं के समान अधिकारों को स्वीकारता और उनकी पैरवी नहीं करता, सब तरह के जातीय उत्पीड़नों तथा असमानता के विरुद्ध संघर्ष नहीं करता, वह मार्क्सवादी नहीं है, वह तो जनतंत्रवादी भी नहीं है। यह संदेह से परे है। परंतु यह भी संदेह से परे है कि वह छद्म मार्क्सवादी, जो दूसरी जाति के मार्क्सवादी पर "स्वांगीकरण" का समर्थक होने के लिए गालियों की बौछार करता है, महज़ **राष्ट्रवादी कूपमंडूक है**। इस अशोभनीय कोटि के लोगों में सारे बुंदपंथी तथा (जैसा कि हम अभी देखेंगे) लेव युरकेविच, दोन्त्सोव-मंडली जैसे उक्रइनी राष्ट्रवादी-समाजवादी आते हैं।

यह ठोस रूप में दिखाने के लिए कि इन राष्ट्रवादी कूपमंडूकों के विचार कितने प्रतिक्रियावादी हैं, हम तीन प्रकार के तथ्यों का उल्लेख करेंगे।

रूस में सामान्य रूप से यहूदी राष्ट्रवादी तथा विशेष रूप से बुंदपंथी ही रूढ़िनिष्ठ रूसी मार्क्सवादियों के "स्वांगीकरण-समर्थक" होने के बारे में सबसे ज्यादा चिल्लाते हैं। फिर भी उपरोक्त आंकड़ों से पता चलता है कि संसार में एक करोड़ पांच लाख यहूदियों में से **लगभग आधे सभ्य** संसार में बसे हुए हैं, जहां "स्वांगीकरण" की अवस्थाएं **सबसे प्रबल** हैं, जबकि केवल रूस तथा गैलीशिया के दुखी, पददलित, अधिकारहीन, पुरिश्केविचों (रूसी तथा पोल) द्वारा कुचले हुए यहूदी ऐसी अवस्थाओं में बसे हुए हैं, जिनमें "स्वांगीकरण" **सबसे कम** है और जातिगत पृथक्करण, जिसमें पुरिश्केविच के "परिरुद्ध बस्ती"[20] तथा "संख्या-उपबंध[21]" जैसे "हथकंडे" शामिल थे, सबसे ज्यादा है।

सभ्य संसार में यहूदी जाति नहीं हैं, उनका मुख्यतया स्वांगीकरण हो चुका है – कार्ल काउत्स्की तथा ओटो बावेर कहते हैं। गैलीशिया तथा रूस में यहूदी जाति नहीं हैं, वे दुर्भाग्यवश (दोष उनका **नहीं,** अपितु पुरिश्केविचों का है) यहां अब एक **वर्ण** हैं। ऐसा है उन लोगों का अकाट्य मत, जो यहूदियों के इतिहास से निस्संदेह परिचित हैं तथा उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हैं।

ये तथ्य क्या प्रमाणित करते हैं? यह कि "स्वांगीकरण" के विरुद्ध केवल यहूदी प्रतिक्रियावादी कूपमंडूक चीख़ सकते हैं, जो इतिहास

के पहिये को उलटा घुमाना और उसे रूस तथा गैलीशिया में विद्यमान अवस्थाओं से पेरिस तथा न्यूयार्क की अवस्थाओं की ओर आगे बढ़ाने के बदले उलटी दिशा में ले जाना चाहते हैं।

विश्व इतिहास के माने हुए सर्वोत्तम यहूदी लोगों ने, जिन्होंने संसार को जनतंत्र तथा समाजवाद के अग्रणी नेता दिये हैं, स्वांगीकरण के विरुद्ध कभी चीख़-पुकार नहीं मचायी। स्वांगीकरण के विरुद्ध केवल वे चीख़-पुकार मचाते हैं, जो यहूदी जाति के "रूढ़िवाद" को भयमिश्रित सम्मान की भावना के साथ देखते हैं।

उन्नत पूंजीवाद की वर्तमान अवस्थाओं के अंतर्गत स्वांगीकरण की आम प्रक्रिया किस पैमाने पर चल रही है, इसका मोटे तौर पर अंदाज़ा, उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका के आप्रवासन-आंकड़ों से लग सकता है। यूरोप ने वहां दस वर्षों में, १८६१–१६०० में, ३७,००,००० तथा नौ वर्षों में, १६०१–१६०६ में, ७२,००,००० व्यक्ति भेजे। संयुक्त राज्य अमरीका में १६०० की जनगणना में १,००,००,००० से अधिक विदेशी दर्ज किये गये थे। न्यूयार्क राज्य, जहां उसी जनगणना के अनुसार ७८,००० से ऊपर आस्ट्रियाई, १,३६,००० अंग्रेज़, २०,००० फ़ांसीसी, ४,८०,००० जर्मन, ३७,००० हंगरियाई, ४,२५,००० आयरी, १,८२,००० इतालवी, ७०,००० पोल, रूस से आये १,६६,००० (अधिकांशतः यहूदी), ४३,००० स्वीडनी, आदि थे, जातीय अंतरों को चूर-चूर कर रहा है। और न्यूयार्क में जो कुछ बहुत बड़े, अंतर्जातीय पैमाने पर हो रहा है, वही **प्रत्येक** बड़े नगर तथा कल-कारख़ानेवाली बस्ती में देखा जा सकता है।

जो कोई राष्ट्रवादी पूर्वग्रहों से नहीं जकड़ा हुआ है, वह पूंजीवाद द्वारा जातियों के स्वांगीकरण की इस प्रक्रिया में महानतम ऐतिहासिक प्रगति, दूर-दराज़ के तिरस्कृत-उपेक्षित इलाक़ों में, ख़ास तौर पर रूस जैसे पिछड़े देशों में, कठोर जातीय रूढ़िवादिता के विखंडन को देखे बिना नहीं रह सकता।

रूस को और उक्रइनियों के प्रति महत रूसियों के रवैये को ले लीजिये। स्वभावतः हर जनतंत्रवादी, मार्क्सवादियों की तो बात ही क्या, उक्रइनियों के अविश्वसनीय दमन का डटकर विरोध करेगा और उनके लिए पूर्ण समानता की मांग करेगा। परंतु उक्रइनी तथा महत रूसी सर्वहाराओं के बीच इस समय एक ही राज्य की सरहदों के अंदर विद्यमान

संबंधों तथा सहबंध को **कमज़ोर बनाना** समाजवाद के साथ सीधी ग़द्दारी और उक्रइनियों के बुर्जुआ "जातीय लक्ष्यों" के दृष्टिकोण **तक** से मूर्खतापूर्ण नीति होगी।

श्री लेव युरकेविच, जो अपने को "मार्क्सवादी" (बेचारे मार्क्स!) कहते हैं, इस मूर्खतापूर्ण नीति के उदाहरण हैं। श्री युरकेविच लिखते हैं कि १६०६ में सोकोलोव्स्की (बासोक) और लुकाशेविच (तुचाप्स्की) ने ज़ोर देकर कहा था कि उक्रइनी सर्वहारा का पूर्णतया रूसीकरण हो चुका है तथा उसे किसी अलग संगठन की ज़रूरत नहीं है। **प्रत्यक्ष प्रश्न से संबद्ध** एक भी तथ्य पेश किये बिना श्री युरकेविच इस कथन के लिए दोनों पर बरस पड़ते हैं और – बिलकुल निकृष्टतम, घोर मूर्खतापूर्ण तथा घोर प्रतिगामी राष्ट्रवाद की भावना में – उन्मादपूर्ण ढंग से चीख़ते हैं कि यह "राष्ट्रीय निष्क्रियता", "राष्ट्रीयता का परित्याग" है, कि इन लोगों ने "उक्रइनी मार्क्सवादियों को विभक्त कर दिया है (!!)" आदि। हमारे यहां इस समय "मज़दूरों में उक्रइनी राष्ट्रीय चेतना की वृद्धि" के बावजूद मज़दूरों की **अल्पसंख्या** "राष्ट्रीय दृष्टि से सचेत" है, जबकि बहुसंख्या, श्री युरकेविच हमें यक़ीन दिलाते हैं, "अब भी रूसी संस्कृति के प्रभाव में है"। और हमारा काम, यह राष्ट्रवादी कूपमंडूक ऊंचे स्वर में कहते हैं, "जनसाधारण के पीछे चलना नहीं, बल्कि उनकी अगुआई करना, उन्हें उनके राष्ट्रीय हेतु समझाना है" ('दज़्विन', पृ० ८६)।

श्री युरकेविच का यह सारा तर्क पूर्णतः बुर्जुआ-राष्ट्रवादी है। परंतु बुर्जुआ राष्ट्रवादियों के, जिनमें से कुछ उक्रइना के लिए पूर्ण समानता तथा स्वायत्तता के पक्ष में और दूसरे स्वतंत्र उक्रइनी राज्य के पक्ष में हैं, दृष्टिकोण से भी यह तर्क खरा नहीं उतरेगा। उक्रइनियों की आज़ादी की आकांक्षा के विरोधी हैं महत रूसी तथा पोलिश ज़मींदार वर्ग और इन दोनों जातियों का बुर्जुआज़ी। कौनसी सामाजिक शक्ति इन वर्गों का मुक़ाबला करने की क्षमता रखती है? बीसवीं शताब्दी के पहले दशक ने इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर प्रस्तुत कर दिया: यह शक्ति अनन्य रूप से मज़दूर वर्ग है, जो जनतांत्रिक किसान समुदाय को अपने पीछे एकजुट करता है। जिस वस्तुतः जनतांत्रिक शक्ति की विजय जातीय उत्पीड़न असंभव बना देगी, उसे विभक्त करने और इस प्रकार उसे कमज़ोर करने का प्रयास करके श्री युरकेविच सामान्यतया

जनतंत्र के ही नहीं, अपितु अपनी मातृभूमि उक्रइना के हितों के साथ भी ग़द्दारी कर रहे हैं। महत रूसी तथा उक्रइनी सर्वहाराओं की संयुक्त कार्रवाई की सूरत में स्वतंत्र उक्रइना **संभव है**, ऐसी एकता के न होने पर इसका सवाल ही नहीं उठता।

परंतु मार्क्सवादी अपने को बुर्जुआ-राष्ट्रीय दृष्टिकोण तक ही सीमित नहीं रखते। इधर कई दशकों से दक्षिण, अर्थात उक्रइना में त्वरित आर्थिक विकास की एक सुनिश्चित प्रक्रिया चलती रही है, जो महत रूस से लाखों किसानों और मज़दूरों को पूंजीवादी फ़ार्मों, खान-खदानों और शहरों की ओर आकृष्ट करती रही है। महत रूसी तथा उक्रइनी सर्वहाराओं का – इन सीमाओं के अंदर – आपस में "स्वांगीकरण" एक अकाट्य तथ्य है। और **यह** तथ्य **असंदिग्ध रूप से** प्रगतिशील है। पूंजीवाद महत रूसी अथवा उक्रइनी पिछड़े इलाक़ों के जाहिल, रूढ़िवादी, एक स्थान पर टिककर बसनेवाले किसान को गतिशील सर्वहारा से प्रतिस्थापित कर रहा है, जिसके जीवन की अवस्थाएं विशिष्ट रूप से जैसे रूसी वैसे ही उक्रइनी जातीय संकीर्णता को विखंडित कर रही हैं। अगर हम यह मान भी लें कि कालांतर में महत रूस तथा उक्रइना के बीच राजकीय सीमा हो जायेगी, तो इस सूरत में भी महत रूसी तथा उक्रइनी मज़दूरों के "स्वांगीकरण" की प्रक्रिया का इतिहासतः प्रगतिशील स्वरूप उतना ही असंदिग्ध होगा, जितना कि अमरीका में जातियों के चूर-चूर होने की प्रक्रिया का प्रगतिशील स्वरूप। उक्रइना और महत रूस जितना ही अधिक स्वतंत्र होते जायेंगे, पूंजीवाद का विकास उतना ही **व्यापक तथा द्रुत** होगा, जो राज्य के तमाम प्रदेशों से तथा तमाम पड़ोसी राज्यों से (अगर उक्रइना के संदर्भ में रूस पड़ोसी राज्य बन जाता है) **सभी** जातियों के मज़दूर तथा मेहनतकश जनसाधारण और ज़्यादा सशक्त ढंग से शहरों, खान-खदानों तथा कारखानों की ओर आकृष्ट करेगा।

श्री लेव युरकेविच उस समय असली बुर्जुआ और वह भी तंगनज़र, तंगदिमाग़ और अहमक बुर्जुआ, अर्थात कूपमंडूक की तरह पेश आते हैं, जब वह दो जातियों के **सर्वहारा** के संसर्ग, सम्मिलन तथा स्वांगीकरण से होनेवाले लाभों को उक्रइनी राष्ट्रीय हेतु की क्षणिक सफलताओं की ख़ातिर ठुकरा देते हैं। राष्ट्रीय हेतु पहले आता है, सर्वहारा हेतु उसके बाद – बुर्जुआ राष्ट्रवादी कहते हैं और श्री युरकेविचों, दोन्त्सोवों,

आदि जैसे तथाकथित मार्क्सवादी उनके पीछे-पीछे उनकी बात दुहराते रहते हैं। सर्वहारा हेतु पहले आना चाहिए – हम कहते हैं – इसलिए कि वह श्रम तथा मानवजाति के दीर्घकालीन तथा बुनियादी हितों की ही नहीं, अपितु जनतंत्र के हितों की भी रक्षा करता है और जनतंत्र के बिना न तो स्वायत्त और न स्वतंत्र उक्रइना की ही बात सोची जा सकती है।

अंत में, श्री युरकेविच के तर्क में, जिसमें राष्ट्रवादी रत्नों का ऐसा असाधारण प्राचुर्य है, एक और बात उल्लेखनीय है – उक्रइनी मज़दूरों की अल्पसंख्या राष्ट्रीय दृष्टि से सचेत है, वह कहते हैं, "बहुसंख्या अब भी रूसी संस्कृति के प्रभाव में है"।

सर्वहारा की चर्चा करते समय समग्र रूप में उक्रइनी संस्कृति को समग्र रूप में महत रूसी संस्कृति के मुक़ाबले में रखना बुर्जुआ राष्ट्रवाद के लाभार्थ सर्वहारा हितों के साथ घोर ग़द्दारी है।

प्रत्येक आधुनिक जाति के भीतर दो जातियां होती हैं – हम सभी राष्ट्रवादी-समाजवादियों से कहते हैं। प्रत्येक जातीय संस्कृति में दो जातीय संस्कृतियां होती हैं। पुरिश्केविचों, गुचकोवों और स्त्रूवेओं की महत रूसी संस्कृति है – परंतु साथ ही वह महत रूसी संस्कृति भी है, जो चेर्निशेव्स्की तथा प्लेख़ानोव के नामों में द्योतित होती है। उक्रइना में भी **ऐसी** ही **दो** संस्कृतियां हैं, जैसी जर्मनी, फ़्रांस, इंगलैंड में, यहूदियों, आदि के बीच हैं। यदि उक्रइनी मज़दूरों की बहुसंख्या महत रूसी संस्कृति के प्रभाव में है, तो हम निश्चित रूप से जानते हैं कि महत रूसी जनतंत्र तथा सामाजिक-जनवाद के विचार भी महत रूसी पुरोहिती तथा बुर्जुआ संस्कृति के विचारों के साथ-साथ क्रियाशील हैं। अंतोक्त प्रकार की "संस्कृति" से लड़ते हुए उक्रइनी **मार्क्सवादी** सदैव प्रथमोक्त को सामने लायेगा तथा अपने मज़दूरों से कहेगा : "महत रूसी वर्ग-सचेत मज़दूरों के साथ, उनके साहित्य के साथ तथा उनकी विचार-परिधि के साथ संसर्ग की सारी संभावनाओं को पूरी शक्ति के साथ हासिल करना, उनका उपयोग करना तथा सुदृढ़ बनाना आवश्यक है, यह उक्रइनी तथा महत रूसी **दोनों** मज़दूर आंदोलनों के बुनियादी हितों का तक़ाज़ा है।"

यदि कोई उक्रइनी मार्क्सवादी महत रूसी उत्पीड़कों के प्रति अपनी **पूर्णतया न्यायोचित तथा स्वाभाविक** घृणा से अपने को **इस हद तक**

प्रभावित होने देता है कि वह इस घृणा के चाहे एक कण को भी, चाहे वह मात्र विरक्ति को भी महत रूसी मज़दूरों की सर्वहारा संस्कृति और सर्वहारा हेतु की ओर स्थानांतरित कर देता है, तो ऐसा मार्क्सवादी बुर्जुआ राष्ट्रवाद के दलदल में धंस जायेगा। ठीक इसी तरह महत रूसी मार्क्सवादी भी बुर्जुआ ही नहीं, अपितु यमदूतसभाई राष्ट्रवाद के दलदल में धंस जायेगा, अगर वह उक्रइनियों के लिए पूर्ण समानता की मांग को या स्वतंत्र राज्य के निर्माण के उनके **अधिकार** को भले ही क्षण भर के लिए नज़र से ओझल कर देता है।

महत रूसी तथा उक्रइनी मज़दूरों को एकजुट होकर और, जब तक वे एक ही राज्य में रहते हैं, घनिष्ठतम संगठनात्मक एकता तथा सूत्रबद्धता के साथ, प्रचार की भाषा के और इस प्रकार में विशुद्ध स्थानीय अथवा विशुद्ध जातीय **तफ़सीलों** को ध्यान में रखने के प्रश्न के प्रति पूर्ण सहिष्णुता बरतते हुए सर्वहारा आंदोलन की समान अथवा अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा करनी होगी। यह मार्क्सवाद का अपरिहार्य तक़ाज़ा है। एक जाति के मज़दूरों के दूसरी जाति के मज़दूरों से पार्थक्य की सारी वकालत, मार्क्सवादी "स्वांगीकरण" पर सारे हमले अथवा सर्वहारा से सरोकार रखनेवाले प्रश्नों के मामले में समग्र रूप में एक जाति की संस्कृति को दूसरी कथित अखंड राष्ट्रीय संस्कृति के मुक़ाबले में रखना, आदि **बुर्जुआ** राष्ट्रवाद है, जिसके विरुद्ध निर्मम संघर्ष करना नितांत आवश्यक है।

४. "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता"

"जातीय संस्कृति" के नारे का प्रश्न मार्क्सवादियों के लिए बेहद महत्व का है, न केवल इसलिए कि वह जातियों के प्रश्न पर हमारे सारे प्रचार तथा आंदोलन का विचारधारात्मक अंतर्य बुर्जुआ प्रचार से भिन्न रूप में निर्धारित करता है, बल्कि इसलिए भी कि बहुचर्चित सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता का सारा कार्यक्रम इसी नारे पर आधारित है।

इस कार्यक्रम का बुनियादी, मुख्य दोष यह है कि उसका लक्ष्य सर्वाधिक परिष्कृत, सर्वाधिक निरपेक्ष, सर्वाधिक उग्र राष्ट्रवाद को

जीवन में मूर्त रूप देना है। इस कार्यक्रम का सार यह है कि प्रत्येक नागरिक अपने को इस या उस जाति के सदस्य के रूप में पंजीबद्ध कराता है तथा प्रत्येक जाति एक विधिक सत्ता है, जिसे अपने सदस्यों पर अनिवार्य कर लगाने का अधिकार है, जिसकी अपनी संसद (सेईम) होती है तथा अपने "सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट" (मंत्री) होते हैं।

जातियों के प्रश्न पर लागू किया जानेवाला इस तरह का विचार पूंजीवाद पर लागू किये जानेवाले प्रूदों के विचार से मिलता-जुलता है। पूंजीवाद तथा उसके आधार – पण्य-उत्पादन – का उन्मूलन नहीं, बल्कि उस आधार को बुराइयों से, अपवृद्धियों, आदि से **मुक्त करना**; विनिमय तथा विनिमय मूल्य का उन्मूलन नहीं, बल्कि इसके विपरीत इसे "सांविधानिक", सार्विक, निरपेक्ष "**न्यायोचित**" बनाना, उतार-चढ़ावों, संकटों तथा बुराइयों से रहित करना – यह था प्रूदों का विचार।

जिस तरह प्रूदों निम्न-बुर्जुआ थे और उनका सिद्धांत विनिमय तथा पण्य-उत्पादन को एक निरपेक्ष कोटि में बदल देता और पूर्णता की पराकाष्ठा पर पहुंचा देता है, उसी तरह "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" का सिद्धांत तथा कार्यक्रम भी निम्न-बुर्जुआ हैं, जो बुर्जुआ राष्ट्रवाद को एक निरपेक्ष कोटि में बदल देते हैं, उसे पूर्णता की पराकाष्ठा पर पहुंचा देते हैं, उसे हिंसा, अन्याय, आदि से मुक्त कर देते हैं।

मार्क्सवाद का राष्ट्रवाद से मेल नहीं हो सकता, भले ही राष्ट्रवाद सर्वाधिक "न्यायोचित", "शुद्ध", परिष्कृत तथा सभ्य क़िस्म का हो। मार्क्सवाद राष्ट्रवाद के सभी प्रकारों के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीयतावाद को, सारे राष्ट्रों के उच्चतर एकता में संलयन को सामने रखता है, जो हमारी आंखों के सामने प्रति मील रेलवे लाइन के बनने के साथ, प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट और प्रत्येक (अपनी आर्थिक गतिविधियों और साथ ही अपने विचारों तथा उद्देश्यों की दृष्टि से अंतर्राष्ट्रीय) मज़दूर संघ की स्थापना के साथ बढ़ता जा रहा है।

राष्ट्रीयता का सिद्धांत बुर्जुआ समाज में इतिहासतः अनिवार्य है और इस समाज को ध्यान में रखते हुए मार्क्सवादी राष्ट्रीय आंदोलनों की ऐतिहासिक न्यायसंगतता को पूर्णतया स्वीकार करता है। परंतु यह स्वीकृति राष्ट्रवाद के समर्थन में परिणत न हो, इसके लिए ज़रूरी है कि उसे कड़ाई के साथ उस तक सीमित रखा जाये, जो इन आंदोलनों

में प्रगतिशील है, ताकि यह स्वीकृति बुर्जुआ विचारधारा को सर्वहारा की चेतना को धुंधला न बनाने दे।

सामंती नींद से जनसाधारण का जागना, समस्त जातीय उत्पीड़न के विरुद्ध, जनता की, राष्ट्र की प्रभुसत्ता के लिए उनका संघर्ष प्रगतिशील हैं। इस कारण जातियों के प्रश्न के समस्त पहलुओं में सर्वाधिक निश्चयात्मक तथा सुसंगत जनतंत्र की रक्षा करना मार्क्सवादी का **अनिवार्य** कर्तव्य है। यह कार्यभार मुख्यतया नकारात्मक है। परंतु राष्ट्रवाद के समर्थन में सर्वहारा इससे आगे नहीं जा सकता, इसलिए कि इससे आगे राष्ट्रवाद को **सुदृढ़ बनाने** के लिए प्रयत्नशील **बुर्जुआज़ी** की "सकारात्मक" गतिविधि शुरू हो जाती है।

समस्त सामंती जुल्मों, जातियों के समस्त उत्पीड़न तथा किसी एक जाति या किसी एक भाषा के विशेषाधिकारों का जूआ उतार फेंकना जनतांत्रिक शक्ति के रूप में सर्वहारा का अनिवार्य कर्तव्य है और यह यक़ीनन सर्वहारा वर्ग संघर्ष के हित में है, जिसे जातीय प्रश्न के बारे में झगड़े अस्पष्ट और अवरुद्ध करते हैं। परंतु कड़ाई के साथ सीमित, ऐतिहासिक रूप से निर्धारित चौखटे **के बाहर** बुर्जुआ राष्ट्रवाद का साथ देने का अर्थ है सर्वहारा के साथ ग़द्दारी करना तथा बुर्जुआज़ी का पक्ष लेना। यहां एक सीमा-रेखा है, जो बहुधा बहुत महीन होती है और जिसे बुंदपंथी तथा उक्रइनी राष्ट्रवादी-समाजवादी पूरी तरह भूल जाते हैं।

समस्त जातीय उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष – निस्संदेह, हां। समस्त जातीय विकास **के लिए,** सामान्यतः "जातीय संस्कृति" **के लिए** संघर्ष – यक़ीनन नहीं। पूंजीवादी समाज का आर्थिक विकास हमें समस्त संसार में अपरिपक्व राष्ट्रीय आंदोलनों के उदाहरण, अनेकानेक छोटी-छोटी जातियों को लेकर अथवा कुछ छोटी जातियों की क़ीमत पर बड़ी जातियों की उत्पत्ति के उदाहरण, जातियों के स्वांगीकरण के भी उदाहरण प्रदर्शित करता है। सामान्य रूप में राष्ट्रीयता का विकास बुर्जुआ राष्ट्रवाद का सिद्धांत है, यही बुर्जुआ राष्ट्रवाद की अनन्यता का कारण है, यही अनंत जातीय कलहों का कारण है। परंतु प्रत्येक जाति के राष्ट्रीय विकास की रक्षा का बीड़ा उठाना तो रहा दूर, सर्वहारा इसके विपरीत जनसाधारण को ऐसे भ्रमों से सावधान करता है, पूंजीवादी संसर्ग की पूर्णतम स्वतंत्रता का समर्थन करता है

तथा जातियों के हर प्रकार के स्वांगीकरण का स्वागत करता है, सिवाय उसके, जो बल-प्रयोग अथवा विशेषाधिकार पर आधारित होता है।

राष्ट्रवाद का किसी "न्यायतः" सीमांकित क्षेत्र में सुदृढ़ीकरण, राष्ट्रवाद को "सांविधानिक रूप प्रदान करना" और किसी विशेष राजकीय संस्था के माध्यम से जातियों का एक-दूसरे से पृथक्करण हासिल करना – यह है सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता का वैचारिक आधार तथा अंतर्य। यह विचार सरासर बुर्जुआ और सरासर झूठ है। सर्वहारा राष्ट्रवाद के किसी भी प्रकार के प्रतिष्ठापन का समर्थन नहीं कर सकता; इसके विपरीत वह हर उस चीज़ का समर्थन करता है, जो राष्ट्रीय भेदों को मिटाने तथा राष्ट्रीय अवरोधों को हटाने में मदद देती है, जो जातियों के बीच संबंधों को अधिकाधिक घनिष्ठ बनाती है और जो जातियों के संलयन की ओर उन्मुख होती है। किसी और तरह काम करने का अर्थ है प्रतिगामी राष्ट्रवादी कूपमंडूकता का पक्ष ग्रहण करना।

जब आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादियों ने अपनी ब्रून कांग्रेस (१८९९)[22] में सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की योजना पर विचार किया था, तब इस योजना के सैद्धांतिक मूल्यांकन की ओर लगभग कोई ध्यान नहीं दिया गया था। परंतु यह उल्लेखनीय है कि इस कार्यक्रम के विरुद्ध ये दो तर्क उपस्थित किये गये थे – (१) वह पुरोहितवाद के लिए उत्प्रेरक शक्ति का काम करेगा; (२) "उसका परिणाम होगा अंधराष्ट्रवाद का बरक़रार रहना, उसका प्रत्येक छोटे समुदाय, प्रत्येक छोटे समूह में प्रवेश" (ब्रून कांग्रेस की जर्मन भाषा में अधिकृत रिपोर्ट का पृष्ठ ९२। रूसी अनुवाद यहूदी राष्ट्रवादी पार्टी 'सेरप' – य० स० म० पा० –[23] द्वारा प्रकाशित किया गया था)।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सामान्य अर्थ में "जातीय संस्कृति", यानी स्कूल, आदि पर इस समय संसार के सभी देशों में पुरोहितवादियों तथा बुर्जुआ अंधराष्ट्रवादियों का प्रभाव हावी है। जब बुंदपंथी "सांस्कृतिक-जातीय" स्वायत्तता की पैरोकारी में कहते हैं कि जातियों का वैधीकरण उनके अंदर वर्ग संघर्ष को सारे असंबद्ध सोच-विचारों से **स्वच्छ** रखेगा, तो यह प्रत्यक्ष और उपहासास्पद कुतर्क है। किसी भी पूंजीवादी देश में गंभीर वर्ग संघर्ष सबसे पहले आर्थिक तथा राजनीतिक

क्षेत्र में ही होता है। शिक्षा के क्षेत्र को **इससे** अलग करना, एक तो, उपहासास्पद हवाई कल्पना है, इसलिए कि स्कूलों (जैसा कि सामान्यतः "जातीय संस्कृति") को अर्थनीति तथा राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता, दूसरे, पूंजीवादी देशों का ठीक आर्थिक तथा राज-नीतिक जीवन ही बेतुके और कालातीत राष्ट्रीय अवरोधों और पूर्वग्रहों को पग-पग पर चकनाचूर करने के लिए बाध्य करता है, जबकि स्कूल, आदि का पृथक्करण "विशुद्ध" पुरोहितवाद तथा "विशुद्ध" बुर्जुआ अंधराष्ट्रवाद को केवल बरक़रार ही रखेगा, गहरा तथा दृढ़ ही बनायेगा।

संयुक्त पूंजी कंपनियों के संचालकमडलों में हम विभिन्न जातियों के पूंजीपतियों को एक साथ आपस में पूरे मेल-जोल से बैठे देखते हैं। कारखानों में विभिन्न जातियों के मज़दूर साथ-साथ काम करते हैं। सभी गंभीर तथा गहन राजनीतिक मामलों में पक्ष-ग्रहण जातियों के अनुसार नहीं, बल्कि वर्गों के अनुसार किया जाता है। स्कूली शिक्षा, आदि को "राजकीय नियंत्रण से हटाना" तथा जातियों के नियंत्रण में रखना वस्तुतः अर्थव्यवस्था से, जो जातियों को संयुक्त करती है, सामाजिक जीवन के कहना चाहिए, सबसे विचारधारात्मक क्षेत्र को अलग करने का प्रयास है, जिसमें "विशुद्ध" जातीय संस्कृति को अथवा पुरोहितवाद तथा अंधराष्ट्रवाद के राष्ट्रीय पोषण को सबसे खुली गुंजाइश होती है।

व्यवहारतः, "क्षेत्रेतर" (यानी उस क्षेत्र से बाहर या उससे असंबंधित, जहां यह या वह जाति रहती है) या "सांस्कृतिक-जातीय" स्वायत्तता की योजना के कार्यान्वयन का केवल एक अर्थ हो सकता है: **शैक्षिक मामलों का जातियों के अनुसार विभाजन,** अर्थात स्कूली मामलों में जातीय विभागों (क्यूरिआ) का प्रचलन। बुंद की विख्यात योजना के वास्तविक अभिप्राय पर पर्याप्त ध्यान देने से यह समझा जा सकेगा कि यह समाजवाद के लिए सर्वहारा वर्ग संघर्ष के दृष्टिकोण से तो क्या, जनतंत्र के दृष्टिकोण से भी कितना कोर प्रतिक्रियावादी है।

स्कूल व्यवस्था के "जातीयकरण" की एक ही मिसाल और एक ही योजना इस मुद्दे को पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर देंगी। संयुक्त राज्य अमरीका में राज्यों का उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों में विभाजन जीवन के समस्त क्षेत्रों में आज तक बरक़रार है; प्रथमोक्त में स्वतंत्रता की तथा दासस्वामियों के विरुद्ध संघर्ष की अधिकतम परंपराएं हैं; अंतोक्त

में दासस्वामित्व की अधिकतम परंपराएं, आर्थिक रूप से उत्पीड़ित तथा सांस्कृतिक रूप से पिछड़े हुए नीग्रो लोगों (४४ प्रतिशत नीग्रो निरक्षर हैं और ६ प्रतिशत गोरे) पर अत्याचार के अवशेष, आदि हैं। उत्तरी राज्यों में नीग्रो बच्चे उन्हीं स्कूलों में पढ़ते हैं, जिनमें गोरे बच्चे पढ़ते हैं। दक्षिण में नीग्रो बच्चों के लिए विशेष "जातीय" या नसली – जो भी आप कहना चाहें – स्कूल हैं। मेरे ख़याल से, स्कूलों के वास्तविक "जातीयकरण" का यह एकमात्र दृष्टांत है।

पूर्वी यूरोप में एक ऐसा देश है, जहां बेइलिस के मुक़दमे[24] जैसी चीज़ें आज तक संभव हैं, जहां यहूदियों को पुरिश्केविचों ने नीग्रो लोगों से भी बदतर हालत में डाल रखा है। इस देश में **यहूदी स्कूलों का जातीयकरण करने** की योजना की मंत्रालय में हाल ही में चर्चा उठी थी। सौभाग्यवश यह प्रतिक्रियावादी हवाई कल्पना आस्ट्रियाई निम्न-बुर्जुआजी की हवाई कल्पना से शायद ही अधिक साकार होनेवाली है, जो सुसंगत जनतंत्र हासिल करने या जातियों में कलहों का अंत करने की सारी आशाएं खो बैठे हैं और जिन्होंने जातियों की स्कूल-शिक्षा को **खानों** में बांटने की बात सोची है, ताकि वे स्कूलों के **बंटवारे के लिए** कलह न कर सकें... परंतु अपने को एक "जातीय संस्कृति" के विरुद्ध दूसरी "जातीय संस्कृति के **अनंत** कलह के लिए "वैधीकृत" कर सकें।

आस्ट्रिया में सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता का विचार मुख्यतया साहित्यिक कल्पना की उड़ान भर रहा है, जिसकी ओर स्वयं आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादियों ने भी संजीदगी से ध्यान नहीं दिया है। परंतु रूस में इसे सारी यहूदी बुर्जुआ पार्टियों और विभिन्न जातियों के निम्न-बुर्जुआ, अवसरवादी तत्वों – उदाहरण के लिए बुंदपंथियों, काकेशिया में विसर्जनवादियों तथा वामपंथी नरोदवादी धारा की रूसी जातीय पार्टियों के सम्मेलन – के कार्यक्रम में शामिल किया गया है। (यह सम्मेलन – कोष्ठकों में यह उल्लेख कर दें – १९०७ में हुआ था तथा उसका फ़ैसला रूसी समाजवादी-क्रांतिकारियों[25] और पोलिश सामाजिक-देशभक्तों, पो० स० पा०[26] के **मतदान में तटस्थ रहने की सूरत में** स्वीकृत हुआ था। मतदान में तटस्थ रहना – यह जातीय कार्यक्रम के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण सैद्धांतिक प्रश्न के प्रति समाजवादी-क्रांतिकारियों तथा पोलिश समाजवादी पार्टी के सदस्यों के रुख का आश्चर्यजनक रूप से लाक्षणिक तरीक़ा है!)

आस्ट्रिया म "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" के प्रमुख सिद्धांतकार ओटो बावेर ने ही अपनी पुस्तक का एक विशेष अध्याय यह सिद्ध करने के लिए अर्पित किया था कि इस तरह का कार्यक्रम यहूदियों के लिए प्रस्तावित करना संभव नहीं है। परंतु रूस में ठीक यहूदियों की सारी बुर्जुआ पार्टियों – और उन्हें प्रतिध्वनित करनेवाले बुंद – ने ही इस कार्यक्रम को स्वीकार किया है।* इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि इतिहास ने एक दूसरे राज्य के राजनीतिक अमल के ज़रिये बावेर की ईजाद की बेहूदगी का ठीक उसी तरह परदाफ़ाश कर दिया है, जिस तरह रूसी बर्नस्टीनवादियों (स्त्रूवे, तुगान-बारानोव्स्की, बेरदियायेव-मंडली) ने मार्क्सवाद से उदारवाद में अपने द्रुत विकास के ज़रिये जर्मन बर्नस्टीनवाद[29] की वास्तविक वैचारिक अंतर्वस्तु का परदाफ़ाश किया है।

न तो आस्ट्रियाई, न रूसी सामाजिक-जनवादियों ने ही "सांस्कृतिक-जातीय" स्वायत्तता को अपने कार्यक्रम में शामिल किया है। परंतु एक सबसे पिछड़े देश में यहूदी बुर्जुआ पार्टियों तथा बहुत-से निम्न-बुर्जुआ, तथाकथित समाजवादी दलों ने **उसे अंगीकार कर लिया है**, ताकि बुर्जुआ राष्ट्रवाद के विचारों को परिष्कृत रूप में मज़दूरों के

---

* यह समझ में आता है कि बुंदपंथी बहुधा असाधारणतः ज़ोरदार ढंग से इस तथ्य का प्रतिवाद करते हैं कि **सभी** यहूदी बुर्जुआ पार्टियों ने "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" को स्वीकार कर लिया है। वह तथ्य तो बुंद की वास्तविक भूमिका का अत्यंत स्पष्ट रूप में परदाफ़ाश ही करता है। जब बुंदपंथी श्री मानिन ने 'लूच'[27] अख़बार में अपने प्रतिवाद को दुहराने का प्रयत्न किया, तो उन्हें न० स्कोप ने पूरी तरह बेनक़ाब कर दिया (देखें 'प्रोस्वेश्चेनिये'[28], अंक ३)। परंतु जब श्री लेव युरकेविच 'द्ज़्विन' पत्रिका में (१९१३, अंक ७–८, पृ० ९२) 'प्रोस्वेश्चेनिये' (अंक ३, पृ० ७८) से न० स्क० के इस फ़िक़रे को उद्धृत करते हैं कि "बुंदपंथी तमाम यहूदी बुर्जुआ पार्टियों तथा दलों के साथ मिलकर बहुत पहले से सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की वकालत करते आये हैं" और इस उद्धरण से "बुंदपंथी" शब्द को निकाल-कर तथा "जातीय अधिकार" शब्दों को "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" शब्दों **के स्थान पर रखकर** उद्धरण को **तोड़ते-मरोड़ते हैं**, तो सिर्फ़ हैरान होकर हाथ ही उठाया जा सकता है!! श्री लेव युरकेविच राष्ट्रवादी ही नहीं हैं, सामाजिक-जन-वादियों के इतिहास तथा उनके कार्यक्रम के मामले में आश्चर्यजनक गंवार ही नहीं हैं, अपितु बुंद के लाभार्थ **उद्धरणों के पक्के जालसाज़** भी हैं। बुंद तथा युरकेविच का धंधा सचमुच ख़स्ता हाल में है!

बीच फैलाया जा सके। यह तथ्य इतना स्पष्ट है कि उसके बारे में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।

चूंकि हमें जातीय प्रश्न पर आस्ट्रियाई कार्यक्रम का ज़िक्र करना पड़ा है, इसलिए हम उस सत्य की पुनर्घोषणा किये बिना नहीं रह सकते, जिसे बुंदपंथी बहुधा तोड़ते-मरोड़ते हैं। ब्रून कांग्रेस में "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" का एक **विशुद्ध** कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया **था**। यह दक्षिण स्लाव सामाजिक-जनवादियों का कार्यक्रम था, जिसके दूसरे अनुच्छेद में कहा गया है: "आस्ट्रिया में बसनेवाली प्रत्येक जाति, उसके सदस्य चाहे किसी भी क्षेत्र में रहते हों, स्वायत्त समूह है, जो अपने सारे जातीय (भाषा संबंधी तथा सांस्कृतिक) मामलों की सर्वथा स्वतंत्र रूप से व्यवस्था करता है।" इस कार्यक्रम का क्रिस्टन ने ही नहीं, अपितु प्रभावशाली एल्लेनबोगेन ने भी समर्थन किया था। परंतु उसे वापस ले लिया गया; उसके पक्ष में एक भी वोट नहीं पड़ा। एक **क्षेत्रीयतावादी** कार्यक्रम, अर्थात एक ऐसा कार्यक्रम स्वीकृत किया गया, "जो कोई जातीय समूह निर्मित **नहीं** करता जिसके पास कोई अपना आवास क्षेत्र नहीं है"।

स्वीकृत कार्यक्रम के अनुच्छेद ३ में कहा गया है: "एक ही जाति के स्वशासित **प्रदेश** मिलकर जातीय दृष्टि से संयुक्त संघ का निर्माण करेंगे, जो अपने जातीय मामलों की पूर्ण स्वायत्तता के आधार पर व्यवस्था करेगा" (तुलना करें 'प्रोस्वेश्चेनिये', १९१३, अंक ४, पृ० २८[30])। स्पष्टतः यह समझौतावादी कार्यक्रम भी ग़लत है। एक उदाहरण यह दर्शा देगा। सरातोव गुबेर्निया में जर्मन आबादकार समुदाय, जमा रीगा या लोद्ज़ में जर्मन मज़दूरों की बस्ती, जमा सेंट पीटर्सबर्ग के पास जर्मन बस्ती, आदि रूस में जर्मनों का "जातीय दृष्टि से संयुक्त संघ" संघटित करेंगे। स्पष्ट है कि सामाजिक-जनवादी इस तरह की चीज़ नहीं **मांग** सकते और न ऐसा संघ **लागू कर** सकते हैं, हालांकि वे निस्संदेह संबद्ध राज्य में किसी भी जाति के किसी भी समुदाय के संघ समेत हर प्रकार के संघों की **स्वतंत्रता** से लेशमात्र इन्कार नहीं करते। रूस में विभिन्न इलाक़ों में और विभिन्न वर्गों के जर्मनों, आदि के राज्य के क़ानून द्वारा एक संयुक्त जर्मन-जातीय

संघ के रूप में पृथक्करण को चाहे और किसी भी – पादरी, बुर्जुआ, कूपमंडूक – द्वारा कार्यान्वित किया जाये, पर सामाजिक-जनवादी उसे कार्यान्वित नहीं कर सकते।

५. जातियों की समानता तथा अल्पसंख्यक जातियों के अधिकार

जातियों के प्रश्न पर विचार करते समय रूसी अवसरवादियों की सबसे आम तिकड़म आस्ट्रियाई दृष्टांत का हवाला करना है। 'सेवेरनाया प्राव्दा' में अपने लेख ('प्रोस्वेश्चेनिये', अंक १०, पृ० ९६–९८) में, जिस पर अवसरवादियों ने प्रहार किया है (श्री सेम्कोव्स्की ने 'नोवाया राबोचाया गाज़ेता'[31] में तथा श्री लीबमैन ने 'त्साइत' में), मैंने इस पर ज़ोर दिया है कि जातीय प्रश्न का समाधान, जहां तक वह मोटे तौर पर पूंजीवाद के अंतर्गत संभव है, केवल एक है और वह सुसंगत जनतंत्र के ज़रिये ही है। इसके प्रमाण में मैंने दूसरी बातों के अलावा स्विट्ज़रलैंड का हवाला दिया है।

यह हवाला उपरोक्त दोनों अवसरवादियों को पसंद नहीं आया, जो उसका खंडन करने या उसका महत्व घटाने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमें बताया जाता है कि काउत्स्की ने कहा है कि स्विट्ज़रलैंड एक अपवाद है; जी हां, स्विट्ज़रलैंड में एक विशेष प्रकार का विकेंद्रीकरण है, उसका एक विशेष इतिहास है, वहां विशेष भौगोलिक अवस्थाएं हैं, आबादी का, जो अलग-अलग भाषाएं बोलती है, अनोखा वितरण है, आदि, आदि।

यह सब मामले के सारतत्व से **कतराने** के प्रयत्नों से ज्यादा और कुछ नहीं है। निस्संदेह, स्विट्ज़रलैंड इस अर्थ में अपवाद है कि वह एकजातीय राज्य नहीं है। परंतु रूस और आस्ट्रिया भी ऐसे ही अपवाद (अथवा पिछड़े हुए, जैसे काउत्स्की आगे कहते हैं) हैं। निस्संदेह स्विट्ज़रलैंड में उसकी विशेष, अनोखी ऐतिहासिक तथा सामाजिक अवस्थाओं ने ही उसके अधिकांश पड़ोसी यूरोपीय राज्यों की तुलना में उसके लिए **अधिक** जनतंत्र सुनिश्चित किया है।

परंतु अगर बात अंगीकार किये जानेवाले **मॉडेल** के बारे में है, तो यह सब किसलिए? सारी दुनिया में मौजूदा हालात में वे सभी देश अपवाद हैं, जिनमें यह या वह संस्था **सुसंगत** जनतांत्रिक सिद्धांतों के आधार पर स्थापित हुई है। क्या यह हमें अपने कार्यक्रम में तमाम संस्थाओं के अंदर सुसंगत जनतंत्र का समर्थन करने से रोकता है?

स्विट्ज़रलैंड की विशेषताएं हैं उसका इतिहास, उसकी भौगोलिक तथा अन्य अवस्थाएं। रूस की विशेषताएं हैं उसके सर्वहारा की शक्ति, जिसकी बुर्जुआ क्रांतियों के युग में कोई नज़ीर नहीं है, और देश का भयावह आम पिछड़ापन, जो सब तरह की ख़ामियों तथा पराजयों के ख़तरे के होते हुए अनुपम रूप से द्रुत तथा कृतसंकल्प अग्रगति को वस्तुगत रूप से आवश्यक बनाता है।

हम सर्वहारा दृष्टिकोण से जातियों की समस्या के बारे में कार्यक्रम तैयार कर रहे हैं; सर्वोत्तम के स्थान पर निकृष्टतम दृष्टांतों को मॉडेल के रूप में अपनाने की कब से सिफ़ारिश की जाने लगी है?

बहरसूरत क्या यह अकाट्य तथा अविवादास्पद तथ्य नहीं बना हुआ है कि पूंजीवाद के अंतर्गत जातियों में शांति (जहां तक वह सामान्य रूप से हासिल की जा सकती है) **निरपवाद रूप से** उन्हीं देशों में हासिल की गयी है, जहां सुसंगत जनतंत्र अभिभावी है?

चूंकि यह अकाट्य है, इसलिए अवसरवादियों द्वारा स्विट्ज़रलैंड के स्थान पर आस्ट्रिया का हठपूर्वक हवाला दिया जाना एक ठेठ कैडेटी युक्ति है, इसलिए कि कैडेट हमेशा सर्वोत्तम के बजाय निकृष्टतम यूरोपीय संविधानों की नक़ल करते हैं।

स्विट्ज़रलैंड में **तीन** राजभाषाएं हैं, परंतु जनमतसंग्रह के लिए पेश किये जानेवाले क़ानूनों के मसौदे **पांच** भाषाओं में, यानी तीन राजभाषाओं के अलावा दो रोमांस* बोलियों में छापे जाते हैं। १९०० की जनगणना के अनुसार ये बोलियां स्विट्ज़रलैंड में ३३,१५,४४३ में से ३८,६५१ निवासी बोलते हैं, अर्थात **एक प्रतिशत** से कुछ ज्यादा। सेना में कमीशनयाफ़्ता और ग़ैर-कमीशनयाफ़्ता अफ़सरों को "सैनिकों के साथ उनकी भाषा में बात करने की व्यापकतम स्वतंत्रता दी जाती है"। ग्राउबुंडेन तथा वालिस कैंटनों (प्रांतों) में (प्रत्येक की आबादी

---

* लैटिन मूल की। – सं०

एक लाख से कुछ ज़्यादा है) दोनों बोलियां पूर्ण समानता का उपभोग करती हैं। *

प्रश्न यह है: हमें एक उन्नत देश के इस जीवंत **अनुभव** का प्रचार तथा समर्थन करें या "क्षेत्रेतर स्वायत्तता" जैसी आस्ट्रियाई **ईजादों** को उधार लें, जिन्हें दुनिया में कहीं भी नहीं आज़माया गया है (और अभी तक खुद आस्ट्रियाइयों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है) ?

इस ईजाद का प्रचार करना स्कूली-शिक्षा का जाति के अनुसार विभाजन करने का प्रचार करना है और यह एक घोर हानिकर विचार है। परंतु स्विट्ज़रलैंड का अनुभव सिद्ध करता है कि जातियों के बीच अधिकतम (सापेक्ष) शांति पूरे राज्य में सुसंगत (फिर सापेक्ष) जनतंत्र के अंतर्गत ही **व्यवहार में सुनिश्चित की जा सकती है तथा की गयी है।**

> "स्विट्ज़रलैंड में," – इस प्रश्न का अध्ययन करनेवाले लोग कहते हैं, – "पूर्वी यूरोपीय अर्थ में जातीय प्रश्न नहीं है। यह पद ही (जातीय प्रश्न) यहां अज्ञात है... स्विट्ज़रलैंड ने जातियों के बीच संघर्ष को बहुत पीछे १७९७–१८०३ में ही छोड़ दिया था।" **

इसका अर्थ यह है कि महान फ़ांसीसी क्रांति का युग, जिसने सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण के मौजूदा प्रश्नों का सबसे जनतांत्रिक समाधान प्रस्तुत किया, चलते-चलते, प्रसंगतः जातियों का प्रश्न **"हल करने में" भी सफल हुआ था।**

सेम्कोव्स्कियों, लीबमैनों तथा अन्य अवसरवादियों को अब यह दावा करने की कोशिश करने दीजिये कि यह "अपवादस्वरूप स्विस" हल रूस के किसी भी उयेज़्द या उयेज़्द के किसी भी भाग पर **लागू नहीं किया जा सकता**, जहां २,००,००० बाशिंदों में से केवल चालीस हज़ार नागरिक **दो बोलियां** बोलते हैं और वे अपने इलाक़े में भाषा की **पूर्ण समानता के** इच्छुक हैं।

---

* देखें René Henry, *La Suisse et la question des langues*, Bern, 1907 (रेने आंरी, 'स्विट्ज़रलैंड तथा भाषाओं का प्रश्न', बर्न, १९०७। – सं०)।

** देखें Ed. Blocher, *Die Nationalitäten in der Schweiz*, Berlin, 1910 (एडुआई ब्लोखेर, 'स्विट्ज़रलैंड में जातियां', बर्लिन, १९१०। – सं०)।

जातियों तथा भाषाओं की पूर्ण समानता की हिमायत प्रत्येक जाति के केवल सुसंगत जनतांत्रिक तत्वों (अर्थात केवल सर्वहाराओं) की विशिष्टता है और उन्हें जाति के अनुसार नहीं, अपितु राज्य की पूरी प्रणाली को सुधारने की गहन तथा गंभीर इच्छा से **ऐक्यबद्ध करती है।** इसके विपरीत "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" की हिमायत, पृथक-पृथक व्यक्तियों तथा समूहों के नेक इरादों के बावजूद **जातियों को विभाजित करती है** और वास्तव में एक जाति के मज़दूरों को **उसके** बुर्जुआज़ी के निकट लाती है (सारी यहूदी बुर्जुआ पार्टियों द्वारा इस "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" की स्वीकृति)।

अल्पसंख्यक जाति के अधिकारों की गारंटी पूर्ण समानता के सिद्धांत के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई है। 'सेवेरनाया प्राव्दा' में मेरे लेख में यह सिद्धांत लगभग उसी तरह व्यक्त किया गया था, जिस तरह मार्क्सवादियों के सम्मेलन के बाद के, अधिकृत तथा ज़्यादा सटीक निर्णय में। यह निर्णय मांग करता है कि "संविधान में एक मूलभूत क़ानून शामिल किया जाये, जो किसी एक जाति को प्राप्त सारे विशेषाधिकारों को तथा किसी अल्पसंख्यक जाति के अधिकारों के किसी भी उल्लंघन को अकृत और अमान्य घोषित कर दे"।

श्री लीबमैन इस सूत्र का मज़ाक़ उड़ाने का यत्न करते हैं और पूछते हैं: "कहां से पता चलेगा कि अल्पसंख्यक जाति के अधिकार क्या हैं?" क्या, वह पूछते हैं, इन अधिकारों में अल्पसंख्यक जाति का यह अधिकार शामिल है कि उसके पास जातीय स्कूलों का "अपना कार्यक्रम" हो? अल्पसंख्यक जाति को कितना बड़ा होना चाहिए, ताकि उसे यह अधिकार मिल सके कि उसके अपने जज, अधिकारी तथा मातृभाषा में शिक्षा देनेवाले स्कूल हों? श्री लीबमैन इन प्रश्नों से यह निष्कर्ष निकलवाना चाहते हैं कि एक **"सकारात्मक"** जातीय कार्यक्रम का होना आवश्यक है।

वस्तुतः ये प्रश्न स्पष्टतः दिखलाते हैं कि हमारे बुंदपंथी महाशय कथित छोटी तफ़सीलों तथा ब्योरों पर विवाद की आड़ में कितने प्रतिक्रियावादी विचार चुपके से अंदर लाने की कोशिश करते हैं।

अपने जातीय स्कूलों में "अपना कार्यक्रम"!.. मार्क्सवादियों के पास, प्यारे राष्ट्रवादी-समाजवादी, एक **आम** स्कूली कार्यक्रम **है**, जो, उदाहरण के लिए, सर्वथा धर्म-निरपेक्ष स्कूल की मांग करता है।

मार्क्सवादियों के दृष्टिकोण से जनतांत्रिक राज्य में इस आम कार्यक्रम से कहीं भी तथा किसी भी समय किसी **भटकाव** की इजाज़त नहीं दी जा सकती (उसमें किन्हीं "स्थानीय" विषयों, भाषाओं, आदि के समावेश का प्रश्न स्थानीय बाशिंदों द्वारा तय किया जायेगा)। परंतु शैक्षिक मामलों को "राज्य के हाथ से ले लेने" तथा उन्हें जातियों के नियंत्रण में रखने के सिद्धांत से यह निष्कर्ष निकलता है कि हम, मज़दूर अपने जनतांत्रिक राज्य में "जातियों को" जनता का पैसा धार्मिक स्कूलों पर ख़र्च करने की अनुमति देते हैं! श्री लीबमैन ने "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" का प्रतिक्रियावादी स्वरूप अनजाने ही स्पष्ट रूप से उजागर कर दिया है!

"अल्पसंख्यक जाति को कितना बड़ा होना चाहिए?" यह तो बुंदपंथियों को इतने प्रिय आस्ट्रियाई कार्यक्रम में भी परिभाषित नहीं किया गया है: वह कहता है (हमारे कार्यक्रम से अधिक संक्षिप्त तथा कम स्पष्ट रूप में) – "अल्पसंख्यक जातियों के अधिकार शाही संसद द्वारा पारित किये जानेवाले एक विशेष क़ानून द्वारा संरक्षित हैं" (ब्रून कार्यक्रम का अनुच्छेद ४)।

आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादियों से किसी ने यह प्रश्न क्यों नहीं पूछा: यह क़ानून ठीक-ठीक क्या है और उसे ठीक-ठीक किन अल्पसंख्यक जातियों के लिए और ठीक-ठीक किन अधिकारों की गारंटी करनी है?

इसलिए कि सब विवेकशील लोग समझते हैं कि किसी कार्यक्रम में ब्योरों को निर्धारित करना अनुपयुक्त तथा असंभव है। कार्यक्रम केवल आधारभूत सिद्धांत निरूपित करता है। इस मामले में आस्ट्रियाइयों के लिए आधारभूत सिद्धांत स्वतःस्पष्ट है तथा रूसी मार्क्सवादियों के सबसे हाल के सम्मेलन के निर्णय में प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त है। यह सिद्धांत है कोई जातीय विशेषाधिकार नहीं, कोई जातीय असमानता नहीं।

एक ठोस मिसाल ले लें, ताकि बुंदपंथी महाशय के लिए प्रश्न स्पष्ट किया जा सके। १८ जनवरी, १९११ की एक स्कूली जनगणना के अनुसार सार्वजनिक "शिक्षा" मंत्रालय के तहत सेंट पीटर्सबर्ग के प्राथमिक स्कूलों में ४८,०७६ छात्र थे। इनमें से ३९६ यहूदी थे, यानी एक प्रतिशत से कम। अन्य आंकड़े ये हैं: रूमानियाई छात्र – २, जार्जियाई छात्र – १, आर्मीनियाई छात्र – ३, आदि।[32] क्या कोई ऐसा

"सकारात्मक" जातीय कार्यक्रम बनाना संभव है, ताकि संबंधों तथा अवस्थाओं की सारी विविधता को उसके दायरे में लाया जा सके? (और सेंट पीटर्सबर्ग, यक़ीनन, रूस में सबसे "विविधतापूर्ण" जातीय नगर नहीं है।) लगता है, जातीय "सूक्ष्मताओं" के बुंदपंथियों जैसे विशेषज्ञ तक इस तरह का कार्यक्रम नहीं बना सकेंगे।

फिर भी यदि देश के संविधान में अल्पसंख्यक जाति के अधिकारों का उल्लंघन करनेवाले सभी क़दमों को अकृत और अमान्य बनाने के बारे में आधारभूत क़ानून हो, तो कोई भी नागरिक ऐसे आदेश मंसूख़ करने की मांग कर सकता है, जो, उदाहरण के लिए, सरकारी ख़र्चे पर इबरानी भाषा, यहूदी इतिहास, आदि के लिए विशेष अध्यापक उजरत पर रखने या यहूदी, आर्मीनियाई अथवा रूमानियाई बच्चों या एक जार्जियाई बच्चे तक को पढ़ाने के लिए सरकारी इमारतें देने की मनाही करता हो। कुछ भी हो, अल्पसंख्यक जातियों की सारी न्यायसंगत तथा उचित मांगों की समानता के आधार पर पूर्ति करना क़दापि असंभव नहीं है और कोई भी यह नहीं कहेगा कि समानता की पैरोकारी हानिकर है। इसके विपरीत स्कूलों का जातियों के अनुसार विभाजन करने की वकालत करना, उदाहरण के लिए, सेंट पीटर्सबर्ग में यहूदी बच्चों के लिए विशेष यहूदी स्कूलों की वकालत करना, यक़ीनन हानिकर होगा तथा **प्रत्येक** अल्पसंख्यक जाति के एक, दो या तीन बच्चों के लिए जातीय स्कूल स्थापित करना नितांत असंभव होगा।

इसके अलावा किसी भी देशव्यापी क़ानून में यह निर्धारित करना असंभव है कि किसी अल्पसंख्यक जाति को कितना बड़ा होना चाहिए, ताकि वह विशेष स्कूलों या अनुपूरक विषयों के लिए विशेष अध्यापकों, आदि की हक़दार हो सके।

इसके विपरीत समानता के बारे में देशव्यापी क़ानून प्रादेशिक विधान सभाओं, नगर, ज़ेम्स्त्वो, ग्राम समुदाय, आदि के विशेष विनियमों और निर्णयों में तफ़सील के साथ तैयार और विकसित किया जा सकता है।

६. केंद्रीकरण तथा स्वायंत्तता

अपने उत्तर में श्री लीबमैन लिखते हैं :

> "हमारे लिथुआनिया, बाल्टिक प्रदेश, पोलैंड, वोलीनिया, दक्षिणी रूस, आदि को लीजिये – सभी जगह आपको एक **पंचमेल** आबादी मिलेगी ; एक भी ऐसा शहर नहीं है, जहां कोई न कोई बड़ी अल्पसंख्यक जाति न बसती हो। कितना भी विकेंद्रीकरण क्यों न किया जाये, भिन्न-भिन्न स्थानों में (मुख्यतः शहरी बस्तियों में) भिन्न-भिन्न जातियां एक साथ निवास करती हुई सदा पायी जायेंगी, और यह जनतंत्रवाद ही है, जो एक अल्पसंख्यक जाति को बहुसंख्यक जाति के हवाले कर देता है। परंतु, जैसा हम जानते हैं, व्ला० इ० स्विस संघ में पाये जानेवाले राज्य के संघात्मक ढांचे तथा निर्बाध विकेंद्रीकरण के विरोधी हैं। प्रश्न यह है : स्विट्ज़रलैंड की मिसाल पेश करने में उनका क्या प्रयोजन था ?"

स्विट्ज़रलैंड की मिसाल पेश करने में मेरा जो उद्देश्य था, वह मैं ऊपर पहले ही स्पष्ट कर चुका हूं। मैं यह भी समझा चुका हूं कि अल्पसंख्यक जाति के अधिकारों की रक्षा करने की समस्या एक सुसंगत जनतांत्रिक राज्य में, जो समानता के सिद्धांत का पूर्णतः पालन करता हो, जारी किये जानेवाले देशव्यापी क़ानून द्वारा **ही** हल की जा सकती है। लेकिन ऊपर, जो इबारत उद्धृत की गयी है, उसमें श्री लीबमैन उन अत्यंत साधारण (तथा अत्यंत भ्रामक) तर्कों (अथवा संशयपूर्ण टीकाओं) में से एक और को दोहराते हैं, जो अकसर मार्क्सवादी जातीय कार्यक्रम के ख़िलाफ़ दिये जाते हैं और इसलिए जो इस क़ाबिल हैं कि उनकी जांच की जाये।

मार्क्सवादी बेशक संघ तथा विकेंद्रीकरण के ख़िलाफ़ हैं, जिसकी सीधी-सादी वजह यह है कि पूंजीवाद अपने विकास के लिए यथासंभव बड़े से बड़े तथा अधिक से अधिक केंद्रीकृत राज्यों की अपेक्षा करता है। **दूसरी अवस्थाएं समान हों,** तो वर्ग-चेतन सर्वहारा सदैव वृहत्तर राज्य का समर्थन करेगा। वह सदैव मध्ययुगीन अनन्यता के विरुद्ध संघर्ष करेगा तथा बड़े भूभागों के यथासंभव घनिष्ठ आर्थिक संलयन का स्वागत करेगा, जहां बुर्जुआज़ी के ख़िलाफ़ सर्वहारा का संघर्ष व्यापक आधार पर विकसित हो सके।

पूंजीवाद द्वारा उत्पादक शक्तियों का व्यापक तथा द्रुत विकास विशाल, राजनीतिक दृष्टि से संहत तथा संयुक्त प्रदेशों की **मांग करता है,** क्योंकि यहां ही बुर्जुआ वर्ग – अपने अनिवार्य प्रतिलोम सर्वहारा वर्ग के साथ-साथ – एकजुट हो सकता है और सभी पुराने, मध्ययुगीन, वर्णगत, स्थानगत, लघु-राष्ट्रीय, धार्मिक तथा दूसरे प्राचीरों को ध्वस्त कर सकता है।

जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार, अर्थात पृथक होने और स्वतंत्र जातीय राज्य स्थापित करने के अधिकार की चर्चा अन्यत्र की जायेगी।* परंतु जब तक और जहां तक भिन्न-भिन्न जातियां एक अभिन्न राज्य के रूप में गठित हैं, मार्क्सवादी कभी भी और किसी भी सूरत में न तो संघात्मक सिद्धांत की, न ही विकेंद्रीकरण की वकालत करेंगे। विशाल केंद्रीकृत राज्य मध्ययुगीन अनैक्य से समस्त संसार की भावी समाजवादी एकता की दिशा में एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक क़दम है और केवल ऐसे राज्य (पूंजीवाद के साथ **अविभाज्य रूप से** संबद्ध) **से होकर** ही समाजवाद तक पहुंचा जा सकता है।

परंतु यह भूल जाना अक्षम्य होगा कि केंद्रवाद का समर्थन करने में हम एकमात्र **जनतांत्रिक** केंद्रवाद का समर्थन करते हैं। इस विषय में सामान्यतः सभी कूपमंडूकों ने और विशेषतः (मरहूम द्रागोमानोव समेत) राष्ट्रवादी कूपमंडूकों ने समस्या को ऐसा उलझा दिया है कि हमें बाध्य होकर बार-बार उसे स्पष्ट करने की चेष्टा में समय लगाना पड़ता है।

विशेष आर्थिक तथा सामाजिक अवस्थाओं, आबादी के एक विशिष्ट जातीय गठन, आदि वाले प्रदेशों के लिए **स्वायत्तता** के साथ स्थानीय स्वशासन का अपवर्जन करना तो दूर, जनतांत्रिक केंद्रवाद अनिवार्यतः **दोनों** की मांग करता है। रूस में केंद्रवाद को सदा निरंकुशता तथा नौकरशाही के साथ गड्डमड्ड किया जाता है। यह उलझाव स्वभावतः रूस के इतिहास से उत्पन्न होता है, परंतु फिर भी एक मार्क्सवादी के लिए उसका शिकार हो जाना सर्वथा अक्षम्य है।

इसे एक ठोस मिसाल के ज़रिये सबसे अच्छी तरह समझाया जा सकता है।

---

* देखें इस पुस्तक के पृ० ५४–१२७। – सं०

अपने लंबे लेख 'जातीय प्रश्न और स्वायत्तता'* में रोज़ा लुक्ज़ेम-बुर्ग ने, बहुत सी अजीब ग़लतियों के साथ (जिनकी हम नीचे चर्चा करेंगे), स्वायत्तता की मांग को पोलैंड तक ही **सीमित रखने** की कोशिश करने की एक अजीबोग़रीब ग़लती की है।

परंतु, आइये, पहले हम यह देखें कि वह स्वायत्तता की परिभाषा **किस प्रकार** करती हैं।

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग यह स्वीकार करती हैं – और मार्क्सवादी होने के नाते बेशक वह यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं – कि पूंजीवादी समाज के सभी बड़े और महत्वपूर्ण आर्थिक तथा राजनीतिक प्रश्न अलग-अलग प्रदेशों की स्वायत्त विधान-सभाओं द्वारा नहीं, एकमात्र पूरे राज्य की केंद्रीय संसद द्वारा निपटाये जाने चाहिए। इन प्रश्नों में टैरिफ़ नीति, वाणिज्य तथा उद्योग संबंधी क़ानून, परिवहन और संचार-साधन (रेल, डाक-तार, टेलीफ़ोन, इत्यादि), सेना, टैक्स व्यवस्था, दीवानी ** तथा फ़ौजदारी क़ानून, शिक्षा के सामान्य सिद्धांत (उदाहरण के लिए, शुद्धतः धर्म-निरपेक्ष स्कूलों, सार्विक शिक्षा, न्यूनतम कार्यक्रम, जनतांत्रिक स्कूल प्रबंध, आदि के बारे में क़ानून), श्रम-सुरक्षा क़ानून, और राजनीतिक स्वातंत्र्य (संघ-स्वातंत्र्य), आदि, आदि सभी सम्मिलित हैं।

स्वायत्त विधान-सभाओं को – देश के सामान्य क़ानूनों के आधार पर – शुद्धतः स्थानीय, प्रादेशिक अथवा शुद्धतः जातीय महत्व के प्रश्नों पर विचार करना चाहिए। इस विचार को बड़े विस्तार से – चाहे अत्यधिक विस्तार से न सही – प्रस्तुत करते हुए रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग, मिसाल के तौर पर, स्थानीय रेलों (अंक १२, पृ० १४९) तथा स्थानीय राजमार्गों (अंक १४-१५, पृ० ३७६) के निर्माण, इत्यादि की चर्चा करती हैं।

ज़ाहिर है कि कोई ऐसा आधुनिक, सचमुच जनतांत्रिक राज्य अकल्पनीय है, जो ख़ासे सुस्पष्ट आर्थिक तथा सामाजिक लक्षण, विशिष्ट

* *Przeglad Socjaldemokratyczny*[33], क्रैको, १९०८ और १९०९।

** रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग अपने विचारों को बड़े विशद रूप में प्रस्तुत करती हैं, उदाहरण के लिए, वह तलाक़ क़ानूनों का ज़िक्र करती हैं और उचित ही करती हैं (उपरोक्त पत्रिका का अंक १२, पृ० १६२)।

जातीय संरचना, आदि की आबादीवाले प्रत्येक प्रदेश को इस प्रकार की स्वायत्तता प्रदान **नहीं** करता। पूंजीवाद के विकास के लिए अपरिहार्य केंद्रवाद के सिद्धांत का इस (स्थानीय तथा प्रादेशिक) स्वायत्तता से उल्लंघन नहीं होता, वरन इसके विपरीत, वह उसके द्वारा नौकरशाहाना नहीं, **जनतांत्रिक** ढंग से लागू किया जाता है। इस प्रकार की स्वायत्तता के **अभाव में,** जो **देशव्यापी पैमाने पर** पूंजी के केंद्रीकरण, उत्पादक शक्तियों के विकास, बुर्जुआज़ी की एकता तथा सर्वहारा की एकता में **सहायता** देती है, पूंजीवाद का व्यापक, उन्मुक्त तथा द्रुत विकास असंभव होगा या कम से कम अत्यंत बाधित होगा; क्योंकि **शुद्धतः** स्थानीय (प्रादेशिक, जातीय तथा अन्य) प्रश्नों में नौकरशाही दस्तंदाज़ी सामान्यतः आर्थिक तथा राजनीतिक विकास में सबसे बड़ी बाधाओं में एक है और विशेषतः गंभीर, महत्वपूर्ण तथा बुनियादी मामलों में **केंद्रवाद** के विकास में अड़चन है।

इसलिए यह पढ़ते हुए मुसकराये बिना नहीं रहा जा सकता कि हमारी शानदार रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग कितने गंभीर भाव से और "ख़ालिस मार्क्सवादी" फ़िक़रों के ज़रिये यह साबित करने की कोशिश करती हैं कि स्वायत्तता की मांग **केवल** पोलैंड पर ही लागू हो सकती है और **केवल** अपवादस्वरूप ही हो सकती है! बेशक इसमें "संकीर्ण स्थानीय" देशभक्ति का लेशमात्र भी नहीं है; हम यहां केवल "व्यावहारिक" तर्क ही देखते हैं... उदाहरण के लिए, लिथुआनिया के मामले में।

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग चार गुबेर्नियाओं – वील्नो, कोव्नो, ग्रोद्नो और सुवाल्की – को लेती हैं और अपने पाठकों को (तथा अपने को) विश्वास दिलाती हैं कि उनमें "मुख्यतः" लिथुआनी लोग रहते हैं; और इन गुबेर्नियाओं के निवासियों की संख्या जोड़ने पर वह देखती हैं कि लिथुआनी लोग कुल आबादी के २३ प्रतिशत हैं और यदि उनके साथ ज्मुद* लोगों को मिला दिया जाये, तो वे ३१ प्रतिशत – एक-तिहाई से कम – हो जाते हैं। इससे स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि लिथुआनिया के लिए स्वायत्तता का विचार "मनमाना और कृत्रिम" है (अंक १०, पृ० ८०७)।

जो पाठक हमारे रूसी सरकारी आंकड़ों की सर्वत्र जानी हुई ख़ा-

* झेमाइते प्रदेश में निवास करनेवाले एक प्राचीन जातीय समूह को दिया रूसी-पोलिश नाम। – सं०

मियों से वाक़िफ़ हैं, वे रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की ग़लती फ़ौरन पकड़ लेंगे। ग्रोद्नो गुबेर्नियां को क्यों लिया जाये, जहां लिथुआनी लोग आबादी के ०.२ प्रतिशत, अर्थात **एक प्रतिशत का पांचवां भाग** हैं? पूरी वील्नो गुबेर्नियां को क्यों लें और क्यों न उसके केवल त्रोकी उयेज़्द को लें, जहां लिथुआनी आबादी के **बहुसंख्यक भाग** हैं? पूरी सुवाल्की गुबेर्नियां को क्यों लें और लिथुआनियों की संख्या आबादी का ५२ प्रतिशत मानें और क्यों न उस गुबेर्नियां के लिथुआनी उयेज़्दों को, अर्थात सात उयेज़्दों में से पांच को लें, जहां लिथुआनी आबादी का ७२ **प्रतिशत** भाग हैं?

आधुनिक पूंजीवाद की अवस्थाओं और मांगों के बारे में बात करना और साथ ही रूस के "आधुनिक" नहीं, "पूंजीवादी" नहीं, वरन मध्ययुगीन, सामंती तथा सरकारी-नौकरशाही प्रशासकीय प्रभागों को लेना, और वह भी उनके सबसे भोंडे रूप (उयेज़्दों की जगह गुबेर्नियाओं) में लेना हास्यास्पद है। ज़ाहिर है कि जब तक कि ये प्रभाग मिटाये नहीं जाते और उनकी जगह एक ऐसा **सचमुच** "आधुनिक" विभाजन क़ायम नहीं किया जाता, जो ख़ज़ाने की **नहीं**, नौकरशाही की **नहीं**, दस्तूरे अमल की **नहीं**, ज़मीदारों की **नहीं**, पुरोहितों की **नहीं**, बल्कि पूंजीवाद की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तब तक रूस में गंभीर स्थानीय सुधार का कोई प्रश्न नहीं उठता; और आबादी की अधिकतम संभव जातीय एकरूपता निःसंदेह पूंजीवाद की एक आधुनिक आवश्यकता है, क्योंकि जाति और भाषागत एकात्मकता एक ऐसा महत्वपूर्ण उपादान हैं, जो घरेलू बाज़ार में पूरी तरह सिक्का जमाने तथा आर्थिक संसर्ग में पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित करने में सहायक है।

कुछ अजीब-सी बात है कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की इस प्रत्यक्ष ग़लती को बुंदपंथी मेदेम दोहराते हैं, जो यह नहीं कि पोलैंड के विशिष्ट लक्षण एक "अपवाद" हैं, बल्कि यह साबित करने का बीड़ा उठाते हैं कि जातीय-प्रादेशिक स्वायत्तता का सिद्धांत अनुपयुक्त है (बुंदपंथी जातीय क्षेत्रेतर स्वायत्तता के पक्षधर हैं!)। हमारे बुंदपंथी और विसर्जनवादी दुनिया भर में भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न जातियों के सामाजिक-जनवादियों की सभी ग़लतियों और सभी अवसरवादी विचलनों को बटोरते हैं और विश्व सामाजिक-जनवाद में उन्हें जो **निकृष्टतम** मिल सकता है, उसे ग्रहण कर लेते हैं। बुंदपंथी तथा विसर्जनवादी लेखों की कतरनों

का रजिस्टर एक आदर्श सामाजिक-जनवादी **कुरुचि के संग्रहालय** का काम दे सकता है।

मेदेम उपदेशात्मक ढंग से हमें बताते हैं कि प्रादेशिक स्वायत्तता किसी प्रदेश या "भूक्षेत्र" के लिए ठीक है, परंतु वह लाटवी, एस्तोनी या दूसरे इलाक़ों के लिए, जिनकी आबादी पांच लाख से बीस लाख तक है और क्षेत्रफल एक गुबेर्नियां के बराबर है, ठीक नहीं है। "**यह स्वायत्तता न होगी, अपितु महज़ ज़ेम्सत्वो होगा...** इस ज़ेम्सत्वो के ऊपर सच्ची स्वायत्तता स्थापित करना आवश्यक होगा..." और आगे लेखक पुरानी गुबेर्नियाओं और उयेज़्दों का "विघटन करने" की निंदा करते हैं।*

वास्तव में मध्ययुगीन, सामंती, सरकारी प्रशासकीय प्रभागों को क़ायम रखने का अर्थ है आधुनिक पूंजीवाद की अवस्थाओं का "विघटन" तथा अंगच्छेदन। सिर्फ़ इन प्रभागों की भावना से सराबोर लोग ही विशेषज्ञोचित विद्वत्त भाव से "ज़ेम्सत्वो" तथा "स्वायत्तता" के वैपरीत्य पर चिंतन कर सकते हैं और बड़े प्रदेशों में "स्वायत्तता" तथा छोटे प्रदेशों में ज़ेम्सत्वो पद्धति को रूढ़िबद्ध रूप से लागू करने की मांग कर सकते हैं। आधुनिक पूंजीवाद इन नौकरशाहाना पिटे-पिटाये रूपों की हरगिज़ अपेक्षा नहीं करता। ५ लाख ही नहीं, ५० हज़ार की भी आबादीवाले जातीय क्षेत्र स्वायत्तता की हैसियत क्यों नहीं प्राप्त कर सकते; आर्थिक आदान-प्रदान के लिए सुविधापूर्ण अथवा आवश्यक होने पर ऐसे क्षेत्र भिन्न-भिन्न आकारों के पड़ोसी क्षेत्रों के साथ अत्यंत विविध रूपों में मिलकर एक एकल स्वायत्त प्रदेश क्यों नहीं क़ायम कर सकते – ये बातें बुंदपंथी मेदेम का राज़ बनी रहती हैं।

हम यह कहेंगे कि ब्रून कांग्रेस का सामाजिक-जनवादी जातीय कार्यक्रम पूर्णतः जातीय-प्रादेशिक स्वायत्तता के सिद्धांत पर आधारित है; उसमें यह प्रस्तावित किया गया है कि आस्ट्रिया का "ऐतिहासिक शाही इलाक़ों की जगह" "विशिष्ट जातीय" क्षेत्रों में विभाजन किया जाना चाहिए (ब्रून कार्यक्रम का अनुच्छेद २)। हम इस हद तक नहीं जायेंगे। इसमें संदेह नहीं कि एकरूप जातीय आबादी मुक्त, व्यापक

* देखें व० मेदेम का लेख, 'रूस में जातीय प्रश्न के निरूपण में एक योगदान', 'वेस्तनिक येव्रोपी' पत्रिका,[34] १९१२, अंक ८ तथा ९।

तथा वस्तुतः आधुनिक वाणिज्यिक संसर्ग में योग देनेवाला एक अत्यंत विश्वसनीय उपादान है। यह बात संदेह से परे है कि एक भी मार्क्सवादी, यहां तक कि एक भी दृढ़ जनतंत्रवादी आस्ट्रियाई शाही इलाक़ों और रूसी गुबेर्नियाओं और उयेज़्दों (अंतोक्त उतने बुरे नहीं हैं, जितने आस्ट्रियाई शाही इलाक़े, मगर फिर भी बहुत बुरे हैं) का समर्थन नहीं करेगा, न ही इन कालातीत प्रभागों की ऐसे प्रभागों से प्रस्थापना करने की ज़रूरत से इन्कार करेगा, जो जहां तक संभव हो सकता है, आबादी की जातीय संरचना के साथ मेल खायेंगे। अंत में यह भी संदेह से परे है कि समस्त जातीय उत्पीड़न के उन्मूलन के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि पूर्णतः समरूप आबादीवाले स्वायत्त क्षेत्र स्थापित किये जायें, चाहे वे कितना भी छोटे क्यों न हों, जिनकी ओर देश भर में, यहां तक कि संसार भर में बिखरे संबंधित जातियों के सदस्य खिंच सकें और जिनके साथ वे हर तरह के संबंध और मुक्त संघ स्थापित कर सकें। यह सब निर्विवाद है, और इसके ख़िलाफ़ सिर्फ़ रूढ़िबद्ध नौकरशाहाना दृष्टिकोण से ही तर्क किया जा सकता है।

फिर भी आबादी की जातीय संरचना चाहे अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक उपादानों में से **एक** उपादान है, मगर वह **न तो एकमात्र** और **न ही** सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपादान है। उदाहरण के लिए, पूंजीवाद के अंतर्गत नगर एक **अत्यंत महत्वपूर्ण** आर्थिक भूमिका का निर्वाह करते हैं और सर्वत्र, पोलैंड में, लिथुआनिया में, उक्रइना में, रूस में तथा अन्यत्र, मिश्रित आबादी नगरों की विशेषता है। "जातीय" उपादान की ख़ातिर नगरों को उन गांवों तथा इलाक़ों से विच्छिन्न कर देना हास्यास्पद तथा असंभव होगा, जो आर्थिक रूप से उनकी ओर आकर्षित होते हैं। इसी लिए यह आवश्यक है कि मार्क्सवादी अपने दृष्टिकोण को पूर्णतः तथा अनन्यतः "जातीय-प्रादेशिक" सिद्धांत पर आधारित न करें।

रूसी मार्क्सवादियों के पिछले सम्मेलन ने समस्या का जो समाधान प्रस्तावित किया है, वह आस्ट्रियाई समाधान से कहीं ज़्यादा सही है। इस प्रश्न पर सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्थापना को प्रस्तुत किया:

"...व्यापक प्रादेशिक स्वायत्तता" (निस्संदेह, केवल पोलैंड के लिए नहीं, बल्कि रूस के सभी प्रदेशों के लिए) "तथा पूर्ण जनतांत्रिक स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था करना आवश्यक है और यह भी आवश्यक है कि स्वशासी तथा स्वायत्त प्रदेशों की सीमाओं का निर्धारण" (मौजूदा गुबेर्नियाओं, उयेज़्दों, आदि की सीमाओं द्वारा नहीं, बल्कि) "अपनी आर्थिक तथा सामाजिक अवस्थाओं, आबादी की जातीय संरचना, आदि के आधार पर स्वयं स्थानीय निवासियों द्वारा किया जाये।"*

यहां आबादी की जातीय संरचना को **उसी कोटि में** रखा गया है, जिसमें दूसरी अवस्थाओं (पहले आर्थिक, फिर सामाजिक, इत्यादि) को, जिन्हें उन नयी सीमाओं को निर्धारित करने के आधार का काम देना होगा, जो नौकरशाही और एशियाई बर्बरता नहीं, आधुनिक पूंजीवाद की आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगी। सिर्फ़ स्थानीय आबादी ही इन अवस्थाओं का बिलकुल ठीक-ठीक "आकलन" कर सकती है और इस आधार पर देश की केंद्रीय संसद स्वायत्त प्रदेशों की सीमाओं को तथा स्वायत्त विधान-सभाओं के अधिकारों को निर्धारित करेगी।

* * *

हमें अभी भी जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के प्रश्न की जांच करनी है। इस प्रश्न पर सभी जातियों के अवसरवादियों का एक पूरा मजमा – विसर्जनवादी सेम्कोव्स्की, बुंदपंथी लीबमैन तथा उक्रइनी राष्ट्रवादी-समाजवादी लेव युर्केविच – रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की ग़लतियों को "प्रचारित" करने के काम में जुट गया है। इस प्रश्न की, जिसे इस पूरे "मजमे" ने इस बुरी तरह उलझा दिया है, चर्चा हमारे दूसरे लेख में की जायेगी।

अक्तूबर – दिसंबर,
१९१३ में लिखित।
१९१३ में 'प्रोस्वेश्चेनिये' पत्रिका (अंक १०, ११ तथा १२) में प्रकाशित।
हस्ताक्षर: **व्ला० इल्यीन**

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
पांचवां रूसी संस्करण,
खंड २४, पृ० ११३–१५०

---

* देखें व्ला० इ० लेनिन, 'पार्टी-कार्यकर्ताओं के साथ रू० सा० ज० म० पा० की केंद्रीय समिति के १९१३ के ग्रीष्म सम्मेलन के प्रस्ताव', अध्याय 'जातीय प्रश्न के बारे में प्रस्ताव'। – **सं०**

जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार

रूस के मार्क्सवादियों के कार्यक्रम का अनुच्छेद ६ को लेकर, जो जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के बारे में है, इधर कुछ दिनों से (जैसा कि हम 'प्रोस्वेश्चेनिये' में बता चुके हैं)* अवसरवादियों ने बाक़ायदा एक जिहाद छेड़ दिया है। रूसी विसर्जनवादी सेम्कोव्स्की ने पीटर्सबर्ग के विसर्जनवादी अख़बार में, बुंदपंथी लीबमैन ने और उक्रइनी राष्ट्रवादी-समाजवादी युरकेविच ने अपने-अपने अख़बारों में इस अनुच्छेद की कड़ी आलोचना की है और उसका घोर तिरस्कार किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे मार्क्सवादी कार्यक्रम पर रंग-रंग के अवसरवादियों के इस "हल्ले" का आजकल के आम राष्ट्रवादी ढुलमुलपन के साथ बहुत गहरा संबंध है। इसलिए हम इस प्रश्न के विस्तृत विश्लेषण को समयोचित समझते हैं। चलते-चलते हम यह भी कह दें कि उपरोक्त अवसरवादियों में से किसी ने भी अपनी तरफ़ से एक भी नयी दलील नहीं दी है: उन सबने केवल उन्हीं बातों को दोहराया है, जो रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने पोलैंड संबंधी अपने १६०८–१६०६ के लंबे लेख 'जातीय प्रश्न और स्वायत्तता' में कही थीं। अपनी विवेचना में हम मुख्यतः रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के "मौलिक" तर्कों को ही लेंगे।

* देखें प्रस्तुत खंड में प्रकाशित लेनिन का 'जातीय प्रश्न पर आलोचनात्मक टीकाएं' शीर्षक लेख, पृ० १६–५३।–सं०

१. जातियों का आत्मनिर्णय क्या है?

जिसे आत्मनिर्णय कहा जाता है, उसकी मार्क्सवादी ढंग से जांच करने की कोशिश करते समय स्वाभाविक रूप से यही प्रश्न सबसे पहले उठता है। इस शब्द का क्या अर्थ समझना चाहिए? क्या इसका उत्तर उन क़ानूनी परिभाषाओं में ढूंढ़ा जाना चाहिए, जो अधिकार की नाना प्रकार की "सामान्य संकल्पनाओं" से निकाली गयी हैं? या इसका उत्तर राष्ट्रीय आंदोलनों के ऐतिहासिक तथा आर्थिक अध्ययन में ढूंढ़ा जाना चाहिए?

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सेम्कोव्स्कियों, लीबमैनों तथा युरकेविचों ने इस प्रश्न को उठाने की बात सोची भी नहीं और अपने आपको केवल मार्क्सवादी कार्यक्रम की "अस्पष्टता" की खिल्ली उड़ाने तक ही सीमित रखा; लगता है कि अपने भोलेपन के कारण वे यह भी नहीं जानते कि जातियों के आत्मनिर्णय के बारे में केवल १६०३ के रूसी कार्यक्रम[35] में ही नहीं, बल्कि १८६३ की लंदन की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव (जिसका उल्लेख मैं उचित स्थान पर विस्तारपूर्वक करूंगा) में भी कहा गया है। इससे कहीं अधिक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग, जिन्होंने विचाराधीन अनुच्छेद के तथाकथित अमूर्त तथा अधिभूतवादी स्वरूप के बारे में बहुत सी बातें कही हैं, स्वयं भी अमूर्तता तथा अधिभूतवाद का शिकार हो गयी हैं। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग स्वयं ही लगातार आत्मनिर्णय के बारे में सामान्यानुमानों में भटक जाती हैं (यहां तक कि वह इस प्रश्न को लेकर बड़े दिलचस्प ढंग से फ़लसफ़ियाती हैं कि किसी जाति की इच्छा का पता कैसे लगाया जाये), उन्होंने कहीं भी स्पष्ट रूप से तथा ठीक-ठीक यह प्रश्न नहीं उठाया है कि इस समस्या का असली निचोड़ क़ानूनी परिभाषाओं में निहित है या समस्त विश्व के राष्ट्रीय आंदोलनों के अनुभव में?

इस प्रश्न का, जिससे कोई भी मार्क्सवादी कतरा नहीं सकता, सही-सही निरूपण करने से रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की दस में से नौ दलीलें ख़त्म हो जातीं। रूस में राष्ट्रीय आंदोलन पहली बार ही नहीं उठे हैं, और न ये अकेले इस देश की विशेषता हैं। सारी दुनिया में सामंतवाद पर पूंजीवाद की अंतिम विजय के काल का राष्ट्रीय आंदोलनों से संबंध रहा है। इन आंदोलनों का आर्थिक आधार यह तथ्य है कि पण्य-उत्पादन

की पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए बुर्जुआजी द्वारा अंदरूनी मंडियों पर क़ब्जा किया जाना, राजनीतिक दृष्टि से संयुक्त ऐसे इलाक़ों का होना, जिनके निवासी एक ही भाषा बोलते हों, और इस भाषा के विकास तथा साहित्य में उसके दृढ़ीकरण में सभी बाधाओं का हटाया जाना आवश्यक है। इसी में राष्ट्रीय आंदोलनों की आर्थिक बुनियाद निहित है। भाषा मनुष्य के संसर्ग का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। आधुनिक पूंजीवाद के अनुरूप सचमुच स्वतंत्र तथा व्यापक वाणिज्यिक आदान-प्रदान के लिए, आबादी के सभी अलग-अलग वर्गों के स्वतंत्र तथा व्यापक समूहन के लिए और अंततः मंडी और छोटे-बड़े हर मालिक, ख़रीदार तथा विक्रेता के बीच घनिष्ठ संबंधों की स्थापना के लिए एक ही भाषा तथा अबाध विकास सबसे महत्वपूर्ण शर्तों में है।

इसलिए हर राष्ट्रीय आंदोलन की प्रवृत्ति **जातीय राज्य** बनाने की दिशा में होती है, जिसके अंतर्गत आधुनिक पूंजीवाद की ये अपेक्षाएं सबसे अच्छे ढंग से पूरी होती हैं। गूढ़तम आर्थिक कारक इसी लक्ष्य की ओर ले जाते हैं और इसलिए पूरे पश्चिमी यूरोप में, यही नहीं, बल्कि पूरे सभ्य जगत में पूंजीवादी मंज़िल के लिए जातीय राज्य ही **लाक्षणिक** तथा सामान्य है।

अतः यदि हम जातियों के आत्मनिर्णय का अर्थ क़ानूनी परिभाषाओं के साथ न खेलते हुए, या अमूर्त परिभाषाएं न "गढ़ते हुए", बल्कि राष्ट्रीय आंदोलनों की ऐतिहासिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की जांच करते हुए समझना चाहते हैं, तो हम अनिवार्य रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि जातियों के आत्मनिर्णय का अर्थ है इन जातियों का पराये जातीय समूहों से राजकीय अलगाव और स्वतंत्र जातीय राज्य का निर्माण।

आगे चलकर हम और कारणों पर विचार करेंगे कि आत्मनिर्णय के अधिकार का अर्थ एक अलग राज्य के रूप में अस्तित्व के अधिकार के अतिरिक्त और कुछ समझना क्यों ग़लत है। इस समय तो हम इस अनिवार्य निष्कर्ष से "पिंड छुड़ाने" की रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की कोशिशों पर विचार करेंगे कि जातीय राज्य बनाने की चेष्टा गहरी आर्थिक बुनियादों पर आधारित होती है।

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग काउत्स्की की 'राष्ट्रीयता तथा अंतर्राष्ट्रीयता' पुस्तिका से भली भांति परिचित हैं, (*Die Neue Zeit*[36], अंक १,

१९०७–१९०८, का परिशिष्ट; रूसी अनुवाद 'नाऊचनाया मीस्ल'[37] पत्रिका में, रीगा, १९०८)। वह जानती हैं कि काउत्स्की* इस पुस्तिका के अनुच्छेद ४ में जातीय राज्य के प्रश्न की विस्तारपूर्वक छानबीन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि ओटो बावेर "जातीय राज्य का निर्माण करने की आकांक्षा की शक्ति को **कम करके आंकते हैं**" (उपरोक्त पुस्तिका, पृ० २३)। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने स्वयं काउत्स्की के शब्दों को उद्धृत किया है: "जातीय राज्य राज्य का वह रूप है, जो आधुनिक परिस्थितियों के लिए" (अर्थात मध्ययुगीन, प्राक्-पूंजीवादी, आदि परिस्थितियों से भिन्न पूंजीवादी, सभ्य, आर्थिक दृष्टि से प्रगतिशील परिस्थितियों के लिए) "**सबसे उपयुक्त है**, यह वह रूप है, जिसके अंतर्गत राज्य अपने कार्यों को सर्वोत्तम ढंग से पूरा कर सकता है" (अर्थात पूंजीवाद के सर्वाधिक स्वतंत्र, व्यापक तथा तीव्र विकास को सुनिश्चित करनेवाले कार्यों को)। इसके साथ ही हम काउत्स्की की इससे भी अधिक सही वह बात भी जोड़ दें, जो उन्होंने अंत में कही है: मिश्रित जातीय संरचनावाले राज्य (जिन्हें जातीय राज्यों से विभेदित करने के लिए बहुजातीय राज्य कहा जाता है) "हमेशा ऐसे राज्य होते हैं, जिनका आंतरिक गठन किसी न किसी कारण असामान्य अथवा अर्धविकसित" (पिछड़ा हुआ) "रह गया है"। कहने की ज़रूरत नहीं कि काउत्स्की असामान्य गठन का उल्लेख केवल इस अर्थ में करते हैं कि वह उस गठन से मेल नहीं खाता, जो विकाससमान पूंजीवाद की अपेक्षाओं के सबसे अधिक अनुकूल होता है।

अब सवाल यह है कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने काउत्स्की के इन ऐतिहासिक-आर्थिक निष्कर्षों को किस तरह लिया है? वे सही हैं या ग़लत? काउत्स्की का यह ऐतिहासिक-आर्थिक सिद्धांत सही है, या बावेर का, जो बुनियादी तौर पर मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है? बावेर के असंदिग्ध "राष्ट्रीय अवसरवाद", उनकी सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की हिमायत, उनके राष्ट्रवादी मोह (काउत्स्की के शब्दों में "राष्ट्रीय पहलू

* १९१६ में लेख के पुनर्संस्करण की तैयारी करते हुए लेनिन ने इसी स्थान पर यह विशेष टीका लिखी थी: "पाठक से यह याद करने का निवेदन है कि १९०९ तक, अपनी बढ़िया पुस्तिका 'सत्ता के मार्ग पर' के प्रकाशन तक काउत्स्की अवसरवाद के विरोधी थे और केवल १९१०–१९११ में, निर्णायक रूप से १९१४–१९१६ में वह अपने विचार बदलकर अवसरवाद के पक्षपाती बने।"

पर यहां-वहां ज़ोर"), उनकी "राष्ट्रीय पहलू की बेहद अतिरंजना तथा अंतर्राष्ट्रीय पहलू की पूर्ण विस्मृति" (काउत्स्की) का और जातीय राज्य की स्थापना करने की आकांक्षा की शक्ति को कम करके आंकने का आपस में क्या संबंध है?

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने यह सवाल उठाया तक नहीं। वह इस संबंध को देख भी नहीं पायीं। उन्होंने बावेर के सैद्धांतिक विचारों को पूर्ण रूप में लेकर उनके गुण-दोषों को नहीं जांचा। उन्होंने जातियों के प्रश्न के बारे में ऐतिहासिक-आर्थिक सिद्धांत तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के बीच अंतर भी नहीं किया। काउत्स्की की आलोचना करते समय वह अपने आपको निम्नलिखित टीकाओं तक ही सीमित रखती हैं:

> "...यह 'सर्वोत्तम जातीय राज्य केवल एक अमूर्त धारणा है, जिसका सैद्धांतिक रूप में विकास करना तथा पक्ष में तर्क देना बहुत आसान है, परंतु जो वास्तविकता से मेल नहीं खाती" (Przeglad Socjaldemokratyczny, १६०८, अंक ६, पृ० ४६६)।

और इस बेबाक कथन की पुष्टि में उसके बाद इस आशय के तर्क दिये गये हैं कि छोटी जातियों का "आत्मनिर्णय का अधिकार" बड़ी-बड़ी पूंजीवादी ताक़तों के विकास तथा साम्राज्यवाद के कारण एक भ्रम बनकर रह गया है। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग बड़े ज़ोर से कहती हैं: "क्या उन मांटेनेग्रिनों, बुल्गारियाई, रूमानियाई, सर्बियाई, यूनानी और कुछ हद तक स्विस लोगों तक के 'आत्मनिर्णय' की बात गंभीरतापूर्वक भी की जा सकती है, जो कहने को तो स्वतंत्र हैं, परंतु जिनकी स्वतंत्रता 'यूरोपीय कंसर्ट' के राजनीतिक संघर्ष तथा कूटनीतिक प्रपंच का परिणाम है?!" (पृ० ५००)। जो राज्य इन परिस्थितियों के सबसे अधिक उपयुक्त है, "वह जातीय राज्य नहीं है, जैसा कि काउत्स्की समझते हैं, बल्कि एक लुटेरा राज्य है"। ब्रिटिश, फ़्रांसीसी तथा अन्य उपनिवेशों के आकार के बारे में दर्जनों आंकड़े दिये गये हैं।

ऐसी दलीलें पढ़कर इस बात को कि **कौनसी चीज़ क्या है** न समझने की लेखिका की क्षमता पर आश्चर्य किये बिना नहीं रहा जा सकता! काउत्स्की को बड़ी गंभीरता के साथ यह सिखाना कि छोटे राज्य आर्थिक दृष्टि से बड़े राज्यों पर निर्भर रहते हैं; कि अन्य जातियों को लूट-मारकर कुचल देने के लिए बुर्जुआ राज्यों के बीच संघर्ष चल रहा

है; कि साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशों का अस्तित्व है – यह सब होशियार बनने की हास्यास्पद, बचकाना कोशिश है, क्योंकि इन सब बातों का इस विषय से कोई संबंध नहीं है। केवल छोटे राज्य ही नहीं, बल्कि, मिसाल के लिए, रूस भी "धनी" बुर्जुआ देशों की साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी की शक्ति पर आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह निर्भर है। केवल नन्हे-नन्हे बाल्कन राज्य ही नहीं, बल्कि उन्नीसवीं शताब्दी में अमरीका भी आर्थिक दृष्टि से यूरोप का एक उपनिवेश था, जैसा कि मार्क्स ने 'पूंजी'[38] में इंगित किया था। ज़ाहिर है कि सभी मार्क्सवादियों की तरह काउत्स्की इस बात से भली भांति परिचित हैं, परंतु जहां तक राष्ट्रीय आंदोलन तथा जातीय राज्य का प्रश्न है, वह न यहां है, न वहां।

बुर्जुआ समाज में जातियों के राजनीतिक आत्मनिर्णय के और राज्यों के रूप में उनकी स्वाधीनता के प्रश्न के स्थान पर रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने उनकी आर्थिक स्वाधीनता को प्रश्न रख दिया है। यह तो उतनी ही बुद्धिमत्ता की बात है कि जैसे कोई व्यक्ति कार्यक्रम में उठायी गयी बुर्जुआ राज्य में संसद की, अर्थात जनता के प्रतिनिधियों की सभा की प्रभुता की मांग पर विचार करते हुए इस सर्वथा उचित विश्वास का प्रतिपादन करने लगे कि बुर्जुआ देश में शासन-व्यवस्था कैसी भी हो, उसमें प्रभुत्व बड़े पूंजीपतियों का ही रहता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सबसे घनी आबादीवाले महाद्वीप एशिया का अधिकांश या तो "बड़ी ताक़तों" के उपनिवेशों का है या अत्यधिक परावलंबी तथा राष्ट्रों के रूप में उत्पीड़ित राज्यों का है। परंतु क्या इस सर्वविदित बात से इस अकाट्य तथ्य के बारे में ज़रा भी शंका उत्पन्न होती है कि स्वयं एशिया में पण्य-उत्पादन के पूर्णतम विकास के लिए, पूंजीवाद के सर्वाधिक स्वतंत्र, व्यापक तथा तीव्र विकास के लिए परिस्थितियां केवल जापान में, अर्थात केवल एक स्वतंत्र जातीय राज्य में, उत्पन्न हुई हैं? यह राज्य एक बुर्जुआ राज्य है, इसलिए इसने स्वयं भी अन्य जातियों को उत्पीड़ित करना तथा उपनिवेशों को अधीन करना आरंभ कर दिया है। हम यह तो नहीं कह सकते कि पूंजीवाद के पतन के पहले एशिया को इतना समय मिलेगा कि नहीं कि यूरोप की तरह वह भी स्वतंत्र जातीय राज्यों की एक व्यवस्था में विकसित हो सके। परंतु यह एक निर्विवाद तथ्य है कि पूंजीवाद ने एशिया में

जागृति फैलाकर उस महाद्वीप में भी हर जगह राष्ट्रीय आंदोलनों को जन्म दिया है, कि इन आंदोलनों की प्रवृत्ति एशिया में जातीय राज्यों की स्थापना करने की है, कि पूंजीवाद के विकास के लिए सर्वोत्तम परिस्थितियां ठीक ऐसे ही राज्यों द्वारा सुनिश्चित होती हैं। एशिया का उदाहरण काउत्स्की के पक्ष में और रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के विपक्ष में पड़ता है।

इसी प्रकार बाल्कन राज्यों का उदाहरण भी उनके ख़िलाफ़ ही पड़ता है, क्योंकि अब हर आदमी इस बात को देख सकता है कि बाल्कन क्षेत्र में पूंजीवाद के विकास के लिए सर्वोत्तम परिस्थितियां ठीक उसी हद तक पैदा होती हैं कि जिस हद तक उस प्रायद्वीप में स्वतंत्र जातीय राज्य बनते हैं।

इसलिए रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग चाहे कुछ भी कहें, पूरी प्रगतिशील, सभ्य मानवजाति के उदाहरण, बाल्कन क्षेत्र के उदाहरण तथा एशिया के उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि काउत्स्की की प्रस्थापना बिलकुल सही है: जातीय राज्य पूंजीवाद का नियम तथा उसका "मानक" है, बहुजातीय राज्य या तो पिछड़ेपन का द्योतक होता है अथवा अपवाद होता है। जातीय संबंधों के दृष्टिकोण से पूंजीवाद के विकास के लिए सर्वोत्तम परिस्थितियां निःसंदेह जातीय राज्य ही उपलब्ध कराता है। ज़ाहिर है, इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रकार का राज्य, जो पूंजीवादी संबंधों पर आधारित होता है, जातियों के शोषण तथा उत्पीड़न को दूर कर सकता है। इसका अर्थ केवल यह है कि मार्क्सवादी उन प्रबल आर्थिक कारकों को कभी नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते, जो जातीय राज्यों की स्थापना की चेष्टाओं को जन्म देते हैं। इसका अर्थ यह है कि मार्क्सवादियों के कार्यक्रम में "जातियों के आत्मनिर्णय" का ऐतिहासिक-आर्थिक दृष्टिकोण से अर्थ राजनीतिक आत्मनिर्णय, राजकीय स्वतंत्रता, जातीय राज्य के निर्माण के अतिरिक्त और कुछ **नहीं हो सकता।**

इस बात पर हम आगे चलकर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे कि "जातीय राज्य" की बुर्जुआ-जनवादी मांग का समर्थन मार्क्सवादी दृष्टिकोण से, अर्थात सर्वहारा के वर्गीय दृष्टिकोण से किन परिस्थितियों में किया जाना चाहिए। इस समय हम अपने आपको "आत्मनिर्णय" की **संकल्पना** की परिभाषा तक ही सीमित रखेंगे और केवल यही लक्षित करेंगे कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग **जानती हैं** कि इस संकल्पना का अर्थ क्या है ("जातीय राज्य"), जबकि उनके अवसरवादी पक्षधर, लीबमैन, सेम्कोव्स्की तथा युरकेविच जैसे लोग तो **यह भी नहीं जानते!**

२. प्रश्न का ऐतिहासिक दृष्टि से ठोस प्रतिपादन

किसी भी सामाजिक समस्या की छानबीन करने के मामले में मार्क्सवादी सिद्धांत की यह अपरिहार्य अपेक्षा होती है कि उस समस्या की छानबीन **निश्चित** ऐतिहासिक सीमाओं के भीतर रखकर की जानी चाहिए, और यदि उस समस्या का संबंध किसी देश विशेष से हो (जैसे किसी देश विशेष का जातीय कार्यक्रम), तो उन विशिष्ट गुणों की ओर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए, जो उसी ऐतिहासिक युग की सीमाओं में उस देश को दूसरे देशों से अलग करते हैं।

जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं, उसके प्रसंग में मार्क्सवाद की इस अपरिहार्य अपेक्षा का क्या अर्थ है?

सबसे पहले तो इसका अर्थ यह है कि पूंजीवाद की उन दो अवधियों के बीच सख़्ती से अंतर किया जाना चाहिए, जो राष्ट्रीय आंदोलन के दृष्टिकोण से एक दूसरे से बुनियादी तौर पर भिन्न हैं। एक तरफ़ तो सामंतवाद तथा निरंकुशता के ढहने की, बुर्जुआ-जनतांत्रिक समाज तथा राज्य की स्थापना की अवधि है, जिसमें राष्ट्रीय आंदोलन पहली बार जन-आंदोलनों का रूप धारण करते हैं और अख़बारों के ज़रिये, प्रतिनिधि संस्थाओं में भाग लेने के ज़रिये तथा अन्य माध्यमों से आबादी के **सभी** वर्गों को किसी न किसी ढंग से राजनीति में खींच लाते हैं। दूसरी तरफ़, हम पूर्ण रूप से विकसित पूंजीवादी राज्यों की अवधि देखते हैं, जिनमें दीर्घ काल से स्थापित सांविधानिक शासन-व्यवस्था होती है और जिनमें सर्वहारा तथा बुर्जुआज़ी के बीच विरोध बहुत बढ़ चुका होता है – इस अवधि को हम पूंजीवाद के पतन की पूर्ववेला कह सकते हैं।

पहली अवधि की लाक्षणिक विशेषताएं ये हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन उत्पन्न होते हैं और किसान, जो आबादी का सबसे बहुसंख्यक तथा

आम तौर पर राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए और विशेष रूप से जातीय अधिकारों के लिए संघर्ष के संबंध में सबसे "निष्क्रिय" भाग होते हैं, इन आंदोलनों में खिंचकर आते हैं। दूसरी अवधि की लाक्षणिक विशेषताएं ये हैं कि उसमें बुर्जुआ-जनतांत्रिक जन-आंदोलनों का अभाव रहता है और विकसित पूंजीवाद उन राष्ट्रों को, जो वाणिज्यिक आदान-प्रदान के क्षेत्र में पूरी तरह खिंचकर आ चुके हैं, एक-दूसरे के और निकट लाते और उन्हें आपस में अधिकाधिक घुलाते-मिलाते हुए अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर एकताबद्ध पूंजी और मज़दूर वर्ग के अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन के विरोध को सामने ले आता है।

बेशक इन अवधियों के बीच उन्हें अलग करनेवाली कोई दीवार नहीं है, वे अनेक संक्रमणकालीन बंधनों से संबद्ध हैं, परंतु विभिन्न देश अपने जातीय विकास की तीव्रता, अपने जातीय गठन तथा अपनी आबादी के वितरण, आदि की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। किसी देश के मार्क्सवादियों के लिए इन सभी आम ऐतिहासिक तथा ठोस राज्यीय परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना अपना जातीय कार्यक्रम तैयार करने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

और यहीं हमें रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के तर्कों की सबसे कमज़ोर कड़ी दिखायी देती है। असाधारण उत्साह के साथ वह हमारे कार्यक्रम के अनुच्छेद ९ के विरुद्ध "कड़े" शब्दों की झड़ी लगाकर अपने लेख को सजाती हैं और उसे "निराधार", "पिटी-पिटायी बात", "आधिभौतिक शब्द-समूह" और इसी तरह न जाने क्या-क्या घोषित कर देती हैं। यह आशा करना स्वाभाविक ही है कि एक ऐसी लेखिका, जो अधिभूतवाद की (अथवा मार्क्सवादी अर्थ में द्वंद्ववादविरोधी) खोखली अमूर्त बातों की इतने शानदार तरीक़े से निंदा करती हैं, हमारे सामने इसका एक आदर्श प्रस्तुत करेंगी कि समस्या का ठोस ऐतिहासिक विश्लेषण किस प्रकार किया जाना चाहिए। हम एक निश्चित अवधि में – बीसवीं शताब्दी के आरंभ में – एक निश्चित देश – रूस – के मार्क्सवादियों के जातीय कार्यक्रम पर विचार कर रहे हैं। लेकिन क्या रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग यह प्रश्न उठाती हैं कि रूस **किस ऐतिहासिक** अवधि से होकर गुज़र रहा है, कि उस अवधि **विशेष** में उस देश **विशेष** के जातीय प्रश्न तथा राष्ट्रीय आंदोलन की **ठोस** विशेषताएं **क्या** हैं?

नहीं! वह इसके बारे में कुछ भी नहीं कहतीं। उनकी रचना में

आप इस बात के विश्लेषण की एक झलक भी नहीं पायेंगे कि रूस में वर्तमान ऐतिहासिक अवधि में जातियों का प्रश्न किस रूप में हमारे सामने आता है, इस प्रसंग में **रूस** की ख़ास विशेषताएं क्या हैं!

हमें बताया जाता है कि बाल्कन क्षेत्र में जातीय प्रश्न आयरलैंड में इसी प्रश्न से भिन्न रूप में पेश किया जाता है, कि मार्क्स ने १८४८ की ठोस परिस्थितियों में पोलिश तथा चेक राष्ट्रीय आंदोलन का मूल्यांकन अमुक ढंग से किया था (मार्क्स की रचनाओं से एक पृष्ठ का उद्धरण), कि एंगेल्स ने आस्ट्रिया के विरुद्ध स्विट्ज़रलैंड के वन्य कैंटनों (प्रांतों) के संघर्ष तथा मोर्गार्टेन के युद्ध का, जो १३१५ में हुआ, मूल्यांकन अमुक प्रकार से किया है (एंगेल्स की रचनाओं से उद्धरणों का एक पृष्ठ और काउत्स्की की प्रसंगानुकूल टिप्पणियां), कि लासाल ने जर्मनी के सोलहवीं शताब्दी के किसान युद्ध को प्रतिक्रियावादी ठहराया था, आदि।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन टिप्पणियों तथा उद्धरणों में कोई अनोखापन है, मगर पाठकों के लिए बहरहाल इस बात की यदा-कदा याद कराना दिलचस्प है कि मार्क्स, एंगेल्स तथा लासाल अलग-अलग देशों में ठोस ऐतिहासिक समस्याओं का विश्लेषण किस ढंग से करते थे। और मार्क्स तथा एंगेल्स के इन शिक्षाप्रद उद्धरणों को पढ़ने से यह अत्यंत ज्वलंत रूप से प्रत्यक्ष हो जाता है कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने अपने आपको कितनी हास्यास्पद स्थिति में डाल लिया है। बड़े अर्थपूर्ण तथा क्रोधपूर्ण शब्दों में वह विभिन्न देशों में विभिन्न अवधियों में जातीय प्रश्न के ठोस ऐतिहासिक विश्लेषण की आवश्यकता का उपदेश देती हैं, परंतु वह यह निर्धारित करने की **रत्ती भर भी** कोशिश नहीं करतीं कि बीसवीं शताब्दी के आरंभ में **रूस** पूंजीवाद के विकास की **किस** ऐतिहासिक मंज़िल से गुज़र रहा है या इस देश में जातीय प्रश्न के विशिष्ट लक्षण क्या हैं। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग इसके उदाहरण देती हैं कि किस प्रकार **दूसरे लोगों ने** इस प्रश्न पर मार्क्सवादी ढंग से विचार किया है, मानो वह जान-बूझकर इस पर ज़ोर दे रही हों कि किस प्रकार बहुधा आदमी के नेक इरादे उसके लिए नरक का रास्ता साफ़ करते हैं, किस प्रकार बहुधा सदुपदेश केवल उस उपदेश पर स्वयं चलने की इच्छा न रखने या उस पर चलने की क्षमता न रखने को छिपाने की आड़ ही होते हैं।

उनकी एक अत्यंत ज्ञानवर्धक तुलना यह है। पोलैंड की स्वतंत्रता के नारे का विरोध करते हुए रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग १८९८ में लिखे अपने एक पैंफ़लेट का हवाला देती हैं, जिसमें उन्होंने सिद्ध किया था कि रूस की मंडियों में पोलैंड के निर्मित मालों के भेजे जाने के साथ "पोलैंड का औद्योगिक विकास" बड़ी तीव्र गति से हो रहा था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे आत्मनिर्णय के **अधिकार** के प्रश्न के बारे में कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, इससे केवल पुराने, भूस्वामीवर्गीय पोलैंड का लोप सिद्ध होता है, इत्यादि। परंतु रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग हमेशा चुपके से इसी निष्कर्ष पर आ जाती हैं कि रूस और पोलैंड को संयुक्त करनेवाले कारकों में अब भी आधुनिक पूंजीवादी संबंधों के शुद्धतः आर्थिक कारकों का प्राधान्य है।

इसके बाद हमारी रोज़ा स्वायत्तता के प्रश्न पर आती हैं, और यद्यपि उनके लेख का शीर्षक **सामान्य रूप में** 'जातीय प्रश्न और स्वायत्तता' है, तथापि वह यह प्रमाणित करने लगती हैं कि पोलैंड रियासत को स्वायत्तता का **विशिष्ट** अधिकार है (देखें 'प्रोस्वेश्चेनिये', १९१३, अंक १२*)। पोलैंड के स्वायत्तता के अधिकार का समर्थन करने के लिए प्रत्यक्षतः रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग रूस की राज्य-प्रणाली को स्पष्टतः उसकी आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक लाक्षणिकताओं और उसके दैनिक जीवन की दृष्टि से जांचती हैं – ऐसे लक्षणों की समग्रता, जिन्हें कुल मिलाकर देखने पर "एशियाई निरंकुशता" की धारणा उत्पन्न होती है (*Przeglad,* अंक १२, पृ० १३७)।

यह आम तौर पर सभी जानते हैं कि इस प्रकार की राज्य-प्रणाली में उस दशा में बहुत अधिक स्थायित्व होता है, जब देश विशेष की अर्थव्यवस्था में पूर्णतः पितृसत्तात्मक और **प्राक्**-पूंजीवादी प्रवृत्तियों का प्राबल्य होता है और पण्य-उत्पादन तथा वर्ग विभेदीकरण का विकास प्रायः नहीं के बराबर होता है। परंतु यदि किसी ऐसे देश में, जहां की राज्य-प्रणाली स्पष्टतः **प्राक्**-पूंजीवादी स्वरूप की है, कोई ऐसा जातीय दृष्टि से अलग प्रदेश हो, जहां पूंजीवाद का विकास **तीव्र गति से** हो रहा हो, तो वह पूंजीवाद जितना ही अधिक तीव्र विकास करेगा,

---

* देखें प्रस्तुत पुस्तक में लेनिन का 'जातीय प्रश्न पर आलोचनात्मक टीकाएं' शीर्षक लेख, पृ० ४६–५३। – सं०

वहां पूंजीवाद तथा **प्राक्**-पूंजीवादी राज्य-प्रणाली का अंतर्विरोध भी उतना ही अधिक होगा, और उतना ही अधिक प्रगतिशील प्रदेश का पूरे देश से, जिसके साथ वह "आधुनिक पूंजीवादी" बंधनों से नहीं, बल्कि "एशियाई निरंकुशतावादी" बंधनों से बंधा हुआ है, अलगाव अधिक संभव होगा।

इस प्रकार बुर्जुआ पोलैंड के प्रसंग में रूस की सरकार की सामाजिक संरचना के सवाल के बारे में भी रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग अपनी दलीलों को एक साथ संबद्ध नहीं कर पातीं, और जहां तक रूस में राष्ट्रीय आंदोलनों के ठोस ऐतिहासिक विशिष्ट लक्षणों की बात है, उसे तो वह उठाती भी नहीं।

इसी प्रश्न हमें अब लेना चाहिए।

३. रूस में जातीय प्रश्न के ठोस लक्षण और रूस का बुर्जुआ-जनतांत्रिक पुनर्गठन

> "...'जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार' के सिद्धांत की, जो एक पिष्टोक्ति मात्र है और केवल रूस में बसनेवाली जातियों पर ही नहीं, बल्कि जर्मनी तथा आस्ट्रिया, स्विट्ज़रलैंड तथा स्वीडन, अमरीका तथा आस्ट्रेलिया में बसनेवाली जातियों पर भी स्पष्टतः समान रूप से प्रयोज्य है, नमनीयता के बावजूद हमें आजकल की समाजवादी पार्टियों में से किसी के भी कार्यक्रम में इसका उल्लेख नहीं मिलता..." (*Przeglad,* अंक ६, पृ० ४८३)।

इस तरह से रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग मार्क्सवादी कार्यक्रम के अनुच्छेद ९ के विरुद्ध अपने जिहाद का आरंभ करती हैं। हम पर इस संकल्पना को थोपने की कोशिश में कि कार्यक्रम का यह अनुच्छेद एक "पिष्टोक्ति मात्र" है, रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग बड़ी दिलचस्प ढिठाई के साथ यह दावा करते हुए स्वयं इस ग़लती का शिकार हो गयी हैं कि यह अनुच्छेद रूस, जर्मनी, आदि पर "स्पष्टतः समान रूप से प्रयोज्य" है।

स्पष्टतः – हम उत्तर देते हैं – रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने अपने लेख को छात्रों के अभ्यास के लिए तार्किक ग़लतियों का संग्रह बना देने का फ़ैसला

किया है। कारण कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का यह आक्षेप सरासर बकवास और इस प्रश्न के ऐतिहासिक दृष्टि से ठोस प्रतिपादन का मज़ाक़ है।

यदि मार्क्सवादी कार्यक्रम का अर्थ बचकाने ढंग से नहीं, बल्कि मार्क्सवादी ढंग से लगाया जाये, तो यह समझना कठिन नहीं है कि उसका संबंध बुर्जुआ-जनतांत्रिक राष्ट्रीय आंदोलन से है। यदि ऐसी बात है – और निःसंदेह बात ऐसी ही है – तो यह "स्पष्ट" है कि यह कार्यक्रम "निरपेक्षतः", और "पिष्टोक्ति मात्र", आदि के रूप में बुर्जुआ-जनतांत्रिक राष्ट्रीय आंदोलनों की **सभी** मिसालों पर लागू होता है। और यदि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने इस बात पर तनिक भी ध्यान दिया होता, तो यह निष्कर्ष उनके लिए भी कुछ कम स्पष्ट न होता कि हमारे कार्यक्रम में **केवल** ऐसे मामले लिये गये हैं, जहां इस प्रकार के आंदोलन का सचमुच अस्तित्व है।

यदि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने इन स्पष्ट बातों पर विचार किया होता, तो उनकी समझ में बड़ी आसानी से आ गया होता कि वह कैसी अनर्गल बातें कह रही हैं। **हमारे ऊपर** एक "पिष्टोक्ति" उच्चारने का आरोप लगाते हुए वह **हमारे ख़िलाफ़** इस दलील को इस्तेमाल करती हैं कि उन देशों के कार्यक्रमों में जातियों के आत्मनिर्णय का कोई उल्लेख नहीं किया गया है, जहां कोई बुर्जुआ-जनतांत्रिक राष्ट्रीय आंदोलन **नहीं हैं**। कमाल की दलील है!

विभिन्न देशों के राजनीतिक तथा आर्थिक विकास की और साथ ही उनके मार्क्सवादी कार्यक्रमों की तुलना मार्क्सवाद के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व रखती है, क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि सभी आधुनिक राज्य सामान्य पूंजीवादी स्वरूप के हैं और वे विकास के एक सामान्य नियम के अधीन हैं। परंतु इस प्रकार की तुलना समझदारी के साथ की जानी चाहिए। इसके लिए बुनियादी शर्त यह है कि इस प्रश्न का स्पष्टीकरण किया जाये कि जिन देशों की तुलना की जा रही है, उनके विकास की ऐतिहासिक अवधियों की **तुलना की भी जा सकती है या नहीं**। उदाहरण के लिए, निरे नादान लोग ही (जैसे 'रूस्स्काया मीस्ल'[39] में प्रिंस ये० त्रुबेत्सकोई) रूसी मार्क्सवादियों के कृषिक कार्यक्रम की पश्चिमी यूरोप के कृषिक कार्यक्रमों के साथ "तुलना" कर सकते हैं, क्योंकि हमारे कार्यक्रम में **बुर्जुआ-जनतांत्रिक** कृषिक

सुधार से संबंधित प्रश्न का उत्तर दिया गया है, जबकि पश्चिमी में इस प्रकार का प्रश्न है ही नहीं।

यही बात जातियों के प्रश्न पर भी लागू होती है। अधिकांश पश्चिमी देशों में यह सवाल बहुत पहले तय हो चुका है। पश्चिमी यूरोप के कार्यक्रमों में ऐसे प्रश्नों का, जिनका अस्तित्व ही नहीं है, उत्तर ढूंढ़ना हास्यास्पद है। यहां रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का ध्यान सबसे महत्वपूर्ण बात की ओर से, अर्थात उन देशों के बीच अंतर की ओर से हट गया है, जहां बुर्जुआ-जनतांत्रिक सुधार बहुत पहले पूरे हो चुके हैं और जहां यह काम अभी तक पूरा नहीं हुआ है।

यह अंतर ही इस समस्या का निचोड़ है। इस अंतर की पूरी तरह उपेक्षा करने के कारण रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का शब्दबहुल लेख खोखली तथा निरर्थक पिष्टोक्तियों का संग्रह बनकर रह गया है।

पश्चिमी, महाद्वीपीय यूरोप में बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांतियों का युग एक काफ़ी निश्चित अवधि है, लगभग १७८९ से १८७१ तक की अवधि। ठीक यही युग राष्ट्रीय आंदोलनों का और जातीय राज्यों की स्थापना का युग था। जब यह काल समाप्त हुआ, तब पश्चिमी यूरोप ऐसे बुर्जुआ राज्यों की एक सुस्थापित व्यवस्था में परिवर्तित हो चुका था, जो सामान्यतः जातीय दृष्टि से एकरूप राज्य थे। इसलिए आजकल पश्चिमी यूरोपीय समाजवादियों के कार्यक्रमों में आत्मनिर्णय के अधिकार की बात ढूंढ़ना मार्क्सवाद के क-ख-ग के बारे में अपने अज्ञान का परिचय देना है।

पूर्वी यूरोप में तथा एशिया में बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांतियों का युग १९०५ में जाकर आरंभ हुआ। रूस, फ़ारस, तुर्की तथा चीन की क्रांतियां, बाल्कन क्षेत्र के युद्ध – यह है **हमारे** युग की हमारे "प्राच्य देशों" में विश्व महत्व रखनेवाली घटनाओं की शृंखला। और वह अंधा ही होगा, जो घटनाओं की इस शृंखला में राष्ट्रीय रूप से स्वतंत्र तथा जातीय दृष्टि से समरूप राज्यों के निर्माण के लिए प्रयत्नशील बुर्जुआ-जनतांत्रिक राष्ट्रीय आंदोलनों की एक **पूरी शृंखला** का उदय न देखे। चूंकि रूस और उसके पड़ोसी देश इस युग से होकर गुज़र रहे हैं, ठीक इसलिए और केवल इसलिए हमें अपने कार्यक्रम में जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के बारे में एक अनुच्छेद रखने की ज़रूरत है।

परंतु आइये, रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के लेख के उस उद्धरण को ज़रा और आगे देखें। वह लिखती हैं :

"... विशेष रूप से ऐसी पार्टी के कार्यक्रम में, जो अत्यधिक विविध जातीय संरचनावाले राज्य में काम कर रही है और जिसके लिए जातियों का प्रश्न अव्वल दरजे के महत्व का प्रश्न है – अर्थात आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्य-क्रम में – जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का सिद्धांत नदारद है" (वही)।

इस प्रकार आस्ट्रिया का "विशेष रूप से" उदाहरण देकर पाठकों को क़ायल करने का प्रयत्न किया गया है। आइये, ठोस ऐतिहासिक तथ्यों की रोशनी में इस उदाहरण को जांचें और देखें कि वह कितना युक्तिसंगत है।

पहली बात यह है कि हम बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति के पूरा होने का बुनियादी सवाल उठाते हैं। आस्ट्रिया में यह क्रांति १८४८ में आरंभ हुई और १८६७ में पूरी हुई। तब से लगभग पचास वर्ष से वहां पूर्णतः स्थापित बुर्जुआ संविधान का प्रभुत्व रहा है, जिसके आधार पर मज़दूरों की एक क़ानूनी पार्टी क़ानूनी ढंग से काम कर रही है।

इसलिए आस्ट्रिया के विकास की अंतर्निहित परिस्थितियों में (अर्थात आस्ट्रिया में आम तौर पर और उसकी अलग-अलग जातियों में ख़ास तौर पर पूंजीवाद के विकास के दृष्टिकोण से) कोई ऐसे कारक **नहीं हैं**, जिनकी वजह से ऐसी छलांगें लगाना संभव हो, जिनका एक परिणाम राष्ट्रीय रूप से स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हो सके। अपनी तुलना द्वारा यह मानकर कि इस मामले में रूस की स्थिति भी वैसी ही है, रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग केवल यही नहीं करतीं कि वह एक मूलतः ग़लत, इतिहासविरोधी बात को मानी हुई बात समझ बैठती हैं, बल्कि वह अनिच्छापूर्वक ही विसर्जनवाद में जा फंसती हैं।

दूसरे, जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं, उसकी दृष्टि से आस्ट्रिया की जातियों तथा रूस की जातियों के सर्वथा भिन्न पारस्परिक संबंध बहुत महत्व रखते हैं। केवल यही नहीं कि आस्ट्रिया बहुत समय तक एक ऐसा राज्य रहा, जिसमें जर्मन लोगों की प्रधानता रही, बल्कि आस्ट्रियाई जर्मन समूचे तौर पर जर्मन जाति में भी प्रमुखता का दावा

करते थे। शायद रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग (जिन्हें देखने में सामान्योक्तियों, पिष्टोक्तियों और अमूर्त बातों से बहुत चिढ़ है ...) यह याद करने की कृपा करेंगी कि १८६६ के युद्ध ने इस "दावे" की धज्जियां उड़ा दीं। आस्ट्रिया में जिस जर्मन जाति की प्रधानता थी, उसने अपने को उस स्वतंत्र जर्मन राज्य की **सीमा के बाहर** पाया, जिसका निर्माण अंततः १८७१ में संपन्न हुआ। दूसरी ओर, एक स्वतंत्र जातीय राज्य बनाने की हंगरियाइयों की कोशिश बहुत पहले, १८४६ में रूसी भूदास सेना के प्रहारों के आगे ध्वस्त हो चुकी थी।

इस प्रकार एक विचित्र परिस्थिति पैदा हो गयी : हंगरियाइयों की तरफ़ से और फिर चेकों की तरफ़ से भी आस्ट्रिया से अलग होने की नहीं, बल्कि इसके विपरीत ठीक जातीय स्वतंत्रता को बनाये रखने के उद्देश्य से, जो अधिक ख़ूंख़ार तथा शक्तिशाली पड़ोसियों द्वारा पूरी तरह कुच-ली जा सकती थी, उसकी अखंडता को बनाये रखने की कोशिश की गयी! इस विचित्र परिस्थिति के कारण आस्ट्रिया ने एक दोहरे राज्य का रूप धारण कर लिया और इस समय वह एक तिहरे राज्य (जर्मन, हंगरियाई तथा स्लाव) में रूपांतरित हो रहा है।

क्या रूस में इस प्रकार की कोई बात है? क्या हमारे देश में **बदतर** जातीय उत्पीड़न के ख़तरे से बचने के लिए ग़ैर-रूसियों की तरफ़ से महत रूसियों के साथ एकता स्थापित करने की कोई कोशिश हुई है?

यह प्रश्न पूछने मात्र से समझ में आ जायेगा कि जातियों के आत्म-निर्णय के मामले में रूस तथा आस्ट्रिया की तुलना निरर्थक, पिष्टो-क्तिवत और अज्ञानतापूर्ण बात है।

जातियों के प्रश्न के बारे में रूस की विशिष्ट परिस्थितियां उन परिस्थितियों की बिलकुल उलटी हैं, जो हम आस्ट्रिया में पाते हैं। रूस एक ऐसा राज्य है, जिसका केंद्र एकजातीय है – महत रूस। महत रूसी लोग एक विशाल, अखंडित भूभाग के विस्तार पर बसे हुए हैं और उनकी संख्या ७,००,००,००० के लगभग है। इस जातीय राज्य के विशिष्ट लक्षण ये हैं कि सबसे पहले तो "अधीनस्थ जातियां" (जिन-की कुल मिलाकर पूरी आबादी में बहुसंख्या है – ५७ प्रतिशत) सीमांत प्रदेशों में निवास करती हैं, दूसरे, इन अधीनस्थ जातियों का उत्पीड़न पड़ोसी राज्यों की तुलना में (और केवल यूरोपीय राज्यों की तुलना में ही नहीं) कहीं अधिक है; तीसरे, कई मामलों में सीमांत प्रदेशों

में बसनेवाली उत्पीड़ित जातियों के ही हमक़ौम सीमा के उस पार रहते हैं, जिन्हें अधिक जातीय स्वतंत्रता प्राप्त है (राज्य की पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमाओं पर बसनेवाले फ़िनों, स्वीडों, पोलों, उक्रइनियों तथा रूमानियाइयों का उल्लेख ही काफ़ी है); चौथे, केंद्र की अपेक्षा ग़ैर-रूसी सीमांत प्रदेशों में पूंजीवाद का विकास तथा संस्कृति का आम स्तर बहुधा अधिक उन्नत है। अंतिम बात, ठीक पड़ोस के एशियाई राज्यों में ही हम बुर्जुआ क्रांतियों और राष्ट्रीय आंदोलनों के चरण के समारंभ को देख रहे हैं, जो रूस की सीमाओं के भीतर भी कई बिरादराना जातियों में फैल रहे हैं।

इस प्रकार रूस में जातीय प्रश्न के विशेष ठोस ऐतिहासिक लक्षण ही जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता को इस समय हमारे देश के लिए विशेष महत्व का सवाल बना देते हैं।

प्रसंगवश शुद्धतः तथ्यों की दृष्टि से भी रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का यह कहना ग़लत है कि आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों के कार्यक्रम में जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को कोई मान्यता नहीं दी गयी है। यदि हम ब्रून कांग्रेस के कार्य-विवरण पर नज़र भर डालें, जिसमें जातीय समस्या संबंधी कार्यक्रम स्वीकार किया गया था, तो हम उसमें पूरे उक्रइनी (रूथेनी*) प्रतिनिधिमंडल की ओर से रूथेनी सामाजिक-जनवादी गांकेविच (कार्य-विवरण का पृ० ८५) और पूरे पोलिश प्रतिनिधिमंडल की ओर से पोलिश सामाजिक-जनवादी रेगेर (पृ० १०८) के इस आशय के वक्तव्य देखेंगे कि उपरोक्त दोनों जातियों के आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादियों की एक आकांक्षा अपनी जातियों की जातीय एकता और स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता हासिल करना है। अतः यद्यपि आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादियों ने जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को अपने कार्यक्रम में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं किया है, फिर भी उन्होंने पार्टी के कुछ **हिस्सों** को जातियों की स्वतंत्रता की मांग उठाने की इजाज़त दी है। प्रकटतः व्यवहार में इसका मतलब जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार करना ही है! इस प्रकार रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग द्वारा आस्ट्रिया का हवाला दिया जाना **हर** एतबार से स्वयं रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग **के ख़िलाफ़** पड़ता है।

* रूथेन – कार्पेथियाई पर्वतों में रूथेनिया (गैलीशिया) में रहनेवाली एक जाति। – सं०

४. जातीय प्रश्न में "व्यवहारिकता"

अवसरवादियों ने रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के इस तर्क को विशेष रूप से पकड़ लिया है कि हमारे कार्यक्रम के अनुच्छेद ६ में कोई "व्यावहारिक" बात नहीं है। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग अपनी इस दलील से इतनी खुश हैं कि उनके लेख के कुछ हिस्सों में तो इस "नारे" को एक ही पृष्ठ पर आठ-आठ बार दोहराया गया है।

वह लिखती हैं: अनुच्छेद ६ "सर्वहारा वर्ग की दैनंदिन नीति के लिए कोई व्यावहारिक निर्देश नहीं देता, वह जातियों की समस्याओं का कोई व्यावहारिक हल नहीं बताता"।

आइये, हम इस दलील को जांचें, जिसे अन्यत्र इस ढंग से भी प्रतिपादित किया गया है कि अनुच्छेद ६ या तो बिलकुल निरर्थक है या फिर जातियों की हर आकांक्षा का समर्थन करने को बाध्य करता है।

जातियों के प्रश्न में "व्यावहारिकता" की मांग का क्या अर्थ है?

या तो सभी जातीय आकांक्षाओं का समर्थन; या हर जाति के अलग हो जाने के प्रश्न का उत्तर "हां" या "नहीं" में देना; या फिर यह कहना कि जातियों की मांगें सीधे "व्यवहार्यक" हैं।

आइये, हम "व्यावहारिकता" की मांग के इन तीनों संभव अर्थों को जांचें।

बुर्जुआ वर्ग, जो स्वाभाविक रूप से हर राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ में नेतृत्व ग्रहण करता है, सभी जातीय आकांक्षाओं के समर्थन को व्यावहारिक ठहराता है। परंतु जातियों के प्रश्न में (अन्य प्रश्नों की तरह ही) सर्वहारा की नीति बुर्जुआज़ी का समर्थन केवल एक निश्चित दिशा में ही करती है, परंतु वह बुर्जुआज़ी की नीति के साथ पूरी तरह मेल कभी नहीं खाती। मज़दूर वर्ग बुर्जुआज़ी का समर्थन केवल जातीय शांति सुनिश्चित करने के लिए (जिसे बुर्जुआ वर्ग पूरी तरह कभी नहीं स्थापित कर सकता और जिसकी सिद्धि केवल **पूर्ण** जनतंत्रीकरण के साथ ही हो सकती है), समान अधिकार प्राप्त करने और वर्ग संघर्ष के लिए श्रेष्ठतम परिस्थितियां उत्पन्न करने के लिए करता है। इसलिए बुर्जुआज़ी की **व्यावहारिकता के ख़िलाफ़** ही तो सर्वहारागण जातियों के प्रश्न में अपनी **उसूली** नीति प्रस्तुत करते हैं, बुर्जुआज़ी का समर्थन वे सदा **कुछ शर्तों पर ही** करते हैं। जातीय मामलों में बुर्जुआ

वर्ग हमेशा या तो स्वयं **अपनी** जाति के लिए विशेषाधिकार या उसके लिए विशिष्ट सुविधाएं चाहता है; और इसी को "व्यावहारिक" होना कहा जाता है। सर्वहारा हर तरह के विशेषाधिकारों के, हर तरह की विशिष्टता के ख़िलाफ़ है। यह मांग करना कि उसे "व्यावहारिक" होना चाहिए, बुर्जुआज़ी का दुमछल्ला बनना है, अवसरवाद में फंस जाना है।

हर जाति के अलग हो जाने के प्रश्न का उत्तर "हां" या "नहीं" में देने की मांग बहुत "व्यावहारिक" प्रतीत हो सकती है। वास्तव में यह बिलकुल बेतुकी मांग है, सिद्धांत की दृष्टि से यह अधिभूतवादी है और व्यवहार में यह सर्वहारा को बुर्जुआज़ी की नीति के अधीनस्थ करती है। बुर्जुआ वर्ग अपनी जातीय मांगों को सर्वदा सर्वोपरि स्थान देता है और ऐसा बिना किसी शर्त के करता है। परंतु सर्वहारा के लिए ये मांगें वर्ग संघर्ष के हितों के अधीन होती हैं। सिद्धांततः, पहले से दावे के साथ यह कहना असंभव होता है कि किसी जाति के अलग हो जाने से या दूसरी जाति की तरह उसके बराबर अधिकार प्राप्त कर लेने से बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति पूरी हो जायेगी; **दोनों ही सूरतों में** सर्वहारा के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अपने वर्ग के विकास को सुनिश्चित बनाये। बुर्जुआज़ी के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि वह "अपनी" जाति के उद्देश्यों को सर्वहारा के उद्देश्यों से आगे ठेलकर इस विकास में बाधा डाले। यही कारण है कि किसी जाति को कोई आश्वासन दिये बिना, किसी अन्य जाति के **हितों की क़ीमत पर** कुछ देने की हामी भरे बिना सर्वहारा, कहना चाहिए, अपने आपको आत्म-निर्णय के **अधिकार** को स्वीकार करने की नकारात्मक मांग तक ही सीमित रखता है।

संभव है कि यह बात "व्यावहारिक" न हो, पर वास्तव में यह सभी संभव हलों में से सबसे अधिक जनतांत्रिक हल प्राप्त करने की सबसे अच्छी गारंटी है। सर्वहारा को **केवल** इन गारंटियों की ज़रूरत होती है, जबकि हर जाति का बुर्जुआ वर्ग केवल **अपने** स्वार्थों के लिए गारंटियां चाहता है, उसे इससे कोई मतलब नहीं होता कि अन्य जातियों की स्थिति क्या है (या उन्हें संभवतः क्या असुविधाएं हो सकती हैं)।

बुर्जुआज़ी को सबसे अधिक दिलचस्पी इसमें होती है कि प्रसंगाधीन मांग "व्यवहार्य" है या नहीं – यही कारण है कि उसकी नीति सदैव

सर्वहारा के हितों की बलि देकर दूसरी जातियों के बुर्जुआ वर्ग के साथ समझौता कर लेने की होती है। परंतु सर्वहारा के लिए बुर्जुआज़ी के विरुद्ध अपने वर्ग को शक्तिशाली बनाना और जनसाधारण को सुसंगत जनतंत्र तथा समाजवाद की भावना में शिक्षा देना एक महत्वपूर्ण बात है।

संभव है कि यह बात अवसरवादियों के लिए "व्यावहारिक" न हो, परंतु यही एकमात्र सच्ची गारंटी है, सामंतवादी ज़मींदारों तथा **राष्ट्रवादी** बुर्जुआज़ी के बावजूद अधिकतम जातीय समानता तथा शांति की गारंटी।

जातीय प्रश्न के संबंध में सर्वहारागण का सारा काम हर जाति के **राष्ट्रवादी** बुर्जुआज़ी के दृष्टिकोण से "अव्यावहारिक" होता है, क्योंकि हर प्रकार के राष्ट्रवाद का विरोधी होने के नाते सर्वहारागण "अमूर्त" समानता की मांग करते हैं, वे यह मांग करते हैं कि सिद्धांततः कोई भी विशेषाधिकार नहीं होने चाहिए, वे चाहे कितने ही नगण्य क्यों न हों। इस बात को न समझ सकने के कारण रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने व्यावहारिकता की अपनी विवेकहीन प्रशस्ति द्वारा अवसरवादियों के लिए, और विशेष रूप से महत रूसी राष्ट्रवाद को अवसरवादी रिआयतें देने के लिए पूरा रास्ता खोल दिया है।

महत रूसी क्यों? क्योंकि रूस में महत रूसी एक उत्पीड़क जाति हैं और स्वाभाविकतया जातियों के प्रश्न में अवसरवाद उत्पीड़क जातियों में उत्पीड़ित जातियों की अपेक्षा भिन्न रूप में व्यक्त होता है।

उत्पीड़ित जातियों का बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा का आह्वान करेगा कि वह उसकी आकांक्षाओं का बेशर्त समर्थन करे, क्योंकि उसकी मांगें "व्यावहारिक" हैं। सबसे अधिक व्यावहारिक तरीक़ा यह है कि सभी जातियों को अलग हो जाने का **अधिकार** होने के पक्ष में "हां" कहने की बनिस्बत एक जाति **विशेष** के अलग हो जाने के पक्ष में साफ़ "हां" कह दिया जाये!

सर्वहारा इस प्रकार की व्यावहारिकता के ख़िलाफ़ है: जातियों की बराबरी तथा जातीय राज्य को स्थापित करने के उनके समान अधिकारों को स्वीकार करते हुए भी वह सभी जातियों के सर्वहारागण की एकता को सबसे मूल्यवान समझता है, उसे सबसे ऊंचा स्थान देता है और हर जातीय मांग का, हर जातीय वियोजन का मूल्यांकन मज़दूरों के वर्ग संघर्ष **के दृष्टिकोण से** करता है। वास्तव में व्यावहारिकता

का यह नारा बुर्जुआ आकांक्षाओं को बिना सोचे-समझे मान लेने के नारे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

हमसे कहा जाता है: अलगाव के अधिकार का समर्थन करके आप उत्पीड़ित जातियों के बुर्जुआ राष्ट्रवाद का समर्थन करते हैं। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग यही बात कहती हैं और इसी को अवसरवादी सेम्कोव्स्की प्रतिध्वनित करते हैं, जिनके बारे में लगे हाथों यह बता दिया जाये कि विसर्जनवादी अख़बार में इस प्रश्न पर विसर्जनवादी विचारों के वह, कहना चाहिए, एकमात्र प्रतिनिधि हैं!

हम इसका उत्तर यह देते हैं: नहीं, इस प्रश्न का "व्यावहारिक" हल बुर्जुआज़ी के लिए ही महत्व रखता है। मज़दूरों के लिए महत्वपूर्ण बात दोनों प्रवृत्तियों के **सिद्धांतों** के बीच अंतर करना है। **जहां तक** उत्पीड़ित जाति का बुर्जुआ वर्ग उत्पीड़क जाति के बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ लड़ता है, **वहां तक** हम हमेशा, हर सूरत में, और किसी की भी अपेक्षा अधिक दृढ़ता के साथ **उसके पक्ष में** हैं, क्योंकि हम उत्पीड़न के सबसे कट्टर और सबसे पक्के दुश्मन हैं। परंतु जहां उत्पीड़ित जाति का बुर्जुआ वर्ग **अपने ही** बुर्जुआ राष्ट्रवाद के लिए लड़ता है, वहां हम उसके ख़िलाफ़ हैं। हम उत्पीड़क जाति के विशेषाधिकारों तथा उसकी हिंसा के ख़िलाफ़ लड़ते हैं और उत्पीड़ित जाति द्वारा विशेषाधिकार प्राप्त करने की कोशिशों को किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं समझते।

यदि हम अलगाव के **अधिकार** का नारा प्रस्तुत नहीं करेंगे और उस नारे के लिए आंदोलन नहीं करेंगे, तो हम **उत्पीड़क** जाति के केवल बुर्जुआज़ी के ही हाथों में नहीं, बल्कि उसके सामंती ज़मींदारों तथा उसकी निरंकुशता के भी हाथों में खेलेंगे। काउत्स्की ने बहुत पहले ही रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के ख़िलाफ़ यह तर्क प्रस्तुत किया था और यह तर्क अकाट्य है। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग जब पोलैंड के राष्ट्रवादी बुर्जुआज़ी की "सहायता" न करने की फ़िक्र में **रूसी** मार्क्सवादियों के कार्यक्रम में अलग हो जाने के **अधिकार** को अस्वीकार करती हैं, तो वह **वास्तव में** महत रूसी यमदूतमभाइयों की ही सहायता करती हैं। वह वास्तव में महत रूसियों के विशेषाधिकारों को (और विशेषाधिकारों से भी बदतर चीज़ का) बरदाश्त करने की अवसरवादी प्रवृत्ति की सहायता करती हैं।

पोलैंड में राष्ट्रवाद के विरुद्ध संघर्ष की धारा में बहकर रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग महत रूसियों के राष्ट्रवाद को भूल गयी हैं, हालांकि इस समय **यही** राष्ट्रवाद सबसे अधिक ख़तरनाक है, यह वह राष्ट्रवाद है, जो बुर्जुआ कम और सामंती ज़्यादा है, और यही जनतंत्र तथा सर्वहारा वर्ग के संघर्ष की राह में मुख्य बाधा है। उत्पीड़ित जाति के **हर** बुर्जुआ राष्ट्रवाद में एक आम जनवादी तत्व होता है, जो उत्पीड़न **के ख़िलाफ़ निर्देशित** होता है और हम इसी तत्व का **बिना शर्त** समर्थन करते हैं, पर साथ ही हम जातीय विशिष्टता की प्रवृत्ति से बड़ी सख़्ती के साथ उसका अंतर करते हैं; हम पोलैंड के बुर्जुआ वर्ग की यहूदियों का उत्पीड़न करने की प्रवृत्ति के ख़िलाफ़ लड़ते हैं, आदि, आदि।

यह बात बुर्जुआज़ी और कूपमंडूकों के दृष्टिकोण से "अव्यावहारिक" है, परंतु जातियों के प्रश्न के बारे में यही एक ऐसी नीति है, जो व्यावहारिक है, जो सिद्धांतों पर आधारित है और जो सचमुच जनतंत्र, आज़ादी और सर्वहारा एकता को बढ़ावा देती है।

सबके लिए अलग हो जाने के अधिकार को मानना; अलग हो जाने के हर ठोस प्रश्न का मूल्यांकन सारी असमानता, सारे विशेषाधिकारों, सारी विशिष्टता को दूर करने के दृष्टिकोण से करना।

आइये, हम एक उत्पीड़क जाति की स्थिति को लें। यदि कोई जाति अन्य जातियों का उत्पीड़न करती है, तो क्या वह स्वतंत्र हो सकती है? नहीं हो सकती। महत रूसी आबादी* की स्वतंत्रता के हितों का तक़ाज़ा है कि इस प्रकार के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ संघर्ष किया जाये। उत्पीड़ित जातियों के आंदोलन के दमन के लंबे, युगों पुराने इतिहास और "उच्च" वर्गों की ओर से इस दमन के पक्ष में बाक़ायदा प्रचार ने स्वयं महत रूसी जनगण की स्वतंत्रता के ध्येय की राह में पूर्वग्रहों, आदि के रूप में बहुत बड़ी-बड़ी बाधाएं खड़ी कर दी हैं।

महत रूसी यमदूतसभाई जान-बूझकर इन पूर्वग्रहों को बरक़रार रखते और उन्हें हवा देते हैं। महत रूसी बुर्जुआज़ी या तो उन्हें बरदाश्त करता है या उनकी अनदेखी करता है। महत रूसी सर्वहारा

* यह शब्द पेरिस में ल० व्ला० नामक सज्जन को अमार्क्सवादी लगता है। यह ल० व्ला० साहब बड़े दिलचस्प ढंग से "superklug" ("अति-चतुर") हैं। लगता है कि यह "अति-चतुर" ल० व्ला० साहब इस विषय पर एक निबंध लिखने का इरादा रखते है कि हमारे न्यूनतम कार्यक्रम में से (वर्ग संघर्ष को ध्यान में रखते हुए!) "आबादी", "जाति", आदि शब्द निकाल दिये जायें।

जब तक बाक़ायदा इन पूर्वग्रहों के ख़िलाफ़ नहीं लड़ेगा, तब तक वह **स्वयं अपने** उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकता, अपनी स्वतंत्रता के लिए रास्ता साफ़ नहीं कर सकता।

रूस में स्वतंत्र जातीय राज्य का निर्माण अभी तक अकेली महत रूसी जाति का ही विशेषाधिकार बना हुआ है। हम, महत रूसी सर्वहारागण किसी भी विशेषाधिकार का समर्थन नहीं करते और हम इस विशेषाधिकार के भी पक्ष में नहीं हैं। हम एक निश्चित राज्य की आधारभूमि पर लड़ रहे हैं; हम इस राज्य में रहनेवाली सभी जातियों के मज़दूरों को ऐक्यबद्ध करते हैं, हम जातीय विकास के किसी मार्ग के बारे में निश्चित रूप से नहीं कह सकते, हम अपने वर्ग लक्ष्य की ओर **सभी** संभव मार्गों से आगे बढ़ रहे हैं।

परंतु जब तक हम हर प्रकार के राष्ट्रवाद के विरुद्ध न लड़ें, जब तक हम सभी जातियों की बराबरी की हिमायत न करें, तब तक हम उस लक्ष्य की ओर आगे नहीं बढ़ सकते। उदाहरण के लिए, यह सवाल कि उक्रइना आगे चलकर एक स्वतंत्र राज्य बनेगा कि नहीं, ऐसी हज़ारों बातों पर निर्भर करता है, जिनके बारे में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। फ़ुज़ूल की **अटकलबाज़ी** की कोशिश किये बग़ैर हम दृढ़तापूर्वक केवल उसी बात को सही मानते हैं, जिसमें कोई संदेह नहीं हो सकता: उक्रइना का इस प्रकार का राज्य बनाने का अधिकार। हम इस अधिकार का सम्मान करते हैं, हम उक्रइनियों के संबंध में महत रूसियों के किन्हीं विशेषाधिकारों के समर्थक नहीं हैं, हम जनसाधारण को इस अधिकार को मानने की भावना में, किसी भी जाति के **राज्य संबंधी** विशेषाधिकारों को अस्वीकार करने की भावना में **शिक्षित करते हैं।**

सभी देश बुर्जुआ क्रांतियों के काल में जो छलांगें भरते हैं, उनमें जातीय राज्य के अधिकार को लेकर टक्करें तथा संघर्ष संभव हैं, अत्यधिक संभव हैं। हम, सर्वहारागण, पहले से ही घोषित करते हैं, कि हम महत रूसियों के विशेषाधिकारों **के ख़िलाफ़ हैं,** और यही बात हमारे आंदोलन तथा प्रचार के पूरे काम का पथप्रदर्शन करती है।

"व्यावहारिकता" की साधना में रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग महत रूसी सर्वहारा और अन्य जातियों के सर्वहारा दोनों ही के **मुख्य** व्यावहारिक काम को नहीं देख पायीं: सभी राज्यीय तथा जातीय विशेषाधिकारों

के विरुद्ध, और सभी जातियों के अपना जातीय राज्य बनाने के अधिकार, समान अधिकार के पक्ष में दैनंदिन आंदोलन तथा प्रचार का काम। जातीय प्रश्न के सिलसिले में यह काम (इस समय) हमारा मुख्य काम है, क्योंकि केवल इसी तरीक़े से हम जनतंत्र के तथा बराबरी के आधार पर सभी जातियों के समस्त सर्वहारागण की एकता के हितों की रक्षा कर सकते हैं।

संभव है कि यह प्रचार महत रूसी उत्पीड़कों के दृष्टिकोण से और उत्पीड़ित जातियों के बुर्जुआ वर्ग के दृष्टिकोण से भी "अव्यावहारिक" हो (दोनों ही **साफ़** "हां" या "नहीं" में उत्तर चाहते हैं और सामाजिक-जनवादियों पर "अस्पष्ट" होने का आरोप लगाते हैं)। वास्तव में केवल यह प्रचार और यही प्रचार जनसाधारण की सचमुच जनतांत्रिक और सचमुच समाजवादी शिक्षा को सुनिश्चित बनाता है। यदि रूस एक बहुजातीय राज्य रहे, तो केवल ऐसा प्रचार ही उसमें विभिन्न जातियों के बीच शांति की और यदि उसके अलग-अलग जातीय राज्यों में बंट जाने का सवाल पैदा हो, तो इस विभाजन के सर्वाधिक शांतिपूर्ण (और सर्वहारा वर्ग संघर्ष के लिए निरापद) ढंग से संपन्न होने की सर्वाधिक संभावना सुनिश्चित करता है।

इस नीति को, जातीय प्रश्न में एकमात्र सर्वहारा नीति को और अधिक ठोस रूप से समझाने के लिए हम "जातियों के आत्मनिर्णय" के प्रति रूसी उदारवाद के रवैये पर और स्वीडन से नार्वे के अलग हो जाने के दृष्टांत पर विचार करेंगे।

५. जातीय प्रश्न के बारे में उदारतावादी बुर्जुआज़ी तथा समाजवादी अवसरवादियों के विचार

हम देख चुके हैं कि रूसी मार्क्सवादियों के कार्यक्रम के ख़िलाफ़ अपने संघर्ष में रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का एक "तुरुप का पत्ता" यह दलील है: आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार करना उत्पीड़ित जातियों के बुर्जुआ राष्ट्रवाद का समर्थन करने के बराबर है। दूसरी ओर – वह कहती हैं – यदि हम इस अधिकार का अर्थ अन्य जातियों के विरुद्ध सभी प्रकार की हिंसा के प्रतिकार के अतिरिक्त और कुछ न लगायें, तो

कार्यक्रम में इसके बारे में एक विशेष अनुच्छेद रखने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि सामाजिक-जनवादी आम तौर पर हर प्रकार के जातीय उत्पीड़न तथा असमानता के विरुद्ध हैं।

जैसाकि काउत्स्की ने अब से लगभग बीस वर्ष पहले अकाट्य रूप से सिद्ध कर दिया था, पहली दलील तो स्वयं अपने राष्ट्रवाद के लिए दूसरों को दोष देने की मिसाल है, क्योंकि उत्पीड़ित जातियों के बुर्जुआजी के राष्ट्रवाद से भयभीत होकर रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग **वास्तव में** महत रूसियों के यमदूतसभाई राष्ट्रवाद के हाथों में खेल रही हैं! उनकी दूसरी दलील वस्तुतः इस प्रश्न से भीरुतावश कतराना है कि जातीय समानता को स्वीकार करने में अलग हो जाने के अधिकार को स्वीकार करना भी शामिल है या नहीं? यदि है, तो रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग इस बात को स्वीकार करती हैं कि सिद्धांततः हमारे कार्यक्रम का अनुच्छेद ९ सही है। यदि नहीं है, तो वह जातीय समानता को नहीं मानतीं। इस मामले में बग़लें झांकने और कतराने से काम नहीं चलेगा!

परंतु उपरोक्त दलीलों का और ऐसी ही अन्य सभी दलीलों का परीक्षण करने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि इस प्रश्न के प्रति समाज के **विभिन्न वर्गों** के दृष्टिकोण का अध्ययन किया जाये। मार्क्सवादियों के लिए यह परीक्षण अनिवार्य है। हमें वस्तुगत तथ्यों को अपना आधार बनाना चाहिए, हमें इस प्रश्न के सिलसिले में वर्गों के पारस्परिक संबंधों को जांचना चाहिए। ऐसा न करने के कारण रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग स्वयं अधिभूतवादी, अमूर्त, घिसे-पिटे तथा निराधार कथन, आदि उन सब अपराधों की दोषी हैं, जिनका आरोप वह व्यर्थ ही अपने विरोधियों पर लगाती हैं।

हम **रूस के** मार्क्सवादियों के, अर्थात रूस में बसनेवाली सभी जातियों के मार्क्सवादियों के कार्यक्रम पर बहस कर रहे हैं। क्या यह ज़रूरी नहीं है कि हम रूस के **शासक** वर्गों की स्थिति को जांचें?

"नौकरशाही" (हम इस शब्द के लिए माफ़ी चाहते हैं, जो पूर्णतः सटीक नहीं है) और संयुक्त अभिजात वर्ग की क़िस्म के सामंती ज़मींदारों की स्थिति से लोग भली भांति परिचित हैं। वे जातियों की समानता तथा आत्मनिर्णय के अधिकार दोनों ही को साफ़-साफ़ अस्वीकार करते हैं। वे भूदास-प्रथा के ज़माने के इस पुराने नारे से चिपके हुए हैं: राजतंत्र, राजधर्म (रूसी प्राच्य चर्च) राजजाति – अंतवाला शब्द

केवल महत रूसी जाति पर लागू होता है। उक्रइनियों को भी "अन्य क़ौम" घोषित कर दिया गया है और उनकी भाषा तक का दमन किया जा रहा है।

रूसी बुर्जुआज़ी पर एक नज़र डालें, जिसे सत्ता में, "तीसरे जून"[40] की विधायी तथा प्रशासनिक व्यवस्था में भाग लेने के लिए – बहुत थोड़ा-सा भाग ही सही, फिर भी कुछ भाग तो था ही – "बुलाया गया" था। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए विस्तार के साथ कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस मामले में अक्तूबरवादी[41] वास्तव में दक्षिणपंथियों का अनुसरण कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश कुछ मार्क्सवादी महत रूसी उदार बुर्जुआज़ी, प्रगतिवादियों[42] तथा कैडेटों[43] की स्थिति की ओर अपेक्षतया बहुत ही कम ध्यान देते हैं। फिर भी जो कोई इस स्थिति का अध्ययन तथा उस पर विचार नहीं करता, वह जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के प्रश्न पर विचार करते समय अनिवार्य रूप से अमूर्त विचारों तथा निराधार वक्तव्यों में फंसकर रह जायेगा।

"अप्रिय" प्रश्नों के सीधे-सीधे उत्तर देने से कूटनीतिक ढंग से कतराने की कला में सिद्धहस्त होने के बावजूद कैडेट पार्टी के मुखपत्र 'रेच'[44] को पिछले वर्ष 'प्राव्दा'[45] के साथ अपने विवाद के दौरान कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण बातें मानने पर मजबूर होना पड़ा। सारा झगड़ा अखिल उक्रइनी विद्यार्थी कांग्रेस को लेकर आरंभ हुआ, जो १९१३ की गरमियों में ल्वोव में हुई थी।[46] "उक्रइनी विशेषज्ञ", अर्थात 'रेच' के उक्रइनी संवाददाता श्री मोगिल्यान्स्की ने एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने दोन्त्सोव नामक एक राष्ट्रवादी-समाजवादी द्वारा प्रस्तुत तथा उपरोक्त कांग्रेस द्वारा अनुमोदित इस विचार को कि उक्रइना को अलग हो जाना चाहिए, अपनी कटूक्तियों ("प्रलाप", "दुःसाहसिकता", आदि) का निशाना बनाया।

श्री दोन्त्सोव के साथ किसी भी प्रकार की सहमति जताये बिना और सीधे-सीधे यह बताते हुए कि वह एक राष्ट्रवादी-समाजवादी हैं तथा बहुत-से उक्रइनी मार्क्सवादी उनसे सहमत नहीं हैं, 'राबोचाया प्राव्दा' ने फिर भी कहा कि 'रेच' का **लहजा**, या कहना चाहिए, 'रेच' की **इस प्रश्न** की **सैद्धांतिक निरूपण-पद्धति** महत रूसी जनवादी के लिए या जनवादी कहलाने की इच्छा रखनेवाले किसी भी व्यक्ति के लिए अनुचित और निंदनीय है। 'रेच' चाहे, तो वह दोन्त्सोव जैसे

लोगों का खंडन करे, परंतु जनतंत्र का महत रूसी मुखपत्र होने का दावा करनेवाले 'रेच' के लिए अलग हो जाने की **स्वतंत्रता**, अलग हो जाने के **अधिकार** से आंखें मूंदना उसूली तौर पर नाजायज़ है।

इसके कुछ महीने बाद जब श्री मोगिल्यान्स्की को ल्वोव से प्रकाशित होनेवाले 'श्ल्याख़ी'[47] नामक उक्रइनी अख़बार से श्री दोन्त्सोव के प्रतिवाद का पता चला – जिसमें दोन्त्सोव ने प्रसंगवश कहा था कि "'रेच' में जो अंधराष्ट्रवादी प्रहार किया गया था, उसकी केवल रूसी सामाजिक-जनवादी अख़बारों में ही ढंग से लांछना (निंदा?) की गयी है" – तो उन्होंने 'रेच' के ३३१वें अंक में एक "सफ़ाई" लिखी। उनकी "सफ़ाई" में उनका वही तीन बार दोहराया वक्तव्य था कि "श्री दोन्त्सोव के नुसखों की आलोचना का" "जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की अस्वीकृति से कोई संबंध नहीं हैं"।

> श्री मोगिल्यान्स्की ने लिखा: "यह कहना चाहिए कि 'जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार' भी कोई जड़पूजा नहीं है" (वाह-वाह!!), "जिसकी आलोचना नहीं की जा सकती: जातियों के जीवन की अस्वास्थ्यकर परिस्थितियां जातीय आत्म-निर्णय में कुछ अस्वास्थ्यकर प्रवृत्तियों को जन्म दे सकती हैं और इन्हें सबके सामने खोलकर रख देने का अर्थ यह नहीं होता कि जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को अस्वीकार किया जा रहा है।"

जैसाकि आप देखते हैं, इस उदारतावादी की "जड़पूजा" की बात रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की बात से पूरी तरह मेल खाती है। यह स्पष्ट था कि श्री मोगिल्यान्स्की इस प्रश्न का सीधा-सीधा उत्तर देने से कतराना चाहते थे: क्या वह राजनीतिक आत्मनिर्णय के, अर्थात अलग हो जाने के अधिकार को मानते हैं या नहीं?

'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' (११ दिसंबर, १९१३, अंक ४) ने भी श्री मोगिल्यान्स्की से और कैडेट **पार्टी से सीधे-सीधे** यही प्रश्न पूछा था।

इस पर 'रेच' ने (अंक ३४०) इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अहस्ताक्षरित, अर्थात एक आधिकारिक संपादकीय वक्तव्य प्रकाशित किया। इस उत्तर का निचोड़ निम्नलिखित तीन मुद्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है:

१) कैडेट पार्टी के कार्यक्रम के अनुच्छेद ११ में सीधे, निश्चित तथा स्पष्ट शब्दों में जातियों के "स्वतंत्र **सांस्कृतिक** आत्मनिर्णय के अधिकार" की बात कही गयी है।

२) 'रेच' इस बात पर ज़ोर देता है कि 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' आत्मनिर्णय को और पार्थक्यवाद को, जाति विशेष के अलगाव को "बुरी तरह उलझा देता है"।

३) **"वास्तव में सांविधानिक-जनवादी कभी भी इस बात के लिए वचनबद्ध नहीं हुए हैं कि वे रूसी राज्य से 'जातियों के अलग हो जाने' के अधिकार का समर्थन करेंगे।"** (देखें २० दिसंबर, १९१३ के 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' के १२वें अंक में 'राष्ट्रवादी उदारवाद तथा जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार' शीर्षक लेख।)

पहले 'रेच' में प्रकाशित वक्तव्य के दूसरे मुद्दे पर विचार कर लें। इससे सेम्कोव्स्कियों, लीबमैनों, युरकेविचों तथा अन्य अवसरवादियों के लिए यह बात कितनी स्पष्ट हो जाती है कि "आत्मनिर्णय" शब्द की तथाकथित "अस्पष्टता" या "अनिश्चितता" के बारे में उन्होंने जो शोर-गुल मचाया है, वह **वास्तव में**, अर्थात रूस में वस्तुपरक वर्ग संबंधों तथा वर्ग संघर्ष के दृष्टिकोण से, उदारवादी-राजतंत्रवादी बुर्जुआज़ी के कथनों की **पुनरावृत्ति मात्र** है!

'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' ने 'रेच' के प्रबुद्ध "सांविधानिक-जनवादी" सज्जनों से ये **तीन** प्रश्न पूछे: १) क्या वे इससे इन्कार करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय जनतंत्र के समग्र इतिहास में, विशेषतः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से, जातियों के आत्मनिर्णय का अर्थ राजनीतिक आत्मनिर्णय, स्वतंत्र जातीय राज्य बनाने का अधिकार ही लगाया गया है? २) क्या वे इससे इन्कार करते हैं कि १८९६ में लंदन में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस में जो प्रख्यात प्रस्ताव स्वीकार किया गया था, उसका भी यही अर्थ है? और ३) क्या वे इससे इन्कार करते हैं कि अब से बहुत पहले, १९०२ में जब प्लेख़ानोव ने आत्मनिर्णय के बारे में लिखा था, तो उनका अभिप्राय राजनीतिक आत्मनिर्णय से ही था? जब 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' ने ये तीन प्रश्न पूछे, तो **कैडेट सज्जन ख़ामोश हो गये!!**

उन्होंने उत्तर में एक शब्द भी नहीं कहा, क्योंकि उनके पास कहने

को कुछ था ही नहीं। उन्हें परोक्ष रूप से यह स्वीकार करना पड़ा कि 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' का कहना बिलकुल सही है।

उदारवादियों का यह हो-हल्ला कि "आत्मनिर्णय" शब्द अस्पष्ट है और यह कि सामाजिक-जनवादी उसे पार्थक्यवाद के साथ "बुरी तरह उलझा देते हैं", इस मसले को **गड्ड-मड्ड करने**, सार्वत्रिक रूप से स्वीकृत जनतांत्रिक सिद्धांत को मानने से कतराने की कोशिशों के अलावा और कुछ नहीं है। यदि सेम्कोव्स्की, लीबमैन तथा युरकेविच जैसे सज्जन इतने नादान न होते, तो उन्हें मज़दूरों से **उदारवादियों** की भावना में बात करने में शर्म आती।

ख़ैर, आगे चलें। 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' ने 'रेच' को यह मानने पर मजबूर कर दिया कि कैडेटों के कार्यक्रम में "सांस्कृतिक" आत्मनिर्णय का अर्थ वस्तुतः **राजनीतिक** आत्मनिर्णय से **इन्कार** है।

"वास्तव में सांविधानिक-जनवादी कभी भी इस बात के लिए वचनबद्ध नहीं हुए हैं कि वे रूसी राज्य से 'जातियों के अलग हो जाने' के अधिकार का समर्थन करेंगे" – 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' ने हमारे कैडेटों की 'वफ़ादारी' के एक उदाहरण के रूप में 'रेच' के इन शब्दों की ओर 'नोवोये व्रेम्या' तथा 'ज़ेमश्चिना'[48] का ध्यान अकारण ही आकर्षित नहीं किया था। यहूदियों का उल्लेख करने और कैडेटों पर तरह-तरह की फबतियां कसने का एक भी मौक़ा हाथ से न जाने देनेवाले 'नोवोये व्रेम्या' ने अपने १३५६३वें अंक में लिखा:

> "जो चीज़ सामाजिक-जनवादियों के लिए राजनीतिक बुद्धिमत्ता का एक स्वयंसिद्धि है" (अर्थात जातियों के आत्म-निर्णय के, अलग हो जाने के अधिकार की मान्यता), "उसे लेकर आज कैडेटों के बीच भी मतभेद उत्पन्न होने लगे हैं।"

यह घोषणा करके कि वे "कभी भी इस बात के लिए वचनबद्ध नहीं हुए हैं कि वे रूसी राज्य से जातियों के अलग हो जाने के अधिकार का समर्थन करेंगे", कैडेटों ने सिद्धांततः ठीक वही रुख़ अपनाया है, जो 'नोवोये व्रेम्या' का है। कैडेटों के **राष्ट्रवादी उदारवाद** की, पुरिश्केविचों के साथ उनकी नातेदारी की और वैचारिक-राजनीतिक तथा व्यावहारिक-राजनीतिक रूप से पुरिश्केविचों पर उनकी निर्भरता की यही एक बुनियादी बात है। 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' ने लिखा:

"कैडेट महानुभावों ने इतिहास का अध्ययन किया है और वे इस बात को भली भांति जानते हैं कि पुरिश्केविचों के 'पकड़ लो और छोड़ो मत'[49] के पुरातन अधिकार के उपयोग की परिणति बहुधा – यदि नरमी से कहा जाये – 'व्यवस्थित डाकाज़नी और क़त्लेआम के ढंग की' हरकतों में हुई है।" पुरिश्केविचों की सर्वशक्तिमत्ता के सामंती स्रोत तथा स्वरूप से पूरी तरह परिचित होने के बावजूद कैडेट इसी वर्ग के बनाये हुए संबंधों तथा सीमाओं **के आधार पर** अपना रुख़ निर्धारित करते हैं। इस बात को भली भांति जानते हुए भी कि इस वर्ग के बनाये हुए अथवा उसके द्वारा निर्धारित किये हुए संबंधों तथा सीमाओं में कितनी ही बातें ऐसी हैं, जो अयूरोपीय, यूरोपविरोधी हैं (यदि जापानियों तथा चीनियों को अनुचित रूप से अपमानजनक न प्रतीत होता, तो हम 'एशियाई' शब्द का प्रयोग करते), कैडेट महानुभाव उन्हें लक्ष्मण रेखा ही मान लेते हैं।

इस प्रकार वे अपने आपको पुरिश्केविचों के अनुकूल बना रहे हैं, उनके सामने गिड़गिड़ा रहे हैं, उनकी स्थिति को ख़तरे में डालने से डर रहे हैं, जन-आंदोलन से, जनतंत्र से उनकी रक्षा कर रहे हैं। जैसाकि 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' ने लिखा: "वास्तव में इसका अर्थ यह है कि वे अपने आपको सामंती प्रभुओं के हितों के और प्रभुत्वशाली जाति के बदतरीन राष्ट्रवादी पूर्वग्रहों के अनुकूल ढाल रहे हैं, बजाय इसके कि वे बाक़ायदा इन पूर्वग्रहों के ख़िलाफ़ लड़ें।"

उन लोगों की हैसियत से, जो इतिहास से परिचित हैं और जन-वादी होने का दम भरते हैं, कैडेट यह कहने की कोशिश भी नहीं करते कि जो जनतांत्रिक आंदोलन आज पूर्वी यूरोप तथा एशिया दोनों ही की विशिष्टता है और जो दोनों ही को सभ्य, पूंजीवादी देशों के नमूने पर बदलने की कोशिश कर रहा है, उस आंदोलन का सामंती युग द्वारा, पुरिश्केविचों की सर्वशक्तिमत्ता और बुर्जुआज़ी तथा निम्न-बुर्जुआजी के व्यापक हिस्सों की अधिकारहीनता के युग द्वारा निर्धारित सीमाओं को अछूता छोड़ देना अवश्यंभावी है।

यह बात कि 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा' और 'रेच' के विवाद में जो प्रश्न उठाया गया था, वह केवल एक साहित्यिक प्रश्न न था, बल्कि एक वास्तविक तत्कालीन राजनीतिक समस्या से संबद्ध था, और बातों के अतिरिक्त कैडेट पार्टी के पिछले सम्मेलन से सिद्ध हो

6*

गयी, जो २३ से २५ मार्च, १९१४ तक हुआ था। 'रेच' में (२६ मार्च, १९१४, अंक ८३) इस सम्मेलन की जो अधिकृत रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसमें हम पढ़ते हैं:

"जातीय समस्याओं पर भी ख़ास तौर पर गरमागरम बहस हुई। कीयेव के प्रतिनिधियों ने, जिन्हें नि० वि० नेक्रासोव तथा अ० म० कोल्युबाकिन का समर्थन प्राप्त था, इंगित किया कि जातीय प्रश्न एक प्रमुख मुद्दा बनता जा रहा है, जिस पर अब तक की अपेक्षा अधिक दृढ़तापूर्वक विचार करना पड़ेगा। तथापि" (यह वही "तथापि" है, जो श्चेद्रीन के "परंतु" की तरह है – "कान कितने ही बड़े क्यों न हों, वे माथे से ऊपर कभी नहीं जाते, कभी नहीं") "फ़० फ़० कोकोश्किन ने इंगित किया कि कार्यक्रम और पिछले राजनीतिक अनुभव दोनों ही का यह तक़ाज़ा है कि 'जातियों के राजनीतिक आत्मनिर्णय' के 'नमनीय सूत्रों' को बड़ी सावधानी से हाथ लगाया जाये।"

कैडेट सम्मेलन में तर्क का जो यह अत्यंत उल्लेखनीय ढर्रा अपनाया गया, उस पर सभी मार्क्सवादियों तथा सभी जनवादियों को गंभीरता-पूर्वक ध्यान देना चाहिए। (हम यहां पर प्रसंगवश यह भी कह दें कि 'कीयेवस्काया मीस्ल'[50] ने, जिसे स्पष्टतः सारी बातों की अच्छी तरह जानकारी है और जो निःसंदेह श्री कोकोश्किन के विचारों को सही-सही पेश करता है, लिखा कि उन्होंने, बेशक अपने विरोधियों को चेतावनी देने के लिए, राज्य के "विघटन" के ख़तरे पर विशेष रूप से ज़ोर दिया।)

'रेच' में जो अधिकृत रिपोर्ट छपी है, वह बहुत ही कूटनीतिक निपुणता के साथ इस तरह तैयार की गयी है कि परदा यथासंभव कम से कम उठे और यथासंभव ज़्यादा बातें छुपी रहें। फिर भी कैडेट सम्मेलन में जो कुछ हुआ, वह मोटे तौर पर स्पष्ट है। उदार बुर्जुआ प्रतिनिधियों ने, जो उक्रइना की परिस्थिति से परिचित थे, और "वामपंथी" कैडेटों ने **ठीक** जातियों के **राजनीतिक** आत्मनिर्णय का ही प्रश्न उठाया। वरना श्री कोकोश्किन के लिए यह आग्रह करने का कोई कारण ही न होता कि इस "सूत्र" को बड़ी "सावधानी से हाथ लगाया जाये"।

कैडेट कार्यक्रम, जिससे कैडेट सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधि

स्वाभाविक रूप से परिचित थे, राजनीतिक **नहीं**, बल्कि-"सांस्कृतिक" आत्मनिर्णय की बात करता है। इसका अर्थ यह है कि श्री कोकोश्किन उक्रइनी प्रतिनिधियों **के विरुद्ध**, वामपंथी कैडेटों के विरुद्ध कार्यक्रम का **बचाव कर रहे थे**, राजनीतिक आत्मनिर्णय **के मुक़ाबले में** "सांस्कृतिक" आत्मनिर्णय का बचाव कर रहे थे। यह बात बिलकुल साफ़ है कि "राजनीतिक" आत्मनिर्णय का विरोध करते हुए, "राज्य के विघटन" के ख़तरे को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हुए, "राजनीतिक आत्मनिर्णय" के सूत्र को **"नमनीय"** सूत्र कहते हुए (बिलकुल रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की तर्ज़ में!) श्री कोकोश्किन कैडेट पार्टी के अधिक "वामपंथी" अथवा अधिक जनतांत्रिक तत्वों के ख़िलाफ़ और उक्रइनी बुर्जुआज़ी के ख़िलाफ़ भी महत रूसी राष्ट्रवादी उदारवाद की रक्षा कर रहे थे।

जैसाकि 'रेच' की रिपोर्ट के उस छोटे-से विश्वासघातक शब्द "तथापि" से ज़ाहिर है, कैडेट सम्मेलन में श्री कोकोश्किन की विजय हुई। कैडेटों के बीच महत रूसी राष्ट्रवादी उदारवाद की विजय हुई है। क्या इस विजय से रूस के मार्क्सवादियों में उन नासमझ लोगों की शंकाएं दूर नहीं हो जायेंगी, जो कैडेटों की तरह ही "जातियों के राजनीतिक आत्मनिर्णय के नमनीय सूत्रों" से डरने लगे हैं?

"तथापि" आइये, हम श्री कोकोश्किन के विचार-क्रम के सारतत्व को जांचें। "पिछले राजनीतिक अनुभव" का (अर्थात प्रकटतः १९०५ के अनुभव का, जब महत रूसी बुर्जुआ वर्ग अपने जातीय विशेषाधिकारों के बारे में आशंकित हो गया था और उसने अपने भय से कैडेट पार्टी को भी भयभीत कर दिया था) हवाला देते हुए और "राज्य के विघटन" के ख़तरे को पेश करते हुए श्री कोकोश्किन ने ज़ाहिर किया कि वह इस बात को भली भांति समझते हैं कि राजनीतिक आत्मनिर्णय का अर्थ अलग हो जाने और एक स्वतंत्र जातीय राज्य बना लेने के अधिकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। सवाल यह है: आम तौर पर जनतंत्र की रोशनी में और ख़ास तौर पर सर्वहारा वर्ग संघर्ष की रोशनी में श्री कोकोश्किन की आशंकाओं का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाये?

श्री कोकोश्किन हमसे इस बात पर विश्वास करवाना चाहते हैं कि अलग हो जाने के अधिकार को स्वीकार कर लेने से "राज्य के

विघटन" का खतरा बढ़ जायेगा। यह पुलिस कांस्टेबुल मिग्रेत्सोव का दृष्टिकोण है, जिसका मूल मंत्र था: "पकड़ लो और छोड़ो मत"। जनतंत्र के सामान्य दृष्टिकोण से वास्तविकता इसके बिलकुल उलट है: अलग हो जाने के अधिकार को मान लेने से "राज्य के विघटन" का खतरा कम हो जाता है।

श्री कोकोश्किन बिलकुल राष्ट्रवादियों की तरह से तर्क करते हैं। अपनी पिछली कांग्रेस में इन लोगों ने उक्रइनी "माज़ेपावादियों" पर हमला किया था। श्री सावेंको तथा उनके समर्थक चिल्लाये थे: उक्रइनी आंदोलन से उक्रइना तथा रूस के पारस्परिक संबंधों के कमज़ोर होने का खतरा पैदा होता है, क्योंकि अपने उक्रइनानुराग द्वारा आस्ट्रिया उक्रइना के साथ अपने संबंध मज़बूत बना रहा है!! यह बात फिर भी अस्पष्ट ही रहती है कि रूस उक्रइनियों के साथ अपने संबंध **उन्हीं उपायों से** "दृढ़ बनाने" की कोशिश क्यों नहीं कर सकता, जिनको इस्तेमाल करने का आरोप सावेंको जैसे लोग आस्ट्रिया पर लगाते हैं, अर्थात उक्रइनियों को अपनी भाषा इस्तेमाल करने की स्वतंत्रता, स्वशासन तथा स्वायत्त संसद, आदि देकर?

सावेंको तथा कोकोश्किन जैसे लोगों की दलीलें बिलकुल एक जैसी हैं और वे शुद्धतः तर्क के दृष्टिकोण से समान रूप से हास्यास्पद तथा बेतुकी हैं। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि उक्रइनी जाति को किसी देश विशेष में जितनी अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होगी, उस देश के साथ उसके संबंध भी उतने ही दृढ़तर होंगे? लगता है कि जनतंत्र की सभी आधारिकाओं का पूरी तरह परित्याग किये बिना इस स्वतःस्पष्ट सत्य पर विवाद नहीं किया जा सकता। और क्या किसी जाति के लिए अलग हो जाने की स्वतंत्रता से बढ़कर, एक स्वतंत्र जातीय राज्य बना लेने की स्वतंत्रता से बढ़कर भी कोई स्वतंत्रता हो सकती है?

इस सवाल को, जिसे उदारवादियों ने (और उन लोगों ने भी, जो नासमझी के कारण उनके शब्दों को दोहराते हैं) इतना उलझा दिया है, और स्पष्ट करने के लिए हम एक सीधी-सादी मिसाल देंगे। तलाक़ के सवाल को ले लें। अपने लेख में रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग लिखती हैं कि केंद्रीकृत जनतांत्रिक राज्य को अपने विभिन्न घटकों को स्वायत्तता देते हुए भी तलाक़ सहित विधिनिर्माण की सबसे महत्वपूर्ण शाखाओं को केंद्रीय संसद के अधिकार-क्षेत्र में रखना चाहिए। इस बात की

चिंता कि तलाक़ की स्वतंत्रता देने का अधिकार जनतांत्रिक राज्य की केंद्रीय सत्ता के पास बना रहना चाहिए, फ़ौरन समझ में आ जाती है। प्रतिक्रियावादी तलाक़ की स्वतंत्रता के ख़िलाफ़ हैं; वे कहते हैं कि इसे "बड़ी सावधानी से हाथ लगाना चाहिए" और ऊंचे स्वर में घोषणा करते हैं कि इसका अर्थ "परिवार का विघटन" है। परंतु जनवादियों का विश्वास है कि प्रतिक्रियावादी पाखंडी हैं और वे वास्तव में पुलिस और नौकरशाही की सर्वशक्तिमत्ता का, पुरुषों के विशेषाधिकारों का और स्त्रियों के बदतरीन क़िस्म के उत्पीड़न का समर्थन करते हैं। उनका विश्वास है कि स्वतंत्रता से वास्तव में पारिवारिक संबंधों का "विघटन" नहीं होगा, बल्कि इसके विपरीत वे जनतांत्रिक आधार पर, जो सभ्य समाज में एकमात्र संभव तथा टिकाऊ आधार है, अधिक दृढ़ होंगे।

आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता के, अर्थात अलग हो जाने की स्वतंत्रता के समर्थकों पर पार्थक्यवाद को प्रोत्साहन देने का आरोप लगाना उतना ही मूर्खतापूर्ण और पाखंडपूर्ण है, जितना कि तलाक़ की स्वतंत्रता के समर्थकों पर पारिवारिक बंधनों को नष्ट करने को प्रोत्साहन देने का आरोप लगाना। जिस प्रकार बुर्जुआ समाज में विशेषाधिकारों तथा भ्रष्टाचार – जिन पर बुर्जुआ विवाह आधारित है – के समर्थक तलाक़ की स्वतंत्रता का विरोध करते हैं, ठीक उसी प्रकार पूंजीवादी राज्य में आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता, अर्थात जातियों के अलग हो जाने की स्वतंत्रता से इन्कार करने का अर्थ केवल प्रभुत्वशाली जाति के विशेषाधिकारों की और प्रशासन के जनतांत्रिक तरीक़ों को नुक़सान पहुंचाकर डंडा-राज के तरीक़ों की हिमायत करना होता है।

इसमें संदेह नहीं कि पूंजीवादी समाज में विद्यमान समस्त संबंधों से उत्पन्न होनेवाले राजनीतिक भ्रष्टाचार के फलस्वरूप कभी-कभी संसद के सदस्य तथा पत्रकार इस या उस जाति के अलग हो जाने के बारे में ग़ैर-संजीदा और बेसिरपैर की बकवास करने लगते हैं। परंतु केवल प्रतिक्रियावादी ही इस प्रकार की बकवास से भयभीत हो सकते हैं (या भयभीत होने का ढोंग कर सकते हैं)। जो लोग जनतांत्रिक सिद्धांतों पर अडिग हैं, अर्थात जो इस बात का आग्रह करते हैं कि राज्य-विषयक प्रश्न जनसाधारण द्वारा तय किये जाने चाहिए, वे इस बात को भली भांति जानते हैं कि राजनीतिज्ञ जो बकवास करते रहते

है और जनता जो फ़ैसला करती है, उन दोनों के बीच "बहुत भारी अंतर"[51] है। जनसाधारण अपने प्रतिदिन के अनुभव से भौगोलिक तथा आर्थिक संबंधों के महत्व को तथा एक बड़ी मंडी और एक बड़े राज्य के फ़ायदों को भली भांति जानते हैं। इसलिए वे अलग हो जाने का क़दम तभी उठायेंगे, जब जातीय उत्पीड़न तथा जातियों के परस्पर झगड़ों के कारण संयुक्त जीवन बिलकुल असह्य हो उठे और कोई भी आर्थिक आदान-प्रदान सुगमतापूर्वक न चल सके। ऐसी दशा में अलग हो जाने से ही पूंजीवादी विकास का तथा वर्ग संघर्ष की स्वतंत्रता का सबसे अच्छे ढग से हितसाधन हो सकता है।

इस प्रकार हम श्री कोकोश्किन के तर्कों को जिस दृष्टिकोण से भी देखें, वे बेतुकेपन का चरम और जनतंत्र के सिद्धांतों का उपहास सिद्ध होते हैं। परन्तु इन दलीलों में एक प्रकार की तर्कसंगति है; यह है महत रूसी बुर्जुआज़ी के वर्ग हितों की तर्कसंगति। कैडेट पार्टी के अधिकांश सदस्यों की तरह श्री कोकोश्किन भी इस बुर्जुआज़ी के थैली-शाहों के चाकर हैं। वह उसके विशेषाधिकारों की आम तौर पर और उनके **राज्य संबंधी** विशेषाधिकारों की ख़ास तौर पर रक्षा करते हैं। वह उनकी रक्षा पुरिश्केविच के साथ हाथ से हाथ मिलाकर और कंधे से कंधा मिलाकर करते हैं, अंतर केवल यह है कि पुरिश्केविच सामंती लाठी पर ज़्यादा भरोसा करते हैं, जबकि कोकोश्किन और उनके संगी-साथी इस बात को समझते हैं कि यह लाठी १६०५ में बुरी तरह टूट गयी थी और वे जनता को धोखा देने के बुर्जुआ तरीक़ों पर ज़्यादा भरोसा करते हैं, जैसे कूपमंडूकों और किसानों को "राज्य के विघटन" के हौए से डराना और "जन-स्वतंत्रता" को ऐतिहासिक परंपरा के साथ मिलाने की बातों से उन्हें भरमाना, आदि।

जातियों के राजनीतिक आत्मनिर्णय के सिद्धांत के प्रति उदारवादियों के विरोध का वर्ग दृष्टि से एक, और केवल एक ही असली अर्थ हो सकता है: राष्ट्रवादी-उदारवाद, महत रूसी बुर्जुआज़ी के राज्य संबंधी विशेषाधिकारों की रक्षा। और रूस में मार्क्सवादियों के बीच अवसरवादी, जो आज, तीसरी जून की शासन-व्यवस्था के अंतर्गत जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के विरुद्ध हैं – विसर्जनवादी सेम्कोव्स्की, बुंदपंथी लीबमैन, उक्रइनी निम्न-बुर्जुआ युरकेविच –

ये सब **वास्तव में** राष्ट्रवादी उदारवादियों का अनुगमन करते हुए राष्ट्रवादी-उदारवादी विचारों से मज़दूर वर्ग को भ्रष्ट कर रहे हैं।

मज़दूर वर्ग के हितों तथा पूंजीवाद के विरुद्ध उसके संघर्ष के हितों का यह तक़ाज़ा है कि सभी जातियों के मज़दूरों के बीच पूर्ण एकजुटता तथा घनिष्ठतम एकता हो; उनका तक़ाज़ा है कि हर जाति के बुर्जुआ वर्ग की राष्ट्रवादी नीति का विरोध किया जाये। इसलिए यदि सामाजिक-जनवादी जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का, अर्थात उत्पीड़ित जातियों के अलग हो जाने के अधिकार का परित्याग कर दें या यदि वे उत्पीड़ित जातियों के बुर्जुआज़ी की सभी जातीय मांगों का समर्थन करने लगें, तो दोनों का मतलब होगा सर्वहारा नीति से विचलित होना और मज़दूरों को बुर्जुआ नीति के अधीन कर देना। उजरती मज़दूर के लिए इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता है कि उसका शोषण ग़ैर-रूसी बुर्जुआज़ी के हाथों न होकर मुख्यतः महत रूसी बुर्जुआज़ी के हाथों होता है, या यहूदी बुर्जुआज़ी, आदि के हाथों न होकर पोलिश बुर्जुआज़ी के हाथों होता है। जो उजरती मज़दूर अपने वर्ग हितों को समझ जाता है, वह महत रूसी पूंजीपतियों के राज्य संबंधी विशेषाधिकारों के प्रति और पोलिश या उक्रइनी पूंजीपतियों के राज्य संबंधी विशेषाधिकार मिल जाने पर इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतार लाने के वादों के प्रति समान रूप से उदासीन रहता है। पूंजीवाद का विकास अखंडित बहुजातीय राज्यों तथा एक जाति के पृथक राज्यों, दोनों ही में किसी न किसी रूप में हो रहा है और होता रहेगा।

किसी भी हालत में उजरती मज़दूर शोषण का विषय ही रहेगा। और शोषण के ख़िलाफ़ सफलतापूर्वक संघर्ष चलाने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वहारा राष्ट्रवाद से मुक्त हो, विभिन्न जातियों के बुर्जुआज़ी के बीच प्रभुता के लिए चलनेवाले संघर्ष में, कहना चाहिए, बिलकुल निष्पक्ष रहे। यदि किसी एक जाति का सर्वहारा "अपने" जातीय बुर्जुआ वर्ग के विशेषाधिकारों का लेशमात्र भी समर्थन करे, तो इसके फलस्वरूप दूसरी जाति के सर्वहारा में अनिवार्य रूप से अविश्वास पैदा होगा, मज़दूरों की अंतर्राष्ट्रीय वर्ग एकता कमज़ोर होगी और वे बंट जायेंगे, जिस पर बुर्जुआज़ी बग़लें बजायेगा। आत्मनिर्णय या अलग हो जाने के अधिकार को तिलांजलि देने का अर्थ

व्यवहार में अनिवार्य रूप से प्रभुत्वशाली जाति के विशेषाधिकारों का समर्थन है।

यदि हम स्वीडन से नार्वे के अलग हो जाने की ठोस मिसाल को लें, तो इस बात की और भी ज्वलंत रूप में पुष्टि होगी।

६. नार्वे का स्वीडन से अलगाव

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ठीक यही उदाहरण उद्धृत करती हैं और इसका विवेचन इस प्रकार करती हैं :

"संघात्मक संबंधों के इतिहास में नवीनतम घटना, नार्वे का स्वीडन से अलगाव – जिसे एक समय पोलैंड के सामाजिक-देशभक्त अख़बारों ने (देखें क्रैको का *Naprzód* 52) बड़ी आतुरता से ग्रहण किया था और उसे अलग राज्य बनाने की प्रवृत्ति की प्रबलता तथा उसके प्रगतिशील स्वरूप के एक संतोष-दायी उदाहरण के रूप में पेश किया था – शीघ्र ही इस बात का एक ज्वलंत प्रमाण बन गया कि संघवाद और उसका सहगामी, राज्य के रूप में अलगाव, किसी भी प्रकार प्रगतिशीलता या जनतंत्र के द्योतक नहीं हैं। नार्वे की तथाकथित 'क्रांति' के बाद जिसमें स्वीडन के बादशाह को तख़्त से उतार दिया गया और नार्वे छोड़ने पर मजबूर कर दिया गया, नार्वेजियाइयों ने राष्ट्रव्यापी जनमत-संग्रह द्वारा गणतंत्र स्थापित करने के सुझाव को बाज़ाब्ता ठुकराकर बड़ी शांति के साथ एक दूसरा बादशाह चुन लिया। जिस चीज़ को हर राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वतंत्रता के समस्त आभास के सतही प्रशंसकों ने एक 'क्रांति' कहा था, वह केवल किसान तथा निम्न-बुर्जुआ विशिष्टतावाद की, इस इच्छा की अभिव्यक्ति मात्र थी कि स्वीडन के अभिजात वर्ग द्वारा उन पर लादे गये बादशाह की जगह उनके पैसे से उनका 'अपना' बादशाह हो, इसलिए यह एक ऐसा आंदोलन था, जिसका क्रांति से कोई भी संबंध नहीं था। इसके साथ ही स्वीडन तथा नार्वे के संघ के भंग होने से यह बात एक बार फिर स्पष्ट हो गयी कि इस उदाहरण में भी जो संघ अभी तक अस्तित्व में था, वह किस हद तक शुद्धतः राजवंशीय हितों की अभिव्यक्ति मात्र था, और इसलिए वह केवल राजतंत्रवाद तथा प्रतिक्रियावाद का एक रूप था" *(Przegląd)*।

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग इस विषय में जो कुछ कहती हैं, वह शब्दशः यही है!! यह मानना पड़ेगा कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने अपने विचारों की निरर्थकता जितने स्पष्ट रूप में इस उदाहरण में प्रकट की है, उससे अधिक स्पष्ट रूप में उसे व्यक्त करना कठिन होता।

सवाल यह था और अब भी है कि क्या सामाजिक-जनवादियों को बहुजातीय राज्य में ऐसे कार्यक्रम की ज़रूरत है, जो आत्मनिर्णय के या अलग हो जाने के अधिकार को मानता हो?

स्वयं रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने नार्वे की जिस मिसाल का हवाला दिया है, उससे हमें इस बारे में क्या पता चलता है?

हमारी लेखिका बार-बार पहलू बदलती हैं और बल खाती हैं, अपनी सूझ-बूझ का पूरा ज़ोर लगाती हैं और *Naprzód* पर अपना गुस्सा उतारती हैं, पर इस प्रश्न का उत्तर नहीं देतीं!! रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग दुनिया भर की बातों का ज़िक्र करती हैं, ताकि उन्हें उस असली बात के बारे में **एक शब्द भी न कहना पड़े!!**

इसमें संदेह नहीं कि अपने पैसे से अपना बादशाह रखने की इच्छा प्रकट करके और राष्ट्रव्यापी जनमत-संग्रह द्वारा गणतंत्र स्थापित करने के सुझाव को रद्द करके नार्वे के निम्न-बुर्जुआ वर्ग ने बहुत ही बुरी कूपमंडूकीय प्रवृत्ति का परिचय दिया। इसमें भी संदेह नहीं कि इस बात को न देखकर *Naprzód* ने उतनी ही बुरी तथा उतनी ही कूप-मंडूक प्रवृत्ति का परिचय दिया।

परंतु इन सब बातों का भला इस समस्या से क्या संबंध है??

जिस सवाल पर बहस हो रही थी, वह था जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार और इस अधिकार के प्रति समाजवादी सर्वहारा का रुख़! फिर आख़िर इस प्रश्न के चारों ओर चक्कर काटने के बजाय रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग इसका सीधे-सीधे जवाब क्यों नहीं देतीं?

कहावत है कि चूहे की नज़रों में बिल्ली से ज़्यादा ताक़तवर कोई दूसरा जानवर नहीं होता। ज़ाहिर है, रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की नज़रों में "फ़ाकि" से ज़्यादा ताक़तवर कोई जानवर नहीं है। पोलिश समाजवादी पार्टी, उसके तथाकथित क्रांतिकारी गुट को आम बोलचाल में लोग "फ़ाकि" कहते हैं और क्रैको का अख़बार *Naprzód* इस "गुट" के विचारों का समर्थन करता है। इस "गुट" के राष्ट्रवाद के ख़िलाफ़

लड़ाई ने रोजा लुक्ज़ेमबुर्ग को इस क़दर अंधा कर दिया है कि उन्हें *Naprzód* के अलावा और कुछ दिखायी ही नहीं देता।

अगर *Naprzód* "हां" कहता है, तो रोजा लुक्ज़ेमबुर्ग फ़ौरन "नहीं" कहना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हैं, बिना यह सोचे कि ऐसा करके वह *Naprzód* से अपनी स्वतंत्रता को नहीं, बल्कि "फ़ाकि" पर अपनी हास्यास्पद निर्भरता को और मामलों को उससे अधिक गहरे तथा व्यापक दृष्टिकोण से, जैसे वे त्रैको की बांबी से दिखायी भी देते हैं, देख पाने की अपनी असमर्थता को सिद्ध करती हैं। *Naprzód* तो टुच्चा अख़बार है ही, और वह किसी भी सूरत में मार्क्सवादी नहीं है, परंतु चूंकि हमने नार्वे का उदाहरण ले लिया है, तो इस बात को उसका उचित ढंग से विश्लेषण करने की राह में बाधा नहीं बनना चाहिए।

इस उदाहरण का मार्क्सवादी ढंग से विश्लेषण करने के लिए हमें अत्यंत भयानक "फ़ाकि" के दोषों पर नहीं, बल्कि सबसे पहले नार्वे के स्वीडन से अलग हो जाने की ठोस ऐतिहासिक विशेषताओं पर विचार करना चाहिए और दूसरे, इस बात पर कि इस अलगाव के सिलसिले में दोनों देशों के **सर्वहारा** के सामने क्या काम थे।

नार्वे तथा स्वीडन के बीच जो भौगोलिक, आर्थिक तथा भाषागत संबंध हैं, वे किसी भी प्रकार उन संबंधों से कम मज़बूत नहीं हैं, जो महत रूसियों तथा अन्य बहुतेरी स्लाव जातियों के बीच हैं। परंतु नार्वे तथा स्वीडन की एकता स्वैच्छिक नहीं थी, इसलिए रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने "संघ" का जो उल्लेख किया है, वह बिलकुल ग़लत है, और उन्होंने इसका सहारा केवल इसलिए लिया कि उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहें। नेपोलियनी युद्धों के दौरान बादशाहों द्वारा नार्वे स्वीडन को नार्वेजियाइयों की इच्छा के विरुद्ध **दे दिया गया था**, और नार्वे को अपने अधीन करने के लिए स्वीडों को वहां अपनी सेनाएं ले जानी पड़ी थीं।

नार्वे जिस अत्यंत व्यापक स्वायत्तता का उपभोग कर रहा था (अपनी संसद, आदि), उसके बावजूद सम्मिलन के बाद कई दशकों तक नार्वे तथा स्वीडन के बीच लगातार झगड़ा चलता रहा और नार्वेजियाइयों ने स्वीडनी अभिजातों का जूआ अपने कंधों से उतार फेंकने के लिए पूरा ज़ोर लगा दिया। आख़िरकार अगस्त, १६०५ में उन्हें

सफलता प्राप्त हुई: नार्वे की संसद ने यह फ़ैसला किया कि स्वीडन का बादशाह अब से नार्वे का बादशाह नहीं है और उसके बाद नार्वेजियाइयों में जो जनमत-संग्रह हुआ, उसमें उन्होंने विशाल बहुमत से (पक्ष में लगभग २,००,००० और विरोध में कुछ सौ) स्वीडन से पूर्ण अलगाव के पक्ष में फ़ैसला किया। अनिश्चय की एक छोटी-सी अवधि के बाद स्वीडों ने अलगाव को स्वीकार कर लिया।

यह उदाहरण हमें बताता है कि आधुनिक आर्थिक तथा राजनीतिक संबंधों के अंतर्गत किन आधारों पर जातियां अलग हो सकती हैं और हो जाती हैं, और यह कि राजनीतिक स्वतंत्रता तथा जनतंत्र की परिस्थितियों में कभी-कभी यह अलगाव क्या **रूप** धारण करता है।

कोई भी सामाजिक-जनवादी इससे इन्कार नहीं कर सकता – बशर्ते वह राजनीतिक स्वतंत्रता और जनतंत्र के प्रश्नों के प्रति अपनी उदासीनता की घोषणा करने का निर्णय न करे (उस दशा में स्वाभाविक रूप से वह सामाजिक-जनवादी नहीं रह जायेगा) – कि यह उदाहरण इस बात का एक **व्यावहारिक** प्रमाण है कि वर्ग-चेतन मज़दूरों का **परम कर्तव्य** है कि वे उन झगड़ों को, जो जातियों के अलग हो जाने के सिलसिले में पैदा हो सकते हैं, "रूसी ढंग" से नहीं, बल्कि **केवल उस ढंग से** तय करने का सुसंगत प्रचार करें तथा उसके लिए ज़मीन तैयार करें, जिस ढंग से वे १६०५ में नार्वे तथा स्वीडन के बीच तय किये गये थे। कार्यक्रम में जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार करने की मांग द्वारा यही बात कही गयी है। परंतु नार्वे के कूपमंडूकों जैसी प्रवृत्ति तथा त्रैको के *Naprzód* पर ज़बरदस्त हमला करके रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने एक ऐसी हक़ीक़त से कतराने की कोशिश की, जो उनके सिद्धांत के प्रतिकूल थी, क्योंकि वह इस बात को भली भांति समझती थीं कि यह ऐतिहासिक तथ्य किस हद तक उनके इन फ़िक़रों का **पूरी तरह खंडन करता है** कि जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार एक "कोरी कल्पना" है, यह अधिकार "सोने के बरतनों में खाने" के अधिकार के समान है, आदि, आदि। इस तरह के फ़िक़रे केवल पूर्वी यूरोप की जातियों के वर्तमान शक्तिसंतुलन की अपरिवर्तनीयता में खोखली और आत्मतृप्तिपूर्ण अवसरवादी आस्था को ही व्यक्त करते हैं।

चलिये, आगे बढ़ें। अन्य सभी प्रश्नों की तरह जातियों के

आत्मनिर्णय के प्रश्न में भी हमें सबसे पहले और सबसे बढ़कर जाति विशेष के अंतर्गत सर्वहारा के आत्मनिर्णय में दिलचस्पी है। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग विनम्रतापूर्वक इस प्रश्न से भी कतरा गयीं, क्योंकि वह इस बात को समझती थीं कि स्वयं उन्हीं के द्वारा चुने हुए नार्वे के उदाहरण के आधार पर इसका विश्लेषण उनके "सिद्धांत" के लिए कितना अप्रिय होगा।

अलगाव के बारे में विवाद में नार्वे तथा स्वीडन के सर्वहारा ने क्या रुख़ अपनाया, और वास्तव में उसे क्या रुख़ अपनाना चाहिए था? नार्वे के अलग हो जाने **के बाद** नार्वे के वर्ग-चेतन मज़दूर स्वभावतः गणतंत्र के पक्ष में ही मत देते*, और यदि कुछ समाजवादियों ने इसके विपरीत मत दिया, तो यह केवल इस बात का द्योतक है कि यूरोपीय समाजवादी आंदोलन में कभी-कभी कितना मूर्खतापूर्ण और कूपमंडूकीय अवसरवाद देखने में आता है। इसके बारे में दो रायें नहीं हो सकती और हम इसका उल्लेख केवल इसलिए कर रहे हैं कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग **विषय से हटकर** बातें करके इस मसले पर परदा डालने की कोशिश कर रही हैं। हमें मालूम नहीं कि नार्वेजियाई समाजवादी कार्यक्रम में नार्वे के सामाजिक-जनवादियों के लिए अलगाव के प्रश्न पर एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाना अनिवार्य ठहराया गया था या नहीं। मान लें कि इस प्रकार की कोई बात अनिवार्य नहीं ठहरायी गयी थी, नार्वे के समाजवादियों ने इस सवाल के बारे में कुछ तय नहीं किया था कि नार्वे की स्वायत्तता स्वतंत्र रूप से वर्ग संघर्ष चलाने के लिए किस हद तक काफ़ी गुंजाइश देती है और स्वीडनी अभिजात वर्ग के साथ निरंतर टकराव तथा संघर्ष आर्थिक जीवन की स्वतंत्रता में किस हद तक बाधा डालते हैं। परंतु यह निर्विवाद है कि इस अभिजात वर्ग का विरोध करना और नार्वे के किसान जनतंत्र (उसकी तमाम कूपमंडूक परिसीमाओं के होते हुए भी) का समर्थन करना नार्वेजियाई सर्वहारा का कर्तव्य था।

और स्वीडन का सर्वहारा वर्ग? यह सर्वज्ञात है कि स्वीडन के

* चूंकि नार्वेजियाई जाति का बहुमत राजतंत्र के पक्ष में था, जबकि सर्वहारा गणतंत्र के पक्ष में था, लिहाज़ा नार्वेजियाई सर्वहारा के सामने सामान्यरूपेण दो ही रास्ते थे: या तो क्रांति, बशर्ते कि परिस्थिति उसके लिए परिपक्व होती, या बहुमत की इच्छा के आगे झुकना और दीर्घकाल तक आंदोलन तथा प्रचार करना।

पादरियों से प्रोत्साहन पाकर स्वीडन के ज़मींदार नार्वे के ख़िलाफ़ युद्ध की मांग कर रहे थे। और चूंकि स्वीडन के मुक़ाबले में नार्वे बहुत कमज़ोर था, चूंकि वह स्वीडन का एक आक्रमण झेल चुका था और चूंकि स्वीडन के अभिजात वर्ग का अपने देश में बड़ा असर था, इसलिए युद्ध की इस मांग से बहुत गंभीर ख़तरा पैदा हो गया था। हम यक़ीन के साथ कह सकते हैं कि स्वीडन के कोकोश्किन जैसे लोग "जातियों के राजनीतिक आत्मनिर्णय के नमनीय सूत्रों" को "बड़ी सावधानी से हाथ लगाने" का अनुरोध करके, "राज्य के विघटन" के ख़तरे के अत्यंत भयावह चित्र खींचकर और उन्हें यह विश्वास दिलाकर कि "जन-स्वातंत्र्य" स्वीडन के अभिजात वर्ग की परंपराओं से मेल खाता है, स्वीडनवालों के दिमाग़ों को काफ़ी समय तक और काफ़ी मेहनत के साथ भ्रष्ट करते रहे होंगे। इस बात में तनिक संदेह नहीं हो सकता कि यदि स्वीडन के सामाजिक-जनवादी अपनी पूरी शक्ति लगाकर ज़मींदार तथा "कोकोश्किन" विचारधारा और नीति को निष्फल बनाने के लिए न लड़े होते और यदि उन्होंने आम तौर पर सभी जातियों की बराबरी की **ही** नहीं (जिसका समर्थन कोकोश्किन जैसे लोग भी करते हैं), बल्कि जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की भी, नार्वे के अलग हो जाने की स्वतंत्रता की भी मांग न की होती, तो उन्होंने समाजवाद के लक्ष्य और जनतंत्र के लक्ष्य के साथ विश्वासघात किया होता।

नार्वे तथा स्वीडन के मज़दूरों की घनिष्ठ मित्रता को, उनकी पूर्णतः भ्रातृत्वपूर्ण वर्ग एकता को इस बात से **फ़ायदा पहुंचा** कि स्वीडन के मज़दूरों ने नार्वेजियाइयों के अलग हो जाने के अधिकार को स्वीकार किया। इससे नार्वेजियाई मज़दूरों को यक़ीन हो गया कि स्वीडन के मज़दूरों में स्वीडिश राष्ट्रवाद का ज़हर नहीं फैला है और वे स्वीडिश बुर्जुआज़ी तथा अभिजात वर्ग के विशेषाधिकारों के मुक़ाबले में नार्वे के सर्वहारागण के साथ बंधुत्व को अधिक महत्व देते हैं। यूरोप के बादशाहों तथा स्वीडन के अभिजात वर्ग द्वारा नार्वे पर ज़बरदस्ती थोपे गये संबंधों के नष्ट होने से नार्वे तथा स्वीडन के मज़दूरों के संबंध और भी मज़बूत हो गये। स्वीडन के मज़दूरों ने सिद्ध कर दिया कि बुर्जुआ नीति के **समस्त** उतार-चढ़ावों के बावजूद – बुर्जुआ संबंधों के कारण यह बिलकुल संभव है कि नार्वेजियाइयों को एक बार फिर ज़बरदस्ती स्वीडों

के अधीन कर दिया जाये! – वे स्वीडन तथा नार्वे दोनों ही के बुर्जुआजी के ख़िलाफ़ लड़ाई में दोनों जातियों के मज़दूरों की पूर्ण समानता तथा वर्ग एकता को बनाये रख सकेंगे तथा उसकी रक्षा कर सकेंगे।

प्रसंगवश, इससे पता चलता है कि "फ़ाकि" लोग कभी-कभी रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के साथ हमारे मतभेदों को पोलिश सामाजिक-जनवाद के ख़िलाफ़ "इस्तेमाल" करने की जो कोशिशें करते हैं, वे कितनी निराधार, और यहां तक कि कितनी टुच्ची भी होती हैं। "फ़ाकि" लोग सर्वहारा या समाजवादी नहीं, बल्कि एक निम्न-बुर्जुआ राष्ट्रवादी पार्टी हैं, वे पोलिश समाजवादी-क्रांतिकारियों से मिलते हैं। रूसी सामाजिक-जनवादियों और इस पार्टी के बीच एकता होने का सवाल न तो कभी रहा है और न कभी हो सकता था। दूसरी तरफ़, रूसी सामाजिक-जनवादियों में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसे उन घनिष्ठ संबंधों पर तथा उस एकता पर "पछतावा" हुआ हो, जो पोलिश सामाजिक-जनवादियों के साथ स्थापित हुए है। पोलिश सामाजिक-जनवादियों ने पोलैंड में, एक ऐसे देश में, जिसकी नस-नस में राष्ट्रवादी आकांक्षाएं तथा लालसाएं समायी हुई हैं, सच्चे अर्थों में पहली मार्क्सवादी, सच्चे अर्थों में सर्वहारा पार्टी का निर्माण करके महान ऐतिहासिक सेवा की है। तथापि पोलिश सामाजिक-जनवादियों की यह सेवा रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग द्वारा रूसी मार्क्सवादियों के कार्यक्रम के अनुच्छेद ९ के बारे में ढेर सारी अनर्गल बातें किये जाने की बदौलत महान नहीं है, अपितु इस खेदजनक तथ्य के बावजूद महान है।

निस्संदेह, "आत्मनिर्णय के अधिकार" का प्रश्न पोलैंड के सामाजिक-जनवादियों के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना रूसियों के लिए। यह बात बिलकुल समझ में आती है कि पोलैंड के राष्ट्रवाद से अंधे निम्न-बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ लड़ने के अपने जोश में (शायद कभी-कभी ज़रूरत से कुछ ज़्यादा ही) पोलैंड के सामाजिक-जनवादी "हद से गुज़र जाते हैं"। किसी रूसी मार्क्सवादी ने पोलैंड के अलग हो जाने का विरोध करने के लिए पोलिश सामाजिक-जनवादियों को दोष देने की बात कभी सोची भी नहीं। ये सामाजिक-जनवादी केवल तभी ग़लती करते हैं, जब रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की तरह वे रूसी मार्क्सवादियों के कार्यक्रम में आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार करने की आवश्यकता से इन्कार करने की कोशिश करते हैं।

सारत: इसका मतलब क्रैको के मानदंड से समझे जा सकनेवाले इन संबंधों को रूस में बसनेवाली सभी छोटी-बड़ी जातियों पर, जिनमें महत रूसी भी शामिल हैं, लागू करना है। इसका अर्थ है "उलटे तरीक़े से पोलिश राष्ट्रवादी" होना, न कि रूसी या अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवादी होना।

कारण यह है कि अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता के पक्ष में है। हम अब आगे चलकर इसी बात पर विचार करेंगे।

७. लंदन की १८९६ की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रस्ताव

यह प्रस्ताव इस प्रकार है:

> "कांग्रेस घोषणा करती है कि वह सभी जातियों के आत्मनिर्णय (Selbstbestimmungsrecht) के पूर्ण अधिकार का समर्थन करती है और हर उस देश के मज़दूरों के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है, जो इस समय सैनिक जातीय अथवा अन्य प्रकार की निरंकुशता के जूए के नीचे दबा हुआ है; कांग्रेस इन सभी देशों के मज़दूरों का आह्वान करती है कि वे समस्त संसार के वर्ग-चेतन (Klassenbewusste = जो अपने वर्ग के हितों को समझते हैं) मज़दूरों की पांतों में शामिल हो जायें और अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद को परास्त करने के लिए और अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ें।"*

---

* देखें जर्मन भाषा में लंदन कांग्रेस की अधिकृत रिपोर्ट: *Verhandlungen und Beschlüsse des internationalen sozialistischen Arbeiter und Gewerkschafts-Kongresses zu London, vom 27. Juli bis 1. August 1896, Berlin, 1896, S. 18.* ('२७ जुलाई से १ अगस्त, १८९६ तक लंदन में हुई समाजवादी मज़दूर पार्टियों तथा ट्रेडयूनियनों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्य-विवरण तथा निर्णय', बर्लिन, १८९६, पृ० १८। – सं०) रूसी भाषा में एक पुस्तिका प्रकाशित की गयी है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेसों के फ़ैसले दिये गये हैं, इस पुस्तिका में "आत्मनिर्णय" शब्द का अनुवाद ग़लत ढंग से "स्वायत्तता" किया गया है।

जैसाकि हम पहले ही बता चुके हैं, हमारे अवसरवादियों को, सर्वश्री सेम्कोव्स्की, लीबमैन तथा युरकेविच को इस प्रस्ताव का पता तक नहीं है। परंतु रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग को इसका पता है और वह इसे पूरे का पूरा उद्धृत करती हैं, जिसमें वही "आत्मनिर्णय" शब्द है, जो हमारे कार्यक्रम में है।

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग अपने "मौलिक" सिद्धांत की राह में आनेवाली इस अड़चन को कैसे दूर करती हैं?

अरे, यह तो बिलकुल आसान बात है: ...असली ज़ोर तो प्रस्ताव के दूसरे भाग में है... उसका घोषणात्मक स्वरूप... उसका हवाला तो कोई केवल ग़लतफ़हमी के कारण ही दे सकता है!!

हमारी लेखिका की लाचारी और उलझन सचमुच आश्चर्यजनक है। आम तौर पर केवल अवसरवादी ही इस तरह की दलीलें देते हैं कि कार्यक्रम की सुसंगत जनतांत्रिक तथा समाजवादी बातें केवल घोषणात्मक स्वरूप हैं, और वे बड़ी कायरता से इन बातों पर बहस करने से कतराते हैं। स्पष्टतः यह अकारण नहीं है कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग इस बार सेम्कोव्स्कियों, लीबमैनों तथा युरकेविचों की खेदजनक संगत में पड़ गयी। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग खुलकर यह कहने का साहस नहीं करतीं कि वह उपरोक्त प्रस्ताव को सही समझती हैं या ग़लत। वह तरह-तरह से पहलू बदलती और बल खाती हैं, मानो उन्हें ऐसे पाठकों का आसरा है, जो एकाग्रता की कमी के कारण या पूरी जानकारी न होने के कारण प्रस्ताव के दूसरे भाग को पढ़ना आरंभ करने के समय तक प्रस्ताव के पहले भाग को भूल जायेंगे, या फिर जिन्होंने लंदन कांग्रेस **से पहले** समाजवादी अखबारों में हुई बहस के बारे में सुना तक नहीं है।

परंतु यदि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग यह समझती हैं कि इतने महत्वपूर्ण बुनियादी प्रश्न के बारे में इंटरनेशनल के प्रस्ताव का आलोचनात्मक विश्लेषण करने का कष्ट उठाये बिना ही वह उसे रूस के वर्ग-चेतन मज़दूरों की आंखों के सामने पैरों तले रौंदकर आसानी से निकल जायेंगी, तो यह उनकी बहुत बड़ी भूल है।

लंदन कांग्रेस से पहले जो बहस हुई थी, उसमें रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के दृष्टिकोण को मुख्यतः जर्मन मार्क्सवादियों के मुखपत्र *Die Neue Zeit* के कॉलमों में प्रस्तुत किया गया था, **और बुनियादी तौर पर**

इंटरनेशनल में इस दृष्टिकोण की हार हुई थी! यह है इस बात का असली निचोड़, जिसे रूसी पाठकों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए।

बहस में पोलैंड की स्वतंत्रता का प्रश्न उठा। तीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये:

१) "फ़ाकि" का दृष्टिकोण, जिसकी ओर से हेक्कर बोले थे। वे लोग चाहते थे कि इंटरनेशनल **अपने** कार्यक्रम में पोलैंड की स्वतंत्रता की मांग को शामिल करे। यह सुझाव स्वीकार नहीं किया गया। इंटरनेशनल में इस दृष्टिकोण की हार हुई।

२) रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का दृष्टिकोण, अर्थात यह कि पोलिश समाजवादियों को पोलैंड की स्वतंत्रता की मांग नहीं उठानी चाहिए। यह दृष्टिकोण जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की घोषणा का पूर्णतः निषेध करता था। इंटरनेशनल में इस दृष्टिकोण की भी पराजय हुई।

३) वह दृष्टिकोण, जिसे तब कार्ल काउत्स्की ने अत्यंत विस्तारपूर्वक विकसित किया था, जिन्होंने रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का विरोध करते हुए यह सिद्ध किया था कि उनका भौतिकवाद अत्यंत "इकतरफ़ा" है। इस दृष्टिकोण के अनुसार इंटरनेशनल उस समय पोलैंड की स्वतंत्रता को अपना कार्यक्रम नहीं बना सकता था; परंतु – काउत्स्की ने कहा – पोलिश समाजवादियों को पूरा अधिकार है कि वे इस प्रकार की मांग पेश करें। समाजवादियों के दृष्टिकोण से ऐसी दशा में, जब जातीय उत्पीड़न मौजूद हो, जातीय स्वतंत्रता के कार्यभारों की उपेक्षा करना सरासर ग़लत है।

इंटरनेशनल के प्रस्ताव में इस दृष्टिकोण में निहित सबसे आवश्यक, सबसे मूलभूत प्रस्थापनाओं को प्रस्तुत किया गया है: एक ओर, सभी जातियों के आत्मनिर्णय के पूर्ण अधिकार की बिलकुल सीधे-सीधे तथा असंदिग्ध रूप से मान्यता; दूसरी ओर, मज़दूरों से इतने ही असंदिग्ध शब्दों में अपने वर्ग संघर्ष में **अंतर्राष्ट्रीय** एकता स्थापित करने की अपील।

हमारा ख़याल है कि यह प्रस्ताव बिलकुल सही है, और इसके दोनों भागों को अविभाज्य रूप में लेने पर बीसवीं शताब्दी के आरंभ में पूर्वी यूरोप तथा एशिया के दोनों के लिए यही ऐसा प्रस्ताव है,

जो जातियों के प्रश्न के संबंध में सर्वहारा की नीति का एकमात्र सही पथप्रदर्शन करता है।

आइये, उपरोक्त तीनों दृष्टिकोणों पर कुछ अधिक विस्तार के साथ विचार करें।

यह सुविदित है कि कार्ल मार्क्स तथा फ़्रेडरिक एंगेल्स का यह मत था कि पश्चिमी यूरोप के सभी जनवादियों का और उससे भी ज़्यादा सभी सामाजिक-जनवादियों का यह परम कर्तव्य है कि वे पोलैंड की स्वतंत्रता की मांग का सक्रिय रूप से समर्थन करें। उन्नीसवीं शताब्दी के पांचवें से सातवें दशकों – आस्ट्रिया तथा जर्मनी में बुर्जुआ क्रांतियों के और रूस में "कृषि सुधार"[53] के काल – के लिए यह दृष्टिकोण बिलकुल सही था और यही एक ऐसा दृष्टिकोण था, जो अविचल रूप से जनतांत्रिक तथा सर्वहारावर्गीय था। जब रूस में और अधिकांश स्लाव देशों में आम जनता गहरी नींद में सोयी हुई थी, जब इन देशों में कोई भी स्वतंत्र, जनव्यापी, जनतांत्रिक आंदोलन **नहीं थे**, तब पोलैंड के **अभिजात वर्ग का** स्वतंत्रता आंदोलन केवल समस्त रूसी, केवल समस्त जनवादियों के दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि सभी यूरोपीय जनवादियों के दृष्टिकोण से भी अत्यधिक तथा सर्वोपरि महत्व ग्रहण कर लेता था।*[54]

मार्क्स का यह दृष्टिकोण उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से लेकर आठवें दशक तक की अवधि तक के लिए तो पूरी तरह सही था, परंतु बीसवीं शताब्दी आते-आते में वह सही नहीं रह गया है। अधिकांश स्लाव देशों में, यहां तक कि रूस में भी, जो एक सबसे पिछड़ा हुआ स्लाव देश है, स्वतंत्र जनतांत्रिक आंदोलन, यहां तक कि स्वतंत्र सर्वहारा आंदोलन भी आरंभ हो गये हैं। अभिजात पोलैंड का लोप हो चुका है और उसका स्थान पूंजीवादी पोलैंड ने ले लिया है। ऐसी परिस्थितियों में पोलैंड का अपना **असाधारण** क्रांतिकारी महत्व खो देना अनिवार्य ही था।

मार्क्स का जो दृष्टिकोण एक **दूसरे ही युग** के लिए था, १८६३ में उसे हमेशा के लिए एक "ब्रह्मवाक्य" बना देने की पो० स० पा० (पोलिश समाजवादी पार्टी, वर्तमान "फ़्राकि") की कोशिश मार्क्सवाद के **शब्द** को मार्क्सवाद की **भावना** के विरुद्ध इस्तेमाल करने की कोशिश थी। इसलिए जब पोलैंड के सामाजिक-जनवादियों ने पोलिश निम्न-बुर्जुआज़ी के उग्र राष्ट्रवाद का विरोध किया और जातियों के प्रश्न को पोलैंड के मज़दूरों के लिए गौण महत्व का प्रश्न बताया, जब उन्होंने पोलैंड में पहली बार एक असली सर्वहारा पार्टी की स्थापना की और इस अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत की घोषणा की कि अपने वर्ग संघर्ष में पोलैंड तथा रूस के मज़दूरों को घनिष्ठतम एकता क़ायम रखनी चाहिए, तो उन्होंने बिलकुल ठीक ही किया।

परंतु क्या इसका अर्थ यह है कि बीसवीं शताब्दी के आरंभ में इंटरनेशनल जातियों के राजनीतिक आत्मनिर्णय के सिद्धांत को, या अलग हो जाने के अधिकार को पूर्वी यूरोप और एशिया के लिए अनावश्यक समझ सकता था? यह घोर बेतुकापन होता और (सिद्धांततः) यह मान लेने के बराबर होता कि तुर्की, रूस और चीनी राज्यों का बुर्जुआ-जनतांत्रिक पुनर्गठन पूरा हो गया है, (व्यवहारतः) यह निरंकुशता के प्रति अवसरवादी रुख़ अपनाने के बराबर होता।

नहीं। पूर्वी यूरोप तथा एशिया में उभरती हुई बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांतियों के काल में, राष्ट्रीय आंदोलन के जागृत तथा प्रखर होने के काल में, स्वावलंबी सर्वहारा पार्टियों के निर्माण के काल में, जातीय नीति के सिलसिले में इन पार्टियों का कार्यभार दोहरा होना चाहिए: सभी जातियों के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता, क्योंकि बुर्जुआ-जनतांत्रिक पुनर्गठन अभी तक पूरा नहीं हुआ है, क्योंकि मज़दूर वर्ग का जनतंत्र उदारवादी ढंग से नहीं, कोकोश्किन के ढंग से नहीं, बल्कि दृढ़तापूर्वक, गंभीरतापूर्वक और ईमानदारी के साथ सभी जातियों के अधिकारों की समानता के लिए लड़ता है; और फिर किसी

* यह एक अत्यंत दिलचस्प ऐतिहासिक शोध-कार्य होगा कि १८६३ में पोलैंड के एक अभिजातवर्गीय विद्रोही की स्थिति की पोलैंड के आंदोलन के महत्व का मूल्यांकन करने में (मार्क्स की तरह ही) समर्थ अखिल रूसी जनवादी-क्रांतिकारी चेर्निशेव्स्की की स्थिति के साथ और उक्रइनी कूपमंडूक द्रागोमानोव की स्थिति के साथ तुलना की जाये। द्रागोमानोव बाद में सामने आये थे और किसान के दृष्टिकोण को व्यक्त करते थे, उस किसान के, जो इतना अज्ञानी, इतना सोया हुआ और गोबर के अपने ढेर से इस बुरी तरह चिपका हुआ था कि पोलिश सामंतों के प्रति अपनी न्यायसंगत घृणा के कारण वह अखिल रूसी जनतंत्र के लिए उनके संघर्ष के महत्व को नहीं समझ पाता था। (तुलना करें द्रागोमानोव, 'ऐतिहासिक पोलैंड तथा रूसी जनतंत्र'।) द्रागोमानोव उन प्रेमपूर्ण चुंबनों के सर्वथा योग्य पात्र थे, जिनकी बौछार बाद में श्री प० बे० स्त्रूवे ने उन पर की, जो उस समय तक राष्ट्रवादी-उदारवादी बन चुके थे।

भी राज्य विशेष में, उसके इतिहास के तमाम उतार-चढ़ावों के दौरान, बुर्जुआजी द्वारा अलग राज्यों की सीमाओं के किसी भी प्रकार के पुनर्निर्धारण के बावजूद वर्ग संघर्ष में उस राज्य की सभी जातियों के सर्वहारागण की घनिष्ठतम तथा अटूट एकता को बनाये रखना।

इंटरनेशनल के १८९६ के प्रस्ताव में सर्वहारा के इसी दोहरे काम को निरूपित किया गया है। और १९१३ की गरमियों में रूसी मार्क्सवादियों के सम्मेलन में जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया था, उसका आधारभूत सिद्धांत भी यही था। कुछ लोगों को इस बात में एक "अंतर्विरोध" दिखायी देता है कि एक ओर, इस प्रस्ताव की चौथे मुद्दे से तो, जिसमें आत्मनिर्णय का, अलग हो जाने का अधिकार माना गया है, यह प्रतीत होता है कि राष्ट्रवाद को अधिकतम छूट "दे दी गयी है" (वास्तव में **सभी** जातियों के आत्मनिर्णय के **अधिकार** की मान्यता का अर्थ है अधिकतम **जनतंत्र** और न्यूनतम राष्ट्रवाद), और दूसरी तरफ़, पांचवें मुद्दे में मज़दूरों को किसी भी जाति के बुर्जुआ वर्ग के राष्ट्रवादी नारों के ख़िलाफ़ चेतावनी दी गयी है और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर एकताबद्ध सर्वहारा संगठनों में सभी जातियों के मज़दूरों के एकीकरण और संलयन की मांग की गयी है। परंतु यह "अंतर्विरोध" केवल अत्यंत छिछले दिमाग़वाले लोगों को दिखायी देता है, जो, मिसाल के लिए, इस बात को नहीं समझ पाते कि स्वीडन तथा नार्वे के सर्वहारा की एकता तथा वर्ग मैत्री को स्वीडन के मज़दूरों द्वारा नार्वे के अलग हो जाने तथा एक स्वाधीन राज्य बना लेने की स्वतंत्रता का सक्रिय रूप से समर्थन किये जाने से क्यों **फ़ायदा पहुंचा।**

८. कल्पनावादी कार्ल मार्क्स और व्यावहारिक रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग

पोलैंड की स्वतंत्रता को एक "कोरी कल्पना" घोषित करते हुए और इसी बात को अनगिनत बार दोहराते हुए रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग व्यंग्यपूर्वक जोर से कहती हैं: आयरलैंड की स्वतंत्रता की मांग क्यों न उठायी जाये?

प्रत्यक्षतः "व्यावहारिक" रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग आयरलैंड की स्वतंत्रता के बारे में कार्ल मार्क्स के रवैये से अनभिज्ञ हैं। इस पर कुछ विस्तार

से विचार करना उपयोगी होगा, ताकि यह पता लग जाये कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता की एक **ठोस** मांग का विश्लेषण अवसरवादी दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि सच्चे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से किस प्रकार किया गया था।

मार्क्स का यह दस्तूर था कि अपनी जान-पहचान के समाजवादियों की समझदारी और उनके विश्वासों की दृढ़ता को परखने के लिए वह, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, उनके "दांतों की थाह लिया करते थे"।[55] लोपातिन से परिचित होने के बाद मार्क्स ने ५ जुलाई, १८७० को एंगेल्स को लिखे एक पत्र में इस रूसी समाजवादी नौजवान की बहुत प्रशंसा करते हुए उसके बारे में अपनी राय व्यक्त की थी, पर साथ ही यह भी जोड़ा था:

"...**पोलैंड का प्रश्न** उसकी कमज़ोरी है। इस सवाल पर वह बिलकुल वैसे ही बात करता है, जैसे कोई अंग्रेज़ – यह कहें कि पुराने ढर्रे का कोई अंग्रेज़ चार्टिस्ट – आयरलैंड के बारे में करता है।"[56]

उत्पीड़क जाति के समाजवादी से मार्क्स उत्पीड़ित जाति के प्रति उसके रवैये के बारे में सवाल करते हैं और फ़ौरन उस दोष को प्रकट कर देते हैं, जो सभी प्रभुत्वशाली जातियों (अंग्रेज़ और रूसी) के समाजवादियों में **समान रूप से** पाया जाता है: दलित जातियों के प्रति अपने समाजवादी कर्तव्यों को न समझना और "प्रभुत्वशाली जाति" के बुर्जुआज़ी से प्राप्त पूर्वग्रहों को प्रतिध्वनित करना।

आयरलैंड के विषय में मार्क्स के निश्चित कथनों पर विचार करने से पहले हम यह बता दें कि आम तौर पर जातियों के प्रश्न के प्रति मार्क्स और एंगेल्स का रवैया बहुत ही आलोचनात्मक था और वे इस प्रश्न के ऐतिहासिक दृष्टि से सापेक्ष महत्व को मान्यता देते थे। मिसाल के लिए, एंगेल्स ने २३ मई, १८५१ को मार्क्स को लिखा था कि इतिहास के अध्ययन से वह पोलैंड के बारे में बहुत ही निराशाजनक निष्कर्षों पर पहुंचते जा रहे हैं, और यह कि पोलैंड का महत्व अस्थायी है – केवल तभी तक, जब तक कि रूस में कृषिक क्रांति न हो जाये। इतिहास में पोलैंडवालों की भूमिका "वीरतापूर्ण मूर्खता" की रही है। "और इसका एक भी उदाहरण नहीं दिया जा सकता कि पोलैंड ने, केवल रूस के प्रसंग में ही सही, सफलतापूर्वक प्रगति का प्रतिनिधित्व किया हो, या कोई भी ऐसी बात की हो, जिसका

ऐतिहासिक महत्व हो।" रूस में सभ्यता, शिक्षा, उद्योग तथा बुर्जुआजी के उससे कहीं अधिक तत्व हैं, जितने कि "निठल्ले अभिजात वर्ग के पोलैंड" में हैं। "पीटर्सबर्ग, मास्को, ओदेस्सा की तुलना में वार्सा और क्रैको क्या हैं!" एंगेल्स को पोलैंड के अभिजात वर्ग की बग़ावतों की सफलता में ज़रा भी यक़ीन नहीं था।

परंतु ये सब विचार भी, जो अनन्य प्रतिभा तथा अत्यंत गहरी अंतर्दृष्टि का परिचय देते हैं, बारह वर्ष बाद, जब रूस अभी तक सोया हुआ था और पोलैंड में उबाल आ रहा था, मार्क्स तथा एंगेल्स के लिए पोलैंड के आंदोलन के प्रति अत्यंत गहरी तथा प्रबल सहानुभूति दिखाने की राह में किसी भी प्रकार बाधक नहीं हुए।

१८६४ में इंटरनेशनल की घोषणा का मसौदा तैयार करते समय मार्क्स ने एंगेल्स को लिखा (४ नवंबर, १८६४ को) कि उन्हें मेज़्ज़िनी के राष्ट्रवाद का विरोध करना पड़ा है और फिर कहा: "घोषणा में जहां तक अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का सवाल आया है, मैंने जातियों का उल्लेख न करके देशों का उल्लेख किया है और छोटे-छोटे राज्यों की नहीं, बल्कि रूस की निंदा की है।" मार्क्स के दिमाग़ में इसके बारे में कोई शंका नहीं थी कि "मज़दूरों के प्रश्न" की तुलना में जातियों का प्रश्न गौण महत्व रखता है। परंतु उनका सिद्धांत राष्ट्रीय आंदोलनों की रत्ती भर भी उपेक्षा नहीं करता।

१८६६ आता है। मार्क्स एंगेल्स को पेरिस के "प्रूदों गुट" के बारे में लिखते हैं, जो "जातियों को निरर्थक बताता है और बिस्मार्क तथा गरीबाल्दी पर हमला करता है। अंधराष्ट्रवाद के ख़िलाफ़ वादानुवाद के रूप में उसकी हरकतें उपयोगी तथा बोधगम्य हैं। पर प्रूदों में आस्था रखनेवाले (उनमें मेरे दो बहुत अच्छे मित्र लफ़ार्ग तथा लॉन्ये भी शामिल हैं) जब यह सोचने लगते हैं कि जब तक फ़्रांस के भद्र लोग दरिद्रता तथा अज्ञान का उन्मूलन न कर लें, तब तक सारा यूरोप चुपचाप हाथ पर हाथ धरे बैठा रह सकता है और उसे बैठे रहना चाहिए – तो उनकी हालत हास्यास्पद हो जाती है" (७ जून, १८६६ का पत्र)।

२० जून, १८६६ को मार्क्स लिखते हैं: "कल इंटरनेशनल की कौंसिल में वर्तमान युद्ध के बारे में बहस हुई... बहस, जैसे आशा की ही जाती थी, मुख्यतः 'जाति' के प्रश्न और उसके प्रति हमारे द्वारा

अपनाये जानेवाले रवैये के बारे में थी। 'तरुण फ़्रांस' के प्रतिनिधियों (**ग़ैर-मज़दूरों**) ने यह ऐलान किया कि सभी जातियां और राष्ट्र तक 'कालातीत पूर्वग्रह' हैं। प्रूदोंछाप स्टर्नरवाद... सारी दुनिया को तब तक ठहरे रहना होगा कि जब तक फ़्रांसीसी सामाजिक क्रांति के लिए परिपक्व नहीं हो जाते... मैंने अपना भाषण यह कहकर शुरू किया, तो अंग्रेज़ बहुत हंसे कि हमारे मित्र लफ़ार्ग तथा अन्य, जिन्होंने जातियों का ख़ात्मा कर दिया है, अपनी बात हमें 'फ़्रांसीसी' में बता रहे थे, अर्थात ऐसी भाषा में, जिसे $^{9}/_{10}$ श्रोताओं ने नहीं समझा। मैंने यह भी कहा कि जातियों के निषेध से वह, बिलकुल अचेतन रूप से, उनका आदर्श फ़्रांसीसी जाति द्वारा आत्मसात किया जाना समझते प्रतीत होते हैं।"

मार्क्स की इन सब आलोचनात्मक टीकाओं से जो निष्कर्ष निकलता है, वह स्पष्ट है: मज़दूर वर्ग जातियों के प्रश्न को जड़पूजा हरगिज़ नहीं बना सकता, क्योंकि यह कोई ज़रूरी नहीं है कि पूंजीवाद का विकास **सभी** जातियों में स्वतंत्र जीवन की भावना जागृत कर दे। परंतु जनव्यापी राष्ट्रीय आंदोलनों का आरंभ हो जाने के बाद उनकी ओर से मुंह फेर लेने और उनमें जो प्रगतिशील बातें हों, उनका समर्थन न करने का अर्थ वस्तुतः **राष्ट्रवादी** पूर्वग्रहों के आगे झुकना, अर्थात "अपनी ही" जाति को "आदर्श जाति" (या, हम यह और जोड़ेंगे, राज्य बनाने का अनन्य विशेषाधिकारप्राप्त जाति) मानना है।*

लेकिन, आइये, हम फिर आयरलैंड के प्रश्न की ओर लौटें।

इस प्रश्न के बारे में मार्क्स के विचार उनके पत्रों के निम्नलिखित उद्धरणों में अत्यंत स्पष्टता के साथ व्यक्त किये गये हैं:

"मैंने फ़ेनियनवाद[57] के पक्ष में अंग्रेज़ मज़दूरों के इस प्रदर्शन को संभव बनाने के लिए भरसक पूरी कोशिश की है... पहले मैं इंगलैंड से आयरलैंड के अलग होने को असंभव समझा करता था। अब मैं इसे अनिवार्य समझता हूं, यद्यपि यह संभव है कि अलग हो जाने के

---

* एंगेल्स के नाम मार्क्स का ३ जून, १८६७ का पत्र भी देखें: "मुझे *Times*[58] में प्रकाशित पेरिस के पत्रों से यह जानकर सचमुच बहुत ख़ुशी हुई कि पेरिसवासियों ने रूस के ख़िलाफ़ और पोलैंड के पक्ष में अपने उद्गार प्रकट किये... श्री प्रूदों और उनका छोटा-सा मताग्रही गुट ही समस्त फ़्रांसीसी जनगण नहीं हैं।"

बाद उनका संघ बन जाये।" यह बात मार्क्स ने एंगेल्स को २ नवंबर, १८६७ को लिखी थी।

उसी वर्ष ३० नवंबर के अपने पत्र में उन्होने जोड़ा:

"**अंग्रेज़** मज़दूरों को हम क्या सलाह दें? मेरी राय में उन्हें संघ के Repeal (निरसन) को" (इंगलैंड के साथ आयरलैंड के संघ के निरसन, अर्थात इंगलैंड से आयरलैंड के अलग हो जाने को), "संक्षेप में १७८३ वाली मांग को, बस जिसे केवल जनतांत्रिक रूप दे दिया गया हो और वर्तमान स्थितियों के अनुकूल कर लिया गया हो, अपने कार्यक्रम की एक धारा बना लेना चाहिए। यह आयरलैंड की मुक्ति का एकमात्र क़ानूनी और इसलिए एकमात्र संभव रूप है, जो **इंगलैंड की** किसी पार्टी के कार्यक्रम में शामिल किया जा सकता है। अनुभव आगे चलकर बतायेगा कि इन दोनों देशों के बीच मात्र निजी संघ क़ायम रह सकता है या नहीं...

"...आयरलैंडवालों को जिन चीज़ों की ज़रूरत है, वे हैं:

"१) स्वशासन और इंगलैंड से स्वतंत्रता;

"२) कृषिक क्रांति..."

मार्क्स आयरलैंड के प्रश्न को बहुत महत्व देते थे और उन्होंने जर्मन मज़दूर संघ में इस विषय पर डेढ़-डेढ़ घंटे के व्याख्यान दिये थे (१७ दिसंबर, १८६७ का पत्र)।[59]

एंगेल्स ने २० नवंबर, १८६८ के पत्र में "आयरी लोगों के प्रति अंग्रेज़ मज़दूरों के बीच घृणा की भावना" का उल्लख किया है और लगभग एक वर्ष बाद (२४ अक्तूबर, १८६९) इसी विषय की फिर चर्चा करते हुए वह लिखते हैं:

आयरलैंड से रूस तक il n'y a qu'un pas (केवल एक क़दम का फ़ासला है)... आयरलैंड का इतिहास हमें बताता है कि किसी जाति के लिए किसी दूसरी जाति को अपने अधीन कर लेना कितना दुर्भाग्यपूर्ण होता है। अंग्रेज़ों के सभी घृणास्पद तत्वों का मूल आयरी बाड़े में ही हैं। मुझे अभी क्रॉमवेल के काल का अध्ययन करना बाक़ी है, परंतु इतनी बात मुझे निश्चित प्रतीत होती है कि यदि आयरलैंड में सेना के बल पर शासन करने और वहां एक नये अभिजात वर्ग को जन्म देने की ज़रूरत न पड़ी होती, तो इंगलैंड में भी परिस्थिति ने दूसरा ही रूप धारण किया होता।"

लगे हाथ हम एंगेल्स के नाम मार्क्स के १८ अगस्त, १८६९ के पत्र पर भी दृष्टि डाल लें:

"पोज़नान में पोलिश मज़दूरों ने अपने बर्लिन के साथियों की सहायता से एक हड़ताल को विजयात्मक परिणति पर पहुंचा लिया है। 'श्री पूंजी' के विरुद्ध यह संघर्ष – हड़ताल जैसे गौण रूप में भी – जातीय पूर्वग्रहों से छुटकारा पाने का बुर्जुआ महानुभावों के होंठों से शांति के बखानों की बनिस्बत अधिक गंभीर तरीक़ा है।"

इंटरनेशनल में मार्क्स ने आयरलैंड के प्रश्न पर जिस नीति का अनुसरण किया, उसका पता निम्नलिखित बातों से लगाया जा सकता है:

मार्क्स १८ नवंबर, १८६९ को एंगेल्स को लिखते हैं कि वह इंटरनेशनल की परिषद में आयरी क्षमादान के प्रति ब्रिटिश मंत्रिमंडल के रवैये के सवाल पर सवा घंटे बोले और उन्होंने निम्नलिखित प्रस्ताव रखा:

"फ़ैसला किया जाता है:

"कि बंदी आयरी देशभक्तों की रिहाई के लिए आयरलैंडवालों की मांगों का श्री ग्लैडस्टन ने जो उत्तर दिया है, उसमें उन्होंने जान-बूझकर आयरी जाति का आपमान किया है;

"कि वह राजनीतिक क्षमादान को ऐसी शर्तों द्वारा अवरुद्ध कर रहे हैं, जो कुशासन के शिकारों और उनकी क़ौम के लिए समान रूप से अपमानजनक हैं;

"कि अपने उत्तरदायी पद के बावजूद अमरीका के गुलामों के मालिकों के विद्रोह की खुलेआम तथा उत्साहपूर्वक जयजयकार करने के बाद अब ग्लैडस्टन आयरलैंड की जनता को चुपचाप आज्ञापालन करने का उपदेश देने लगे हैं;

"कि आयरी क्षमादान के प्रसंग में उनकी सारी कार्रवाइयां उस '**विजय-नीति**' की सच्ची और वास्तविक अभिव्यक्ति हैं, जिसकी प्रचंड भर्त्सना करके ही श्री ग्लैडस्टन ने अपने टोरी प्रतिद्वंद्वियों को पदच्युत किया था;

"कि आयरी जनता जिस उत्साह, दृढ़ता और उदात्त भावना के साथ अपना क्षमादान आंदोलन चला रही है, अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की महापरिषद उसकी सराहना करती है;

"कि यह प्रस्ताव अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की सभी शाखाओं तथा यूरोप और अमरीका में उससे संबंधित मजदूरों की सभी संस्थाओं को प्रेषित दिया जाये।"

१० दिसंबर, १८६९ को मार्क्स लिखते हैं कि इंटरनेशनल की कौंसिल में वह आयरलैंड के प्रश्न पर जो रिपोर्ट पढ़ेंगे, वह इस प्रकार प्रस्तुत की जायेगी:

"'आयरलैंड के प्रति न्याय' के बारे में सारे 'अंतर्राष्ट्रीय' तथा 'मानवोचित' फ़िक़रों से सर्वथा स्वतंत्र रूप में – जिन्हें इंटरनेशनल की परिषद में मानी हुई बात समझा जाता है – **इंगलैंड के मज़दूर वर्ग के हित सीधे-सीधे और पूरी तरह यह मांग करते हैं कि वह आयरलैंड के साथ अपना वर्तमान संबंध बिलकुल ख़त्म कर दे।** यह मेरा दृढ़ विश्वास है और इसके कारण ऐसे हैं, जिनमें से कुछ को मैं इंगलैंड के मज़दूरों को नहीं बता सकता। बहुत समय तक मेरा यह विश्वास था कि अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग के प्रभुत्व में आने से आयरलैंड की शासन-व्यवस्था का तख़्ता उलटना संभव हो जायेगा। मैंने *New York Daily Tribune* में" (एक अमरीकी अख़बार, जिसमें मार्क्स के लेख बहुत समय तक छपते रहे) "हमेशा इस दृष्टिकोण को व्यक्त किया। सवाल का अधिक गहरा अध्ययन करने से मेरा विश्वास इसका उलटा हो गया है। अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग जब तक आयरलैंड से अपना पीछा नहीं छुड़ा लेगा, तब तक वह **कुछ भी नहीं कर सकता**... इंगलैंड में अंग्रेज़ों के प्रतिक्रियावाद का स्रोत आयरलैंड के अधीनीकरण में निहित है" (शब्दों पर ज़ोर मार्क्स ने दिया है)।

आयरी प्रश्न पर मार्क्स की नीति अब पाठकों के लिए बिलकुल स्पष्ट हो गयी होगी।

"कल्पनावादी" मार्क्स इतने "अव्यावहारिक" थे कि उन्होंने आयरलैंड के अलग हो जाने का समर्थन किया, जो बात आज, पचास वर्ष बाद, भी पूरी नहीं हो पायी है।

मार्क्स की इस नीति को किस चीज़ ने जन्म दिया और क्या वह भ्रांतिपूर्ण नहीं थी?

पहले मार्क्स यह सोचते थे कि आयरलैंड की मुक्ति उत्पीड़ित जाति के राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा नहीं, बल्कि उत्पीड़क जाति के मज़दूर आंदोलन द्वारा होगी। मार्क्स ने राष्ट्रीय आंदोलनों को निरपेक्ष रूप

में ग्रहण नहीं किया था, क्योंकि वह जानते थे कि मज़दूर वर्ग की विजय ही समस्त जातियों को पूर्णतः मुक्त कर सकती है। उत्पीड़ित जातियों के बुर्जुआ स्वाधीनता आंदोलनों और उत्पीड़क जाति के सर्वहारा मुक्ति आंदोलन के सभी संभव पारस्परिक संबंधों का पहले से अनुमान लगाना (यही समस्या है, जिसके कारण आज के रूस में जातियों का प्रश्न इतना कठिन हो गया है) असंभव है।

परंतु हुआ यह कि इंगलैंड का मज़दूर वर्ग काफ़ी दीर्घकाल के लिए उदारवादियों के असर में पड़ गया, वह उदारवादियों का दुमछल्ला बन गया और उदारवादी मज़दूर नीति अपनाकर उसने अपने आपको नेतृत्वहीन बना डाला। आयरलैंड में बुर्जुआ मुक्ति आंदोलन मज़बूत होता गया और उसने क्रांतिकारी रूप धारण कर लिया। मार्क्स ने अपने मत पर फिर विचार किया और उसे सुधार लिया। "किसी जाति के लिए किसी दूसरी जाति को अपने अधीन कर लेना कितना दुर्भाग्यपूर्ण होता है।" अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग उस समय तक कभी स्वतंत्र नहीं होगा, जब तक आयरलैंड की गरदन पर से इंगलैंड का जूआ न उतर जाये। आयरलैंड की गुलामी से इंगलैंड में प्रतिक्रियावादी शक्तियां मज़बूत होती हैं तथा पनपती हैं (ठीक जैसे रूस में अनेक जातियों की गुलामी से प्रतिक्रियावाद पनपता है!)।

और मार्क्स इंटरनेशनल में "आयरी जाति", "आयरिश जनता" के प्रति सहानुभूति का प्रस्ताव रखकर (चतुर ल० व्ला० शायद बेचारे मार्क्स को वर्ग संघर्ष बिसराने के लिए लताड़ते!) इंगलैंड से आयरलैंड के **अलग हो जाने** का प्रचार करते हैं, "यद्यपि यह संभव है कि अलग हो जाने के बाद उनका संघ बन जाये"।

मार्क्स के इस निष्कर्ष के लिए क्या सैद्धांतिक आधार थे? इंगलैंड में बुर्जुआ क्रांति बहुत पहले पूरी हो चुकी थी। परंतु आयरलैंड में वह अभी तक पूरी नहीं हुई थी; वह अब जाकर, पचास वर्ष बीतने के बाद, अंग्रेज़ उदारवादियों के सुधारों द्वारा पूरी की जा रही है। यदि इंगलैंड में पूंजीवाद का तख़्ता उतनी जल्दी उलट दिया गया होता, जितनी मार्क्स को पहले आशा थी, तो आयरलैंड में बुर्जुआ-जनतांत्रिक तथा आम राष्ट्रीय आंदोलन के लिए कोई गुंजाइश ही बाक़ी नहीं रह जाती। परंतु चूंकि इस प्रकार का आंदोलन उत्पन्न हो गया था, इसलिए मार्क्स ने अंग्रेज़ मज़दूरों को **स्वयं अपनी** स्वतंत्रता

के हित में उसका समर्थन करने, उसे क्रांतिकारी प्रोत्साहन देने और उसे पूर्णता तक पहुंचाने की सलाह दी।

बेशक, उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में इंगलैंड के साथ आयरलैंड के आर्थिक संबंध पोलैंड, उक्रइना, आदि के साथ रूस के संबंधों से भी अधिक घनिष्ठ थे। आयरलैंड के अलग होने की "अव्यावहारिकता" तथा "अव्यवहार्यता" एकदम प्रकट थीं (भौगोलिक परिस्थितियों और इंगलैंड की अपार औपनिवेशिक शक्ति के कारण ही सही)। यद्यपि मार्क्स सिद्धांततः संघवाद के शत्रु थे, पर इस मामले में उन्होंने संघ की भी गुंजाइश छोड़ दी थी*, **बशर्ते कि** आयरलैंड की मुक्ति सुधारवादी ढंग से नहीं, बल्कि क्रांतिकारी ढंग से, आयरलैंड के जनसाधारण के आंदोलन द्वारा प्राप्त की जाये, जिसे इंगलैंड के मज़दूर वर्ग का समर्थन प्राप्त हो। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि इस ऐतिहासिक समस्या का केवल ऐसा ही हल सर्वहारा के हितों के सर्वाधिक अनुकूल होता और सामाजिक विकास की गति तेज़ करता।

परंतु ऐसा हुआ नहीं। आयरी जनता और अंग्रेज़ सर्वहारा दोनों ही कमज़ोर साबित हुए। अब जाकर आयरी बुर्जुआज़ी का अंग्रेज़ उदारवादियों के साथ घटिया समझौता हो जाने पर आयरी समस्या को भूमि सुधारों (मुआवज़ा देकर) और स्वशासन (जो अभी तक लागू नहीं किया गया है) के ज़रिये **हल किया जा रहा है** (अल्सटर[60] का उदाहरण बताता है कि यह काम कितनी कठिनाई से हो रहा है)। तो फिर? क्या इससे यह नतीजा निकलता है कि मार्क्स और एंगेल्स "कल्पनावादी" थे, कि वे "अव्यवहार्य" राष्ट्रीय मांगें पेश करते थे, या कि उन्होंने अपने आपको आयरी निम्न-बुर्जुआ (क्योंकि फ़ेनियन आंदोलन के निम्न-बुर्जुआ स्वरूप के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता) राष्ट्रवादियों के असर में आ जाने दिया, आदि?

नहीं, आयरी सवाल के बारे में भी मार्क्स तथा एंगेल्स ने अविचल सर्वहारा नीति का अनुसरण किया, जिसने आम जनता को सचमुच जनतंत्र तथा समाजवाद की भावना में शिक्षित किया। केवल ऐसी ही नीति आयरलैंड तथा इंगलैंड दोनों ही को आवश्यक सुधार लागू करने में पचास वर्ष के विलंब से और प्रतिक्रियावादियों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से इन सुधारों को उदारवादियों द्वारा विकृत किये जाने से बचा सकती थी।

आयरी सवाल के बारे में मार्क्स तथा एंगेल्स की नीति ने इसका एक महान उदाहरण प्रस्तुत किया है कि उत्पीड़क जातियों के सर्वहारा को राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रति क्या रवैया अपनाना चाहिए, और यह उदाहरण वर्तमान काल के लिए भी बहुत **व्यावहारिक** महत्व रखता है। इस नीति ने उस "दासोचित जल्दबाज़ी" के विरुद्ध एक चेतावनी दी है, जिसे लेकर हर देश, वर्ण तथा भाषा के कूपमंडूक किसी एक जाति के ज़मींदारों तथा बुर्जुआज़ी की हिंसा तथा उनके विशेषाधिकारों द्वारा निर्धारित राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने के विचार को "कल्पनावादी" घोषित करने की उतावली दिखाते हैं।

यदि आयरलैंड तथा इंगलैंड के सर्वहारा ने मार्क्स की नीति को स्वीकार न किया होता और आयरलैंड के अलगाव को अपना नारा न बनाया होता, तो यह उनकी ओर से बदतरीन क़िस्म का अवसरवाद, जनतंत्रवादियों तथा समाजवादियों की हैसियत से अपने कर्तव्यों की उपेक्षा और **अंग्रेज़** प्रतिक्रियावाद तथा **अंग्रेज़** बुर्जुआज़ी को रिआयत देना होता।

९. १९०३ का कार्यक्रम तथा उसका विसर्जन करनेवाले

१९०३ की जिस कांग्रेस में रूसी मार्क्सवादियों का कार्यक्रम स्वीकार किया गया था, उसका कार्य-विवरण बड़ी मुश्किल से मिलता

---

* प्रसंगवश, यह समझना कठिन नहीं है कि सामाजिक-जनवादी दृष्टिकोण से जातियों के "आत्मनिर्णय" के अधिकार का मतलब क्यों **न** तो संघ और **न** स्वायत्तता हो सकता है (हालांकि अमूर्त रूप में दोनों ही "आत्मनिर्णय" के संवर्ग में आते हैं)। संघ बनाने का अधिकार कोरी बकवास है, क्योंकि संघ दोतरफ़ा समझौता होता है। यह तो मानी हुई बात है कि मार्क्सवादी आम तौर से संघवाद के समर्थन को अपने कार्यक्रम में स्थान नहीं दे सकते। जहां तक स्वायत्तता का सवाल है, मार्क्सवादी स्वायत्तता के "अधिकार" का नहीं, बल्कि ऐसे बहुजातीय जनतांत्रिक राज्य के लिए, जिसकी भौगोलिक तथा अन्य परिस्थितियों में बहुत अंतर हो, आम, सार्वत्रिक सिद्धांत के रूप में **स्वयं** स्वायत्तता का समर्थन करते हैं। इसलिए "जातियों के स्वायत्तता के अधिकार" को मानना उतना ही बेतुका है, जितना कि "जातियों के संघ बनाने के अधिकार" को मानना।

है, इसलिए आज मजदूर आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ताओं का भारी बहुलांश कार्यक्रम की विभिन्न धाराओं के आधारभूत उद्देश्यों से अपरिचित है (इसलिए और भी कि इससे संबंधित समस्त साहित्य को क़ानूनी होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है...)। इसलिए १९०३ की कांग्रेस में विचाराधीन समस्या पर जो बहस हुई थी, उसका विश्लेषण करना आवश्यक है।

सबसे पहले तो हम यह बता दें कि "जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार" के बारे में रूसी सामाजिक-जनवादी साहित्य चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न हो, उससे यह बात स्पष्ट रूप से मालूम हो जाती है कि इस अधिकार का मतलब हमेशा ही से अलग हो जाने का अधिकार समझा गया है। सेम्कोव्स्की, लीबमैन तथा युरकेविच जैसे लोग, जो इस बात में शंका करते हैं और कहते हैं कि अनुच्छेद ९ "अस्पष्ट" है, इत्यादि, केवल अपनी घोर अनभिज्ञता या लापरवाही के कारण ही "अस्पष्टता" की बात करते हैं। १९०२ में ही प्लेखानोव* ने कार्यक्रम के मसौदे में "आत्मनिर्णय के अधिकार" का समर्थन करते हुए 'ज़ार्या' में लिखा था कि यह मांग चाहे बुर्जुआ जनवादियों के लिए अनिवार्य नहीं है, पर "सामाजिक-जनवादियों के लिए अनिवार्य" है। प्लेखानोव ने लिखा कि "यदि हम महत रूसी जाति के अपने देशवासियों के जातीय पूर्वग्रहों को ठेस पहुंचाने के भय से इस मांग को भूल जायें या उसे उठाने से कतरायें, तो 'दुनिया के मज़दूरो, एक हो!' का नारा हमारे लबों पर एक शर्मनाक झूठ बनकर रह जायेगा!"[61]

विचाराधीन प्रश्न के पक्ष में दी जानेवाली बुनियादी दलील का यह बड़ा ही सही वर्णन है: इतना सही कि आश्चर्य की बात नहीं कि हमारे कार्यक्रम के वे आलोचक, जो अपने "भाई-बंधुओं को भूल गये हैं", भीरुता के साथ इससे कतराते रहे और कतराते हैं। किसी भी कारण इसका परित्याग करना **वास्तव में महत रूसी** राष्ट्रवाद को बहुत ही "शर्मनाक" रिआयत देना है। परंतु जब यह **सभी** जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का सवाल है, तो फिर महत

* १९१६ में व्ला० इ० लेनिन ने इसी स्थान पर यह टीका लिखी थी: "हम पाठक से यह याद करने का अनुरोध करते हैं कि १९०३ में प्लेखानोव अवसरवाद के कट्टर विरोधियों में से एक थे, वह अवसरवाद और फिर अंधराष्ट्रवाद की ओर बदनाम मोड़ से कोसों दूर थे"।

रूसी को ही क्यों? इसलिए कि इसका संबंध महत रूसियों से अलग होने के साथ है। **सर्वहारागण की एकता** के हित, उनकी वर्ग एकता के हित इसका तक़ाज़ा करते हैं कि हम **जातियों के अलग हो जाने के** अधिकार को मानें – ऊपर जो शब्द उद्धृत किये गये हैं, उनमें प्लेखानोव ने बारह वर्ष पहले इसे स्वीकार किया था। यदि हमारे अवसरवादियों ने इस पर ग़ौर किया होता, तो शायद उन्होंने आत्मनिर्णय के बारे में इतनी फ़ुजूल बातें न की होतीं।

१९०३ की कांग्रेस में, जिसमें प्लेखानोव द्वारा समर्थित कार्यक्रम का यह मसौदा स्वीकार किया गया था, मुख्य काम **कार्यक्रम आयोग** में हुआ था। दुर्भाग्यवश उसकी कार्रवाई का कोई कार्य-विवरण नहीं रखा गया। इस सिलसिले में इस प्रकार का कार्य-विवरण विशेष रूप से दिलचस्प होता, क्योंकि **केवल** आयोग में ही पोलिश सामाजिक-जनवादियों के प्रतिनिधियों – वर्शाव्स्की तथा हानेत्स्की – ने अपने दृष्टिकोण के पक्ष में तर्क देने और "आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता" का विरोध करने की कोशिश की थी। यदि कोई पाठक उनकी दलीलों (जो वर्शाव्स्की के भाषण में और उनके तथा हानेत्स्की के वक्तव्य में प्रस्तुत है, देखें, कांग्रेस का कार्य-विवरण, पृ० १३४–१३६ और ३८८–३९०) की तुलना उन दलीलों के साथ करना चाहेगा, जो रोज़ा लुक्जेमबुर्ग ने हमारे द्वारा विश्लेषित पोलिश समस्या संबंधी अपने लेख में दी थीं, तो वह देखेगा कि वे दलीलें बिलकुल एक जैसी हैं।

दूसरी कांग्रेस के कार्यक्रम आयोग में, जिसमें सबसे बढ़कर प्लेखानोव ने पोलिश मार्क्सवादियों की आलोचना की थी, इन दलीलों की तरफ़ क्या रुख़ अपनाया गया था? इन दलीलों का बड़ी बेरहमी से मज़ाक़ उड़ाया गया था! रूस के मार्क्सवादियों के सामने यह सुझाव रखने का बेतुकापन कि वे जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता को अस्वीकार कर दें, इतने स्पष्ट और सजीव रूप से ज़ाहिर किया गया कि पोलिश मार्क्सवादियों ने **कांग्रेस के पूर्णाधिवेशन में अपनी दलीलों को दोहराने तक का साहस नहीं किया!!** उन्हें जब यह विश्वास हो गया कि महत रूसी और साथ ही यहूदी, जार्जियाई तथा आर्मीनियाई मार्क्सवादियों की इस सर्वोच्च सभा में उनकी दाल गलनेवाली नहीं है, तो वे कांग्रेस से उठकर चले गये।

इस ऐतिहासिक घटना का स्वभावतः हर उस आदमी के लिए

बहुत ज्यादा महत्व है, जो **अपने** कार्यक्रम में गंभीर दिलचस्पी रखता है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि कांग्रेस के कार्यक्रम आयोग में पोलिश मार्क्सवादियों की दलीलों की करारी हार हुई और उन्होंने कांग्रेस के पूर्णाधिवेशन के सामने अपने दृष्टिकोण की रक्षा करने की भी कोशिश नहीं की। यह अकारण ही नहीं था कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने १९०८ के लेख में इसके बारे में "विनम्रतावश" कुछ भी नहीं कहा: कांग्रेस के बारे में याद उनके लिए, ज़ाहिर है, बहुत अप्रिय थी! १९०३ में पोलैंड के समस्त मार्क्सवादियों की तरफ़ से वर्शाव्स्की तथा हानेत्स्की ने कार्यक्रम के अनुच्छेद ९ को "संशोधित करने" का जो हास्यास्पद रूप से अनुपयुक्त सुझाव रखा था, उसके बारे में भी वह बिलकुल ख़ामोश रहीं; इस सुझाव को दुबारा पेश करने का साहस न तो रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने किया है और न दूसरे पोलिश सामाजिक-जनवादियों ने (और वे इसका साहस कभी करेंगे भी नहीं)।

पर यद्यपि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने अपनी १९०३ की हार को छुपाते हुए इन बातों के बारे में चुप्पी साधी है, तथापि वे लोग, जो अपनी पार्टी के इतिहास में दिलचस्पी रखते हैं, इन तथ्यों की सचाई का पता लगाना और उनके महत्व पर ग़ौर करना अपना काम समझेंगे।

१९०३ की कांग्रेस से उठकर जाते समय रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के मित्रों ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया था:

> "...हम सुझाव रखते हैं कि कार्यक्रम के मसौदे का अनुच्छेद ७ (अब जो अनुच्छेद ९ है) बदलकर इस प्रकार कर दिया जाये: अनुच्छेद ७। **राज्य में सम्मिलित सभी जातियों के सांस्कृतिक विकास की पूर्ण स्वतंत्रता की गारंटी करनेवाली संस्थाएं**" (कार्य विवरण का पृ० ३९०)।

इस प्रकार पोलिश मार्क्सवादियों ने उस समय जातियों के प्रश्न के बारे में जो विचार प्रतिपादित किये, वे इतने अस्पष्ट थे कि आत्म-निर्णय **के बजाय** उन्होंने व्यवहारतः – बस एक भिन्न नाम से – कुख्यात "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" का सुझाव ही रखा!

यह बात लगभग अविश्वसनीय प्रतीत होती है, पर दुर्भाग्यवश यह सत्य है। ख़ुद कांग्रेस में – हालांकि उसमें कोस्त्रोव के अलावा, जिनको वोट देने का अधिकार नहीं था, पांच बुंदपंथी, जिनके पांच

वोट थे, और तीन काकेशियाई भी हिस्सा ले रहे थे, जिनके छः वोट थे – आत्मनिर्णयवाला अनुच्छेद **निकाल देने** के पक्ष में **एक भी वोट नहीं** पड़ा। तीन वोट इस अनुच्छेद में "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्त-ता" जोड़ देने के पक्ष में पड़े (गोल्दब्लात के इस सूत्र के पक्ष में कि "ऐसी संस्थाओं की स्थापना की जाये, जो जातियों को सांस्कृतिक विकास की पूर्ण स्वतंत्रता को प्रत्याभूत करें") और चार वोट लीबर के सूत्र ("जातियों का अपने सांस्कृतिक विकास में स्वतंत्रता का अधि-कार") के पक्ष में पड़े।

अब, जबकि एक रूसी उदारवादी पार्टी – कैडेट- पार्टी – मैदान में आ गयी है, हमें मालूम है कि **उसके** कार्यक्रम में जातियों के राज-नीतिक आत्मनिर्णय का स्थान "सांस्कृतिक आत्मनिर्णय" ने ले लिया है। इस प्रकार रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के पोलिश मित्र पो० स० पा० के राष्ट्रवाद से "**लड़ रहे थे**" और इसमें वे इतने ज्यादा सफल हुए कि उन्होंने मार्क्सवादी कार्यक्रम के स्थान पर एक **उदारवादी** कार्यक्रम अपनाने का प्रस्ताव रखा! और उसी साँस में उन्होंने हमारे कार्यक्रम पर अवसरवादी होने का आरोप लगाया; फिर इसमें आश्चर्य ही क्या कि दूसरी कांग्रेस के कार्यक्रम आयोग में इस आरोप को सुनकर लोग केवल हंसे!

दूसरी कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने, जिनमें से, जैसाकि हम देख चुके हैं, **एक भी** "जातियों के आत्मनिर्णय" के ख़िलाफ़ **नहीं** था, "आत्मनिर्णय" का क्या अर्थ समझा?

इस प्रश्न का उत्तर कार्य-विवरण के निम्नलिखित तीन उद्धरणों में मिलता है:

"**मार्तीनोव** की राय यह है कि 'आत्मनिर्णय' शब्द का बहुत व्यापक अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए; इसका अर्थ प्रादेशिक स्वशासन नहीं, बल्कि केवल अपने आपको एक अलग राजनीतिक इकाई के रूप में स्थापित करने का हर जाति का अधिकार है" (पृ० १७१)। मार्तीनोव उस कार्यक्रम आयोग के एक सदस्य थे, जिसमें रोज़ा लुक्ज़ेम-बुर्ग के मित्रों की दलीलों का खंडन किया गया और मज़ाक़ उड़ाया गया था। अपने विचारों की दृष्टि से उस समय मार्तीनोव अर्थवादी और 'ईस्क्रा' के कट्टर विरोधी थे, और यदि उन्होंने कोई ऐसा मत व्यक्त किया होता, जिससे कार्यक्रम आयोग के सदस्यों का बहुमत

राजी न होता, तो उसका अवश्य ही खंडन किया गया होता।

आयोग का काम समाप्त होने पर, जब कांग्रेस में कार्यक्रम के अनुच्छेद ८ (वर्तमान अनुच्छेद ९) पर बहस हुई, तो बुंदपंथी गोल्दब्लात ही सबसे पहले वक्ता थे।

> गोल्दब्लात ने कहा: "'आत्मनिर्णय के अधिकार' के ख़िलाफ़ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जब कोई जाति अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ रही हो, तो उसका विरोध नहीं किया जा सकता। जैसाकि साथी प्लेखानोव कहा है, अगर पोलैंड रूस के साथ क़ानूनी विवाह-सूत्र में बंधने से इन्कार करता है, तो उसे रोकना नहीं चाहिए। मैं इन सीमाओं के भीतर इस राय से सहमत हूं" (पृ० १७५-१७६)।

कांग्रेस के पूर्णाधिवेशन में प्लेखानोव ने इस विषय पर कोई भाषण नहीं दिया। कार्यक्रम आयोग में, जहां "आत्मनिर्णय के अधिकार" को अलग हो जाने का अधिकार बहुत ही सरल तथा विस्तृत ढंग से बताया गया था, प्लेखानोव ने जो कुछ कहा था, उसका हवाला गोल्दब्लात ने दिया। गोल्दब्लात के बाद बोलते हुए लीबर ने कहा:

> "बेशक अगर कोई जाति रूस की सीमाओं के भीतर नहीं रह सकती, तो पार्टी उसकी राह में कोई बाधा नहीं डालेगी" (पृ० १७६)।

पाठक देखते हैं कि पार्टी की दूसरी कांग्रेस में, जिसमें कार्यक्रम स्वीकार किया गया था, इसके बारे में कोई दो रायें नहीं थीं कि आत्मनिर्णय का अर्थ "केवल" अलग हो जाने का अधिकार है। बुंदपंथियों तक ने उस समय इस सत्य को आत्मसात कर लिया था और केवल इस शर्मनाक ज़माने में ही, जो अनवरत प्रतिक्रांति तथा हर प्रकार के "सिद्धांत-त्याग" का ज़माना है, हमें ऐसे लोग मिलते हैं, जो अपनी अनभिज्ञतावश यह ज़ाहिर करने की हिम्मत करते हैं कि कार्यक्रम "अस्पष्ट" है। परंतु इन बेचारे "अधूरे सामाजिक-जनवादियों" पर समय नष्ट करने से पहले, आइये, इस पर विचार करें कि कार्यक्रम की ओर पोलैंडवालों का क्या रवैया था।

वे दूसरी कांग्रेस (१९०३) में यह घोषणा करते हुए आये कि एकता आवश्यक तथा अपरिहार्य है। परंतु कार्यक्रम आयोग में अपनी "हार" के बाद वे कांग्रेस से उठकर चले गये, और उन्होंने जो **आख़िरी बात** कही, वह कांग्रेस के कार्य-विवरण में छपा उनका वह लिखित वक्तव्य था, जिसमें आत्मनिर्णय के स्थान पर सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता रखने का उपरोक्त सुझाव पेश किया गया था।

पोलिश मार्क्सवादी १९०६ में पार्टी में शामिल हुए, और न तो पार्टी में शामिल होते वक़्त और **न** उसके बाद ही **एक बार भी** (न १९०७ की कांग्रेस में, न १९०७ और १९०८ के सम्मेलनों में, न १९१० के पूर्णाधिवेशन में) ऐसा हुआ कि उन्होंने रूसी कार्यक्रम के अनुच्छेद ९ में संशोधन करने का कोई सुझाव **रखा हो**!!

यह एक तथ्य है।

और समस्त वक्तव्यों और आश्वासनों के बावजूद इस तथ्य से निश्चित रूप से यही सिद्ध होता है कि रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के मित्र यह मानते थे कि दूसरी कांग्रेस के कार्यक्रम आयोग की बहस और इस कांग्रेस के फ़ैसले से इस सवाल को तय कर दिया गया है; कि १९०३ में कांग्रेस से उठकर चले जाने के बाद **पार्टी** माध्यमों से कार्यक्रम के अनुच्छेद ९ में संशोधन करने का सवाल एक बार भी उठाने की कोशिश न करके और १९०६ में फिर पार्टी में शामिल होकर उन्होंने चुपचाप अपनी ग़लती को मान लिया और उसे दुरुस्त कर लिया।

रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग का लेख उनके नाम से १९०८ में प्रकाशित हुआ – निस्संदेह, यह बात कभी किसी के दिमाग़ में भी नहीं आयी कि पार्टी के लेखकों को कार्यक्रम की आलोचना करने के अधिकार से वंचित किया जाये – और इस लेख के **लिखे जाने के समय से** पोलिश मार्क्सवादियों की **एक भी** अधिकृत संस्था ने अनुच्छेद ९ को बदलने का सवाल नहीं उठाया है।

इसलिए त्रोत्स्की 'बोर्बा'[62] के संपादकों की तरफ़ से उस पत्रिका के दूसरे अंक (मार्च, १९१४) में यह लिखकर रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के कतिपय प्रशंसकों की बड़ी कुसेवा करते हैं:

> "...पोलिश मार्क्सवादी समझते हैं कि 'जातियों के आत्मनिर्णय का अधिकार' राजनीतिक सार से सर्वथा वंचित है और उसे कार्यक्रम में से निकाल देना चाहिए" (पृ० २५)।

अनुग्राही त्रोत्स्की शत्रु से भी ज़्यादा ख़तरनाक हैं! "पोलिश मार्क्सवादियों" को आम तौर पर रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग द्वारा लिखे गये हर लेख का समर्थन करनेवालों की श्रेणी में रखने के लिए त्रोत्स्की "निजी बातचीत" (अर्थात कोरी गपशप, जिस पर त्रोत्स्की हमेशा गुज़र करते हैं) के अलावा और कोई भी **प्रमाण नहीं दे सके।** त्रोत्स्की ने "पोलिश मार्क्सवादियों" को इस रूप में पेश किया कि वे ऐसे लोग हैं, जिनका कोई ईमान तथा अंतःकरण नहीं है और जो स्वयं अपने विश्वासों तथा पार्टी के कार्यक्रम का भी सम्मान नहीं कर सकते। कितने अनुग्राही हैं त्रोत्स्की!

जब १९०३ में पोलिश मार्क्सवादियों के प्रतिनिधि आत्मनिर्णय के अधिकार **के कारण** दूसरी कांग्रेस से उठकर चले गये थे, **उस समय** त्रोत्स्की यह कह सकते थे कि वे समझते थे कि यह अधिकार निस्सार है और उसे कार्यक्रम में से निकाल देना चाहिए।

परंतु इसके बाद पोलिश मार्क्सवादी उस पार्टी में **शामिल हो गये**, जिसका कार्यक्रम इस प्रकार का था और उन्होंने एक बार भी उसमें संशोधन करने का प्रस्ताव नहीं रखा है।*

त्रोत्स्की ने इन तथ्यों को अपनी पत्रिका के पाठकों से छुपाया क्यों? केवल इसलिए कि विसर्जनवाद के पोलिश तथा रूसी विरोधियों के बीच मतभेद भड़काने पर दांव लगाना और कार्यक्रम के सवाल पर रूसी मज़दूरों को धोखा देना उनके लिए लाभदायक है।

आज तक मार्क्सवाद के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर त्रोत्स्की का कोई दृढ़ मत नहीं रहा है। वह हमेशा किसी न किसी प्रकार के मतभेद की "दरार में रेंगकर पहुंच जाते हैं" और एक पक्ष को छोड़कर

---

* हमें सूचना दी गयी है कि १९१३ में रूसी मार्क्सवादियों के ग्रीष्मकालीन सम्मेलन में पोलिश मार्क्सवादियों को **केवल** परामर्शात्मक अधिकार था और उन्होंने आत्मनिर्णय के (अलग हो जाने के) अधिकार पर मत दिया ही नहीं था, इस प्रकार उन्होंने इस अधिकार के प्रति सामान्य रूप से अपना विरोध प्रकट किया था। ज़ाहिर है कि उन्हें ऐसा करने का और अब तक की तरह ही पोलैंड में उसके अलग होने के खिलाफ़ आंदोलन चलाने का पूरा अधिकार था। लेकिन त्रोत्स्की जो बात कह रहे हैं, वह यह नहीं है, क्योंकि पोलिश मार्क्सवादियों ने "कार्यक्रम में से" अनुच्छेद ९ "निकाल देने" की मांग नहीं की थी।

दूसरे से जा मिलते हैं। इस समय उनकी बुंदपंथियों तथा विसर्जनवादियों के साथ संगत है। और जहां तक पार्टी का संबंध है, ये सज्जन कोई तकल्लुफ़ नहीं बरतते।

बुंदपंथी लीबमैन की बात भी सुनिये।

> यह सज्जन लिखते हैं: "अब से पंद्रह बरस पहले जब रूसी सामाजिक-जनवादियों ने अपने कार्यक्रम में हर जाति के 'आत्म-निर्णय' के अधिकार के बारे में एक अनुच्छेद रखा था, तो हर आदमी (!!) के मन में यह सवाल उठा था: इस फ़ैशनेबुल (!!) शब्द का वास्तव में क्या अर्थ है? पर कोई जवाब न मिला (!!)। यह शब्द कुहरे में ढका रह गया (!!)। वास्तव में उस समय इस कुहरे को दूर करना कठिन था। उस समय कहा गया था कि अभी इस मुद्दे की ठोस रूप से व्याख्या करने का समय नहीं आया है। इसलिए इसे अभी इसी प्रकार कुहरे में (!!) ढका रहने दो और ज़िंदगी ख़ुद बता देगी कि इसमें क्या सार भरा जाये।"

पार्टी कार्यक्रम का इस तरह "बेपतलून लड़के"[63] के ढंग से मज़ाक़ उड़ाना कितना शानदार है, है न?

और वह यह मज़ाक़ क्यों उड़ा रहे हैं?

केवल इसलिए कि वह बिलकुल जाहिल हैं, जिन्होंने कभी कुछ नहीं सीखा है और पार्टी के इतिहास के बारे में कुछ पढ़ा तक नहीं है, बल्कि जो संयोगवश विसर्जनवादियों की सोहबत में पड़ गये, जहां पार्टी और पार्टीबद्धता के मामलों में बिलकुल "नंग-धड़ंग" घूमना "उचित" समझा जाता है।

पोम्यालोव्स्की के उपन्यास में बूर्सा का विद्यार्थी[64] इस बात की डींग मारता है कि उसने "बंद-गोभी के अचार के पीपे में थूक दिया"। बुंदपंथी सज्जन इससे भी दो क़दम आगे हैं। वे लीबमैन जैसे लोगों को सरे आम ख़ुद अपने पीपे में थूकने की छूट दे देते हैं। लीबमैनों को इस बात की क्या परवाह कि एक अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में एक फ़ैसला किया गया था और – स्वयं उनकी पार्टी की कांग्रेस में स्वयं उनके बुंद के दो प्रतिनिधियों ने यह साबित किया कि वे "आत्मनिर्णय" का अर्थ ग्रहण करने में बिलकुल समर्थ हैं (वे 'ईस्क्रा' के कितने "कठोर" आलोचक तथा पक्के दुश्मन थे!) और उससे सहमत भी हैं? और

क्या उस हालत में पार्टी का विसर्जन कर देना अधिक आसान नहीं होगा, यदि "पार्टी के लेखक" (कृपया हंसिये नहीं!) पार्टी के इतिहास तथा कार्यक्रम के साथ बूर्सा के विद्यार्थियों के ढंग से व्यवहार करें?

'दज़्विन' के श्री युरकेविच एक अन्य "बेपतलून लड़के" हैं। श्री युरकेविच के पास शायद दूसरी कांग्रेस का कार्य-विवरण था, क्योंकि वह प्लेखानोव के शब्दों का हवाला उस रूप में देते हैं, जिस रूप में गोल्दब्लात ने उन्हें दोहराया था, और यह ज़ाहिर करते हैं कि उन्हें यह मालूम है कि आत्मनिर्णय का अर्थ केवल अलग होने का अधिकार ही हो सकता है। परंतु इसके बावजूद वह रूसी मार्क्सवादियों पर यह आरोप लगाकर कि वे रूस की "राजकीय अखंडता" के पक्ष में हैं, उक्रइनी निम्न-बुर्जुआज़ी के बीच उन्हें बदनाम करने से बाज़ नहीं आते (१९१३, अंक ७–८, पृ० ८३, आदि)। बेशक उक्रइनी जनवादियों को रूसी जनवादियों से दूर करने के लिए युरकेविच जैसे लोग इससे अच्छा तरीक़ा निकाल नहीं सकते थे। और इस प्रकार की दूरी पैदा करना 'दज़्विन' के उन लेखकों के समूह की पूरी नीति से मेल खाता है, जो उक्रइनी मज़दूरों के एक **अलग** जातीय संगठन में **पृथक्करण** के पैरोकार हैं!*

बेशक राष्ट्रवादी कूपमंडूकों के ऐसे दल के लिए, जो सर्वहारा वर्ग की पांतों में फूट डाल रहा हो – और 'दज़्विन' की वास्तविक भूमिका यही है – यह सर्वथा उचित ही है कि वे जातियों के प्रश्न के बारे में इतना उलझाव फैलायें। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि श्री युरकेविच तथा लीबमैन जैसे लोग, जो अपने को "पार्टी के नज़दीकी आदमी" कहे जाने पर "बेहद" बुरा मान जाते हैं, इसके बारे में एक शब्द, एक भी शब्द नहीं कहते कि आखिर कार्यक्रम में अलग हो जाने के अधिकार की समस्या को **वे** कैसे हल करना चाहते हैं?

और यह हैं तीसरे और सबसे मुख्य "बेपतलून लड़के" श्री सेम्कोव्स्की, जो महत रूसी पाठकों के सम्मुख एक विसर्जनवादी अख़बार के कॉलमों में कार्यक्रम के अनुच्छेद ९ के खिलाफ़ "ज़हर उगलते हैं" और साथ ही यह भी घोषणा करते हैं कि वह इस धारा को कार्यक्रम में से निकाल देने के "सुझाव का कुछ कारणों से अनुमोदन नहीं करते"!!

यह एक अविश्वसनीय, पर सच्ची बात है।

अगस्त, १९१२ में विसर्जनवादियों के सम्मेलन में अधिकृत तौर पर जातियों का प्रश्न उठाया गया। डेढ़ साल से श्री सेम्कोव्स्की के लिखे हुए एक लेख को छोड़कर अनुच्छेद ९ के बारे में एक भी लेख नहीं छपा है। और इस लेख में भी लेखक महोदय कार्यक्रम का तो **खंडन करते हैं**, परंतु "**कुछ** कारणों से" (क्या यह कोई गुप्तता का रोग है?) उसमें संशोधन करने के सुझाव का "अनुमोदन नहीं करते"!! हम शर्त बदकर कह सकते हैं कि दुनिया में कहीं भी अवसरवाद की, और जो चीज़ अवसरवाद से भी बदतर है, पार्टी का परित्याग करने की, उसका विसर्जन करने की आकांक्षा की ऐसी मिसालें ढूंढ़े नहीं मिलेंगी।

यह बताने के लिए कि सेम्कोव्स्की की दलीलें किस ढंग की हैं, एक उदाहरण ही काफ़ी होगा:

> वह लिखते हैं: "यदि पोलिश सर्वहारा समस्त रूस के सर्वहारा के कंधे से कंधा मिलाकर एक ही राज्य के ढांचे के भीतर रहकर लड़ना चाहे, जबकि इसके विपरीत पोलिश समाज के प्रतिक्रियावादी वर्ग पोलैंड को रूस से अलग कर लेना चाहें और जनमत-संग्रह द्वारा अलग हो जाने के पक्ष में बहुमत प्राप्त कर लें, तो ऐसी दशा में हम क्या करें? क्या हम, रूसी सामाजिक-जनवादी, केंद्रीय संसद में अपने पोलिश साथियों के साथ अलग हो जाने **के खिलाफ़** मत दें, या 'आत्मनिर्णय के अधिकार' का उल्लंघन न करने के लिए अलग हो जाने **के पक्ष में** मत दें?" ('नोवाया राबोचाया गाज़ेता', अंक ७१)।

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि श्री सेम्कोव्स्की इस बात को समझते तक नहीं कि **बहस किस बात के बारे में हो रही है!** यह बात उनके दिमाग़ में भी नहीं आयी कि अलग हो जाने के अधिकार के लिए पहले यह शर्त है कि यह सवाल केंद्रीय संसद द्वारा **नहीं**, बल्कि **अलग होनेवाले** प्रदेश की संसद (विधान सभा, जनमत-संग्रह, आदि) द्वारा तय किया जाये।

---

* देखें विशेषकर श्री लेवीन्स्की की पुस्तक 'गैलीशिया में उक्रइनी मज़दूर आंदोलन के विकास' की श्री युरकेविच द्वारा लिखी गयी भूमिका, कीयेव, १९१४। – **सं०**

इस प्रश्न पर बचकाना दुविधा – "हम क्या करें", अगर जनतंत्र के अधीन बहुमत प्रतिक्रियावाद के पक्ष में हो? – वास्तविक, जीवंत नीति के प्रश्न पर परदा डालने का काम करती है, जबकि पुरिश्केविच और कोकोश्किन **दोनों तरह के** लोग अलग हो जाने के विचार तक को अपराधपूर्ण समझते हैं! शायद **समस्त** रूस के सर्वहारागण को आज पुरिश्केविचों तथा कोकोश्किनों के विरुद्ध नहीं, बल्कि उनको अलग छोड़कर पोलैंड के प्रतिक्रियावादी वर्गों के ख़िलाफ़ लड़ना चाहिए!!

यह है वह बेसिरपैर की बकवास, जो विसर्जनवादियों के मुखपत्र में प्रकाशित हुई है, जिसके एक सैद्धांतिक नेता श्री ले० मार्तोव हैं, वही ल० मार्तोव, जिन्होंने १९०३ में कार्यक्रम का मसौदा तैयार किया था और उसे स्वीकार करने के पक्ष में भाषण दिया था और जिन्होंने उसके बाद भी अलग हो जाने के अधिकार के पक्ष में लिखा था। ज़ाहिर है कि ले० मार्तोव अब इस नियम के अनुसार तर्क कर रहे हैं:

> वहां शायद किसी चतुर आदमी की ज़रूरत न हो?
> बेहतर है उधर रेआद ही को भेज दो,
> फिर मैं देखूंगा क्या होता है।[65]

वह रेआद-सेम्कोव्स्की को भेज देते हैं और इस बात का मौक़ा देते हैं कि एक दैनिक पत्र में हमारे कार्यक्रम से अपरिचित नये पाठकों के सामने इस कार्यक्रम को तोड़-मरोड़कर पेश किया जाये और उसमें अंतहीन उलझाव पैदा कर दिये जायें।

हां, विसर्जनवाद बहुत आगे बढ़ चुका है – बहुत-से प्रमुख भूतपूर्व सामाजिक-जनवादियों में पार्टीबद्धता का नाम-निशान तक बाक़ी नहीं रह गया है।

बेशक रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग को लीबमैनों, युरकेविचों तथा सेम्कोव्स्कियों की कोटि में नहीं रखा जा सकता, परंतु यह बात कि ऐसे ही लोग उनकी ग़लती को ले उड़े हैं, उस अवसरवाद को विशेष स्पष्टता के साथ प्रकट कर देती है, जिसका वह शिकार हो गयी हैं।

१०. निष्कर्ष

अब देखें कि इन सब बातों का निचोड़ क्या निकलता है।

आम तौर पर मार्क्सवाद के सिद्धांत के दृष्टिकोण से आत्मनिर्णय के अधिकार के प्रश्न में कोई कठिनाई नहीं है। १८९६ के लंदन प्रस्ताव से, या इस बात से कि आत्मनिर्णय का अर्थ केवल अलग हो जाने का अधिकार है, या इस बात से कि स्वतंत्र जातीय राज्य बनाना सभी बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांतियों की प्रवृत्ति है, किसी को भी गंभीर मतभेद नहीं हो सकता।

कुछ हद तक कठिनाई केवल इस कारण पैदा होती है कि रूस में उत्पीड़ित तथा उत्पीड़क दोनों ही जातियों के सर्वहारा कंधे से कंधा मिलाकर लड़ रहे हैं और उन्हें अनिवार्यतः लड़ना चाहिए। काम यह है कि समाजवाद के लिए सर्वहारा के वर्ग संघर्ष की एकता को बनाये रखा जाये, और समस्त बुर्जुआ तथा यमदूतसभाई राष्ट्रवादी प्रभावों का विरोध किया जाये। जहां तक उत्पीड़ित जातियों की बात है, सर्वहारा का एक स्वतंत्र पार्टी के रूप में अलग संगठन होने के फलस्वरूप कभी-कभी स्थानीय राष्ट्रवाद के विरुद्ध इतना घोर संघर्ष होता है कि दृष्टि विकृत हो जाती है और लोग उत्पीड़क जाति के राष्ट्रवाद को भूल जाते हैं।

परंतु ऐसी दृष्टि-विकृति बहुत समय तक नहीं रह सकती। विभिन्न जातियों के सर्वहारागण के संयुक्त संघर्ष के अनुभव ने इस बात को अत्यंत स्पष्ट रूप में प्रदर्शित कर दिया है कि हमें राजनीतिक प्रश्नों का निरूपण "क्रैकोई" दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि अखिल रूसी दृष्टिकोण से करना चाहिए। और अखिल रूसी राजनीति में पुरिश्केविचों और कोकोश्किनों का बोलबाला है। उनके विचार छाये हुए हैं, "पार्थक्य" के लिए, अलग होने की **बात सोचने** के लिए ग़ैर-रूसी जातियों के उत्पीड़न के विचार का दूमा में, स्कूलों में, गिरजाघरों में, सिपाहियों की बारकों में और सैकड़ों-हज़ारों अख़बारों में अनुसरण और प्रचार किया जाता है। महत रूसी राष्ट्रवाद का यही विष अखिल रूसी राजनीतिक वातावरण को दूषित कर रहा है। यही है एक ऐसी जाति की बदनसीबी, जो दूसरी जातियों को अपने अधीन करके पूरे रूस में प्रतिक्रियावादी शक्तियों के हाथ मज़बूत कर रही है। १८४९ तथा १८६३ की स्मृतियां

एक जीती-जागती राजनीतिक परंपरा बन गयी हैं, जो, अगर प्रचंड तूफ़ान सारे देश को अपनी लपेट में न ले ले, तो कई दशाब्दियों तक हर जनतांत्रिक और **विशेष रूप से** हर सामाजिक-जनवादी आंदोलन की राह में बाधा डालने का ख़तरा उत्पन्न कर देगी।

इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उत्पीड़ित जातियों के कुछेक मार्क्सवादियों (जिनकी "बदनसीबी" कभी-कभी यह होती है कि जनसाधारण "अपनी" ही जातीय मुक्ति के विचार से अंधे हो जाते हैं) का दृष्टिकोण कभी-कभी कितना ही स्वाभाविक क्यों न प्रतीत होता हो, पर **वास्तव में** रूस में वर्ग शक्तियों का वास्तविक शक्ति-संतुलन ऐसा है, जिसके कारण आत्मनिर्णय के अधिकार के समर्थन से इन्कार करने का अर्थ बदतरीन क़िस्म का अवसरवाद, सर्वहारा को कोकोश्किन जैसे लोगों के विचारों से दूषित करना होता है। और सारतः ये विचार पुरिश्केविच जैसे लोगों के विचार तथा उनकी नीति हैं।

इसलिए अगर रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के दृष्टिकोण को शुरू में विशिष्टतः पोलिश, "क्रैकोई" विचारों की संकीर्णता* कहकर माफ़ किया जा सकता था, तो इस समय, जबकि राष्ट्रवाद और सबसे बढ़कर देश की सरकार का महत रूसी राष्ट्रवाद, हर जगह शक्तिशाली हुआ है, जब नीति का निर्धारण **इसी महत रूसी राष्ट्रवाद** द्वारा किया जा रहा है, वह अक्षम्य है। वास्तव में **सभी** जातियों के अवसरवादी, जो "तूफ़ानों" और "छलांगों" के विचार से घबराते हैं, जिनका यह विश्वास है कि बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति पूरी हो चुकी है, और जो कोकोश्किनों के उदारतावाद का अनुसरण करते हैं, झपटकर इस दृष्टिकोण को अपना लेते हैं।

---

* यह समझना कठिन नहीं है कि यदि **समस्त रूस के** मार्क्सवादी, और सबसे पहले और सबसे बढ़कर महत रूसी मार्क्सवादी जातियों के अलग हो जाने के **अधिकार को स्वीकार करते हैं**, तो इसका मतलब किसी भी प्रकार यह नहीं होता कि किसी **उत्पीड़ित** जाति विशेष के मार्क्सवादियों को अलग हो जाने के ख़िलाफ़ **आंदोलन** चलाने का अधिकार नहीं रह जाता, बिलकुल वैसे ही कि जैसे तलाक़ के अधिकार को स्वीकार करने का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि किसी ख़ास मामले में तलाक़ के ख़िलाफ़ आंदोलन न चलाया जाये। इसलिए हम समझते हैं कि ऐसे पोलिश मार्क्सवादियों की संख्या अनिवार्य रूप से बढ़ती जायेगी, जो उस "अंतर्विरोध" पर हंसेंगे, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है और जिसे सेम्कोव्स्की तथा त्रोत्स्की इस समय "खड़ा कर रहे हैं"।

किसी भी अन्य राष्ट्रवाद की तरह महत रूसी राष्ट्रवाद भी इस पर निर्भर करते हुए कि काल विशेष में उस बुर्जुआ देश में कौन से वर्ग अभिभावी हैं, कई मंज़िलों से होकर गुज़रेगा। १९०५ तक हम लगभग केवल राष्ट्रवादी-प्रतिक्रियावादियों से ही परिचित थे। क्रांति के बाद हमारे देश में **राष्ट्रवादी उदारवादी** पैदा हो गये।

हमारे देश में अक्तूबरवादियों और कैडेटों (कोकोश्किन) दोनों ही ने, अर्थात पूरे वर्तमान बुर्जुआज़ी ने, वस्तुतः यही रवैया अपना रखा है।

और आगे चलकर **अनिवार्य रूप से** महत रूसी राष्ट्रवादी जनवादी पैदा होंगे। श्री पेशेख़ोनोव, जो "जन-समाजवादी" पार्टी[66] के संस्थापकों में से हैं, किसानों के राष्ट्रवादी पूर्वग्रहों के संबंध में सतर्कता बरतने का अनुरोध करके ('रूस्स्कोये बोगात्सत्वो'[67] के अगस्त, १९०६ के अंक में) इस दृष्टिकोण को व्यक्त भी कर चुके हैं। दूसरे लोग हम बोल्शेविकों को चाहे कितना भी बदनाम करें और यह कहें कि हम किसान को "आदर्श मानते" हैं, हमने किसान की समझदारी और किसान के पूर्वग्रहों में, जनतंत्र के लिए किसान की चेष्टाओं तथा पुरिश्केविच के प्रति उसके विरोध और पादरियों तथा ज़मींदारों के साथ सुलह करने की उसकी इच्छा में सदा स्पष्ट अंतर किया है और सदा करते रहेंगे।

इस समय भी, और शायद आनेवाले ख़ासे लंबे समय तक के लिए, सर्वहारा जनतंत्र को महत रूसी किसानों के राष्ट्रवाद को ध्यान में रखना पड़ेगा (उसके साथ रिआयतें करने के अर्थ में नहीं, बल्कि उसके ख़िलाफ़ लड़ने के अर्थ में)।* उत्पीड़ित जातियों में राष्ट्रवाद की भावना जागृत होने से, जो १९०५ के बाद बहुत ही सुस्पष्ट हो

---

* इस बात का पता लगाना बहुत दिलचस्प होगा कि, उदाहरण के लिए, पोलिश राष्ट्रवाद अभिजातवर्गीय राष्ट्रवाद से बुर्जुआ राष्ट्रवाद में और फिर किसान राष्ट्रवाद में रूपांतरण की प्रक्रिया में किस तरह परिवर्तित हो रहा है। लुड्विग बेर्नहार्ड ने, जिनका दृष्टिकोण वही है, जो कोकोश्किन के किसी जर्मन अवतार का हो सकता है, अपनी पुस्तक *Das polnische Gemeinwesen im preussischen Staat* ('प्रशाई राज्य में पोलिश समुदाय'; इसका रूसी में अनुवाद हो चुका है) में एक अत्यंत लाक्षणिक घटना का वर्णन किया है: राष्ट्रीयता के लिए, धर्म के लिए, "पोलिश" भूमि के लिए संघर्ष में **पोलिश** किसानों की विभिन्न सहकारी संस्थाओं तथा अन्य संगठनों के एक घनिष्ठ संश्रय के रूप में जर्मनी में पोलों द्वारा एक प्रकार के "किसान गणतंत्र" की स्थापना। जर्मन उत्पीड़न ने पहले अभिजात वर्ग की, फिर बुर्जुआज़ी की और

गयी थी (उदाहरण के लिए, पहली दूमा में "संघवादी-स्वायत्तवादी" दल की, उक्रइनी आंदोलन या मुस्लिम आंदोलन के विकास की तथा ऐसी ही अन्य बातों की याद कीजिये), शहरों तथा देहातों में रूसी निम्न-बुर्जुआजी के बीच राष्ट्रवाद की भावना अनिवार्य रूप से और गहरी होगी। रूस का जनतंत्रीकरण जितनी मंद गति से होगा, जातीय उत्पीड़न और विभिन्न जातियों के बुर्जुआजी के बीच झगड़े उतना ही गहरा, पाशविक तथा कटु रूप धारण करेंगे। इसके साथ ही रूस के पुरिश्केविचों का विशेष रूप से प्रतिक्रियावादी स्वरूप विभिन्न उत्पीड़ित जातियों के बीच, जो कभी-कभी निकटवर्ती राज्यों में कहीं अधिक स्वतंत्रता का उपभोग करती हैं, "पार्थक्यवादी" प्रवृत्तियों को जन्म देगा (तथा मजबूत करेगा)।

इस परिस्थिति के कारण रूस के सर्वहारा के सामने दोहरा या, बल्कि कहना चाहिए, दोतरफ़ा कार्यभार है: हर राष्ट्रवाद के और विशेष रूप से महत रूसी राष्ट्रवाद के खिलाफ़ लड़ना; सभी जातियों के अधिकारों की पूर्ण समानता को केवल सामान्यरूपेण ही नहीं, बल्कि राज्य-निर्माण के संबंध में भी उनके अधिकारों की समानता को, अर्थात जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को, अलग होने के अधिकार को स्वीकार करना। और इसके साथ ही उसका यह भी कार्यभार है कि सभी जातियों के बीच समस्त और हर प्रकार के राष्ट्रवाद के विरुद्ध सफलतापूर्वक संघर्ष के हितों में वह सर्वहारा संघर्ष तथा सर्वहारा संगठनों की एकता को बनाये रखे, जातीय अलगाव की बुर्जुआ चेष्टाओं के बावजूद इन संगठनों को एक सुगठित अंतर्राष्ट्रीय संघ में एकताबद्ध करे।

सभी जातियों के अधिकारों में पूर्ण समानता; जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार; सभी जातियों के मज़दूरों की एकता – यही वह जातीय कार्यक्रम है, जिसकी शिक्षा मार्क्सवाद, सारी दुनिया का अनुभव और रूस का अनुभव मज़दूरों को देता है।

अंत में किसान जनसाधारण की राष्ट्रवादी भावनाओं को जागृत करके (विशेष रूप से १८७३ में जर्मनों द्वारा स्कूलों में पोलिश भाषा के विरुद्ध मुहिम शुरू किये जाने के बाद से) पोलों को एकताबद्ध करके सबसे अलग कर दिया है। रूस में भी परिस्थितियां इसी दिशा में जा रही हैं और यह बात केवल पोलैंड के सिलसिले में ही नहीं हो रही है।

यह लेख छपाई के लिए टाइप में बैठाया जा चुका था कि मुझे 'नाशा राबोचाया गाज़ेता' का तीसरा अंक मिला, जिसमें श्री व्ला० कोसोव्स्की ने सभी जातियों के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता के बारे में लिखा है:

> "जैसाकि बहस से स्पष्ट है, इस बात का, जिसे पार्टी की पहली कांग्रेस (१८९८) के प्रस्ताव से यांत्रिक रूप से ले लिया गया था, जिसने स्वयं इस बात को अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेसों के निर्णयों से लिया था, १९०३ की कांग्रेस में भी वही अर्थ लगाया गया, जो समाजवादी इंटरनेशनल ने लगाया था, यानी राजनीतिक आत्मनिर्णय, अर्थात राजनीतिक स्वाधीनता की दिशा में जातियों का आत्मनिर्णय। इस प्रकार जातीय आत्मनिर्णयवाले सूत्र का, जिसमें अपने भूक्षेत्र को अलग कर लेने का अधिकार सन्निहित है, इस सवाल पर कोई असर नहीं पड़ता कि किसी राज्य विशेष **के अंदर** उन जातियों के लिए, जो इस राज्य से अलग नहीं हो सकतीं या अलग होने की कोई इच्छा नहीं रखतीं, जातीय संबंधों का नियमन किस ढंग से किया जाये।"

इससे यह स्पष्ट है कि श्री व्ला० कोसोव्स्की ने १९०३ की दूसरी कांग्रेस का कार्य-विवरण देखा है और वह आत्मनिर्णय शब्द का असली (और एकमात्र) अर्थ पूरी तरह समझते हैं। इसकी तुलना इस बात से कीजिये कि बुंद के अखबार *Zeit* के संपादकों ने कार्यक्रम का मज़ाक़ उड़ाने और यह घोषणा करने के लिए कि वह अस्पष्ट है श्री लीबमैन को छूट दे दी!! इन बुंदपंथियों की "पार्टी" नैतिकता भी अजीब है... "ईश्वर ही जानता है" कि कोसोव्स्की यह क्यों कहते हैं कि कांग्रेस ने आत्मनिर्णय का सिद्धांत **यांत्रिक रूप से** ले लिया। कुछ लोग "एतराज़ करना चाहते हैं", पर वे यह नहीं जानते कि एतराज़ कैसे, क्यों और किसलिए करें।

फ़रवरी – मई, १९१४ में लिखित। 'प्रोस्वेश्चेनिये' पत्रिका में अप्रैल – जून, १९१४ के अंक ४, ५ तथा ६ में प्रकाशित।
हस्ताक्षर: **व्ला० इल्यीन**

व्ला० इ० लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, पांचवां रूसी संस्करण, खंड २५, पृ० २५५–३२०

महत रूसियों का जातीय गौरव

आजकल राष्ट्रभावना के बारे में, पितृभूमि के बारे में कितनी चर्चा, कितना तर्क-वितर्क, कितनी चीख़-पुकार मची हुई है! इंगलैंड के उदारवादी और आमूलवादी मंत्री, फ़्रांस के ढेरों "प्रगतिशील" पत्रकार (जो अपने प्रतिक्रियावादी सहयोगियों की पूरी संगति में सिद्ध हुए हैं), रूस के ढेरों सरकारी, कैडेटी और प्रगतिशील क़लम-घिस्सू (जिनमें कतिपय नरोदवादी और "मार्क्सवादी" भी शामिल हैं) – सभी तरह-तरह के सुरों में "मातृभूमि" की आजादी और स्वतंत्रता के, राष्ट्रीय स्वतंत्रता के सिद्धांत की महिमा के राग अलाप रहे हैं। और यहां कोई नहीं कह सकता कि जल्लाद निकोलाई रोमानोव के अथवा नीग्रो जनों या हिंदुस्तानियों के निर्दय उत्पीड़नकर्ताओं के ज़रख़रीद भाट का कहां अंत होता है और कहां उस सामान्य कूपमंडूक का आरंभ होता है, जो मूर्खता अथवा ढुलमुलयक़ीनी के कारण "धारा के साथ" बहता जाता है। और यह जानना महत्वपूर्ण भी नहीं। हमें एक ऐसी व्यापक और गहरी विचारधारात्मक प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है, जिसकी जड़ें प्रभुत्वशाली राष्ट्रों के भूस्वामियों और पूंजीपतियों के हितों के साथ गुंथी हुई हैं। इन वर्गों के लिए लाभकारी विचारों के प्रचार पर प्रति वर्ष लाखों-करोड़ों का ख़र्च किया जाता है: यह एक ख़ासी बड़ी पनचक्की है, जिसका पानी सभी स्रोतों से आता है – आस्था-वशात अंधराष्ट्रवादी मेन्शिकोव से लेकर अवसरवाद या ढुलमुलयक़ीनी के कारण अंधराष्ट्रवादी बने प्लेख़ानोव और मास्लोव, रुबानोविच और स्मिर्नोव, क्रोपोत्किन और बूर्त्सेव जैसों तक।

आइये, हम, महत रूसी सामाजिक-जनवादी भी इस विचार-धारात्मक प्रवृत्ति के प्रति अपना रुख़ स्पष्ट करने का प्रयत्न करें। हमारे लिए, यूरोप के सुदूर पूर्व और एशिया के एक बड़े भाग के एक प्रभुत्वशाली राष्ट्र के प्रतिनिधियों के लिए जातियों के प्रश्न के महत्व को भुला देना अनुचित होगा – विशेष रूप से एक ऐसे देश में, जिसे ठीक ही "जातियों का जेलख़ाना" कहा जाता है; और ख़ासकर ऐसे समय में, जब यूरोप के सुदूर पूर्व और एशिया में पूंजीवाद कई "नयी-नयी", छोटी-बड़ी जातियों में जीवन और चेतना का संचार कर रहा है; ऐसी घड़ी में, जब ज़ारशाही राजतंत्र ने अनेक जातीय समस्याओं को संयुक्त अभिजात परिषद[68] और गुच्कोवों, क्रेस्तोवनिकोवों, दोल्गोरूकोवों, कुतलरों और रोदिचेवों के हित में "हल" करने के लिए लाखों महत रूसियों और ग़ैर-रूसियों को लामबंद कर दिया है।

क्या जातीय गौरव की भावना हमारे लिए, महत रूसी वर्ग-चेतन सर्वहाराओं के लिए बिरानी है? नहीं, निश्चय ही नहीं! हम अपनी भाषा और अपनी मातृभूमि से प्यार करते हैं और **उसकी** मेहनतकश जनता को (अर्थात **उसकी** आबादी के ९० प्रतिशत को) ऊपर उठाकर जनतांत्रिक और समाजवादी चेतना के स्तर तक पहुंचाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। ज़ार के जल्लादों, कुलीनों और पूंजीपतियों के हाथों हमारी सुंदर मातृभूमि पर ढाये जानेवाले अत्याचार, उत्पीड़न और अपमानों को देखना और अनुभव करना हमारे लिए अत्यधिक कष्टदायी है। हमें गर्व है इस पर कि हमारे, महत रूसियों के बीच से इन ज़्यादतियों का प्रतिरोध किया गया, इस पर कि **उन्होंने** अपने बीच से रदीश्चेव, दिसंबरवादियों[69] और आठवें दशक के राज़्नोचीन्त्सी-क्रांतिकारियों[70] को पैदा किया, इस पर कि १९०५ में महत रूसी मज़दूर वर्ग ने जनता की एक शक्तिशाली क्रांतिकारी पार्टी की स्थापना की, इस पर कि इसी काल में महत रूसी किसान समुदाय जनतंत्र की तरफ़ मुड़ने लगा और पादरियों तथा भूस्वामियों का तख़्ता उलटने में लग गया।

हमें याद है कि महत रूसी जनवादी चेर्निशेव्स्की ने, जिन्होंने अपना जीवन क्रांति के ध्येय को समर्पित कर दिया, पचास साल पहले कहा था: "एक दयनीय जाति, गुलामों की जाति – जिसमें ऊपर से नीचे तक सभी गुलाम हैं।"[71] प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष महत रूसी

गुलाम (ज़ारशाही राजतंत्र के गुलाम) इन शब्दों को याद करना पसंद नहीं करते। फिर भी हमारी राय में ये मातृभूमि के प्रति वास्तविक प्रेम के शब्द थे, ऐसे प्रेम के, जो महत रूसी जनसाधारण के बीच क्रांतिकारी भावना के अभाव से व्यथित था। उस समय यह भावना सर्वथा नदारद थी। अब भी यह नगण्य-सी ही है, लेकिन है तो। हम जातीय गौरव की भावना से परिपूर्ण हैं, क्योंकि महत रूसी जाति ने **भी** एक क्रांतिकारी वर्ग का सृजन कर दिया है, क्योंकि इसने **भी** यह साबित कर दिया है कि वह मानवजाति के सामने केवल बड़े-बड़े हत्याकांड, फांसी के तख़्ते, काल-कोठरियां, घोर दुर्भिक्ष तथा पादरियों, ज़ारों, ज़मींदारों और पूंजीपतियों के सामने घोर चापलूसी ही नहीं, वरन स्वतंत्रता तथा समाजवाद के लिए संघर्ष के महान उदाहरण भी पेश कर सकती है।

हम जातीय गौरव की भावना से परिपूर्ण हैं और इसीलिए हमें **अपने** दासत्वमय अतीत से (जब भूस्वामी अभिजातवर्ग हंगरी, पोलैंड, फ़ारस और चीन की आज़ादी का गला घोंटने के लिए किसानों को लड़ाई के मैदान में घसीट ले जाता था) और अपने दासत्वमय वर्तमान से भी **विशेषकर** घृणा है, जब बिलकुल ये ही भूस्वामी पूंजीपतियों की सहायता से पोलैंड और उक्रइना का गला दबाने के लिए, फ़ारस और चीन के जनतांत्रिक आंदोलनों को कुचलने के लिए और रोमानोवों, बोब्रिन्स्कियों और पुरिश्केविचों को, हमारी महत रूसी जातीय प्रतिष्ठा पर कलंक का टीका लगानेवालों के गिरोह को, मज़बूत करने के लिए हमें युद्ध में घसीटकर ले जा रहे हैं। अगर आदमी गुलाम पैदा हुआ है, तो उसका कोई दोष नहीं; परंतु जो गुलाम अपनी आज़ादी के लिए कोशिश नहीं करना चाहता, इतना ही नहीं, जो अपनी गुलामी को उचित भी ठहराता है और उसका प्रशस्तिगान करता है (उदाहरणार्थ, पोलैंड, उक्रइना, आदि के दमन को महत रूसियों की "पितृभूमि की रक्षा" कहता है) – ऐसा गुलाम खुशामदी टट्टू और गंवार है और दूसरों में ठीक ही गुस्सा, हिक़ारत और नफ़रत पैदा करता है।

"*जो जाति दूसरी जातियों का उत्पीड़न करती है, वह आज़ाद नहीं हो सकती,*"[72] ये शब्द उन्नीसवीं शताब्दी के सुसंगत जनतंत्र के महानतम प्रतिनिधियों, मार्क्स और एंगेल्स के हैं, जो क्रांतिकारी

सर्वहारा के शिक्षक बने। और हम, महत रूसी मज़दूर, जिनके हृदय में राष्ट्रीय गौरव की भावना हिलोरें ले रही है, महत रूस को बहरसूरत स्वतंत्र और स्वाधीन, जनतांत्रिक, गणतांत्रिक और गौरवशाली देखना चाहते हैं, ऐसा देश, जो अपने पड़ोसियों के साथ अपने संबंधों को समानता के मानवीय सिद्धांत पर आधारित करेगा, न कि विशेषाधिकारों के सामंती सिद्धांत पर, जो एक महान जाति के लिए इतना अपमानजनक है। चूंकि हम ऐसा चाहते हैं, इसलिए हम कहते भी हैं। बीसवीं शताब्दी में, यूरोप में (यूरोप के सुदूर पूर्व तक में) "पितृभूमि की रक्षा" केवल एक ही तरीक़े से हो सकती है और वह यह कि अपनी पितृभूमि के राजतंत्र, भूस्वामियों और पूंजीपतियों, अर्थात **अपनी** पितृभूमि के सबसे **भयंकर** दुश्मनों से मोरचा लेने के लिए हर क्रांतिकारी साधन का इस्तेमाल किया जाये। हम कहते हैं कि महत रूसी तब तक अपनी "पितृभूमि की रक्षा" नहीं कर सकते, जब तक वे हर प्रकार के युद्ध में ज़ारशाही की पराजय की कामना न करें, जो महत रूस की ९० प्रतिशत आबादी के लिए अधिक छोटी विपत्ति होगी, क्योंकि ज़ारशाही इस ९० प्रतिशत जनता का न केवल आर्थिक और राजनीतिक दमन करती है, अपितु उसे अन्य जातियों को उत्पीड़ित करने और इस शर्मनाक काम को पाखंडपूर्ण और झूठे देशभक्तिपूर्ण फ़िक़रों से छिपाने की शिक्षा देकर उसे भ्रष्ट करती, गिराती, कलंकित करती और दुष्प्रयोग में लाती है।

यह आपत्ति पेश की जा सकती है कि ज़ारशाही के अलावा और उसी की छत्रछाया में एक दूसरी ऐतिहासिक शक्ति, अर्थात महत रूसी पूंजीवाद, उदित हो गयी और सुदृढ़ हो गयी है और वह विशाल प्रदेशों का आर्थिक दृष्टि से केंद्रीकरण और संलयन करके प्रगतिशील कार्य कर रही है। पर यह आपत्ति हमारे समाजवादी-अंधराष्ट्रवादियों को, जिन्हें ज़ारशाही-पुरिश्केविच समाजवादी कहा जाना चाहिए (जिस प्रकार मार्क्स लासालवादियों को शाही-प्रशाई समाजवादी कहा करते थे), दोषमुक्त नहीं करती, बल्कि उन्हें और भी अधिक दोषी बनाती है। यह तक मान लें कि इस प्रश्न पर इतिहास का निर्णय अभिभावी महत रूसी पूंजीवाद के पक्ष और सैकड़ों छोटी-छोटी जातियों के विपक्ष में जाता है। यह असंभव नहीं है, क्योंकि पूंजी का सारा इतिहास हिंसा,

९*

लूट-मार, रक्तपात और भ्रष्टाचार का इतिहास है। हम छोटी-छोटी जातियों को किसी भी क़ीमत पर बनाये रखने के पक्ष में बिलकुल नहीं हैं ; **अन्य परिस्थितियां समान हों**, तो हम निश्चय ही केंद्रीकरण के पक्ष और संघात्मक संबंधों के निम्न-बुर्जुआ आदर्श के विरुद्ध हैं। लेकिन ऐसी सूरत में भी, पहली बात तो यही है कि न तो यह हमारा, यानी जनवादियों का (समाजवादियों का तो सवाल ही नहीं उठता) काम है कि हम उक्रइना, आदि का गला घोंटने जैसे कार्यों में रोमानोव-बोब्रिन्स्की-पुरिश्केविच की मदद करें। बिस्मार्क ने अपने, युंकरी ढंग से एक प्रगतिशील ऐतिहासिक कार्य संपन्न किया था, पर उस "मार्क्स-वादी" के क्या कहने, जो यह सोचे कि इन आधारों पर बिस्मार्क को समाजवादियों की ओर से सहायता देना उचित है ! इसके अलावा बिस्मार्क ने उन बिखरे हुए जर्मनों को ऐक्यबद्ध करते हुए आर्थिक विकास में सहायता दी, जिनका उत्पीड़न दूसरी जातियां कर रही थीं। किंतु महत रूस की आर्थिक समृद्धि और द्रुत विकास दूसरी जातियों पर महत रूसी उत्पीड़न से देश को मुक्त करने का तक़ाज़ा करते हैं – इस अंतर को हमारे लगभग सोलहों आने रूसी बिस्मार्कों के पुजारी और पक्षधर भुला देते हैं।

दूसरे, अगर इतिहास इस प्रश्न को अभिभावी महत रूसी पूंजीवाद के पक्ष में तय करता है, तो इसका मतलब यह है कि पूंजीवाद से उत्पन्न होनेवाली कम्युनिस्ट क्रांति की मुख्य उत्प्रेरक शक्ति के रूप में महत रूसी सर्वहारा की **समाजवादी** भूमिका का महत्व और भी अधिक होगा। सर्वहारा क्रांति जातियों की **पूर्णतम** समानता और भाईचारे की भावना में मज़दूरों की दीर्घकालीन शिक्षा-दीक्षा का तक़ाज़ा करती है। फलतः महत रूसी सर्वहारा ही के हित के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि जनता को ऐसी दीर्घकालीन शिक्षा-दीक्षा मिले कि वह महत रूसियों द्वारा उत्पीड़ित सभी जातियों की पूर्ण समानता और आत्मनिर्णय के अधिकार का अधिकतम दृढ़ता और साहस के साथ, सुसंगत तथा क्रांतिकारी तरीक़े से समर्थन करे। महत रूसियों के जातीय गौरव के (दासत्व के अर्थ में नहीं) हित महत रूसी (तथा अन्य सभी) सर्वहाराओं के **समाजवादी** हितों के साथ मिल जाते हैं। मार्क्स हमेशा ही हमारे आदर्श बने रहेंगे, क्योंकि दशाब्दियों तक इंगलैंड में रह चुकने के बाद वह आधे अंग्रेज़ हो चुके थे और उन्होंने अंग्रेज़ मज़दूरों के समाजवादी आंदोलन के हित में आयरलैंड की आज़ादी और राष्ट्रीय स्वाधीनता की मांग की थी।

दूसरी अनुमानित स्थिति में हमारे देश के अधकचरे समाजवादी अंधराष्ट्रवादी, प्लेखानोव, आदि, आदि न केवल अपने वतन – आज़ाद और जनतांत्रिक महत रूस – के प्रति ही ग़द्दार साबित होंगे, अपितु रूस की सभी जातियों के सर्वहारा भ्रातृत्व, अर्थात समाजवाद के ध्येय के प्रति भी ग़द्दार सिद्ध होंगे।

व्ला० इ० लेनिन,

'सोत्सिआल-देमोक्रात, अंक ३५,
१२ दिसंबर, १९१४ को प्रकाशित।

संग्रहीत रचनाएं,
पांचवां रूसी संस्करण,
खंड २६, पृ० १०६–११०

समाजवादी क्रांति तथा जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार

(प्रस्थापनाएं)

१. साम्राज्यवाद, समाजवाद तथा उत्पीड़ित जातियों की मुक्ति

साम्राज्यवाद पूंजीवाद के विकास की उच्चतम मंज़िल है। सबसे अग्रणी देशों में पूंजी बढ़कर जातीय राज्यों की सीमाओं को लांघ गयी है। उसने प्रतियोगिता के स्थान पर इजारेदारी को स्थापित कर दिया है तथा समाजवाद की सिद्धि के लिए सभी वस्तुपरक पूर्वाधारों का निर्माण कर दिया है। इसलिए पश्चिमी यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमरीका में पूंजीवादी सरकारों का तख्ता उलटने के लिए, बुर्जुआज़ी का स्वत्वहरण करने के लिए सर्वहारा का क्रांतिकारी संघर्ष आज कार्य-सूची में है। वर्ग विरोधों को अपरिमित मात्रा में तीक्ष्ण बनाकर, आर्थिक दृष्टि से – ट्रस्टों, महंगाई के ज़रिये – तथा राजनीतिक दृष्टि से – सैन्यवाद की वृद्धि, बारंबार युद्धों, अधिक शक्तिशाली प्रतिक्रियावाद, जातियों के उत्पीड़न तथा औपनिवेशिक लूट-मार के गहनीकरण और विस्तार के ज़रिये – जनसाधारण की अवस्थाओं को बदतर बनाकर साम्राज्यवाद जनसाधारण को इस संघर्ष की ओर धकेल रहा है। विजयी समाजवाद को लाज़िमी तौर पर पूर्ण जनतंत्र की स्थापना करनी होगी और फलस्वरूप जातियों की न केवल पूर्ण समानता लागू करनी होगी, अपितु उत्पीड़ित जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को, यानी स्वतंत्र रूप से राजनीतिक पृथक्करण के अधिकार को भी मूर्त रूप देना होगा। जो समाजवादी पार्टियां इस समय, क्रांति के दौरान तथा उसकी विजय के उपरांत भी अपनी समस्त गतिविधियों द्वारा यह प्रदर्शित नहीं करतीं कि वे ग़ुलाम बनायी जातियों को मुक्त कर देंगी

और उनके साथ स्वतंत्र संघ – और विलग होने के अधिकार के बिना स्वतंत्र संघ झूठा फ़िक़रा है – के आधार पर संबंध स्थापित करेंगी – वे पार्टियां समाजवाद के साथ ग़द्दारी करेंगी।

निस्संदेह, जनतंत्र भी राज्य का एक रूप है, जिसे राज्य का विलोप होने पर विलुप्त हो जाना होगा, किंतु यह केवल अंतिम रूप से विजयी तथा दृढ़ीभूत समाजवाद से पूर्ण कम्युनिज़्म में संक्रमण के अंतर्गत ही होगा।

२. समाजवादी क्रांति और जनतंत्र के लिए संघर्ष

समाजवादी क्रांति कोई एक ही कार्रवाई नहीं है, एक मोरचे पर एक लड़ाई नहीं है, बल्कि तीक्ष्ण वर्ग टक्करों का एक पूरा युग, तमाम मोरचों पर, यानी अर्थनीति तथा राजनीति के तमाम प्रश्नों पर लड़ाइयों की एक लंबी शृंखला है, ऐसी लड़ाइयां, जिनका समापन केवल बुर्जुआज़ी के स्वत्वहरण में ही हो सकता है। यह सोचना बुनियादी ग़लती होगा कि जनतंत्र के लिए संघर्ष सर्वहारा को समाजवादी क्रांति से विचलित कर सकता है अथवा समाजवादी क्रांति को छुपा सकता है, इस पर छा जा सकता है, आदि। इसके विपरीत, जिस तरह यह संभव नहीं है कि विजयी समाजवाद पूर्ण जनतंत्र को अमल में न लाये, उसी तरह यह भी संभव नहीं है कि जनतंत्र के लिए सर्वतोमुखी, सुसंगत तथा क्रांतिकारी संघर्ष के बिना सर्वहारा बुर्जुआ वर्ग पर विजय की तैयारी कर सके।

जनतांत्रिक कार्यक्रम के एक मुद्दे को, उदाहरण के लिए, जातियों के आत्मनिर्णय के मुद्दे को, इस आधार पर हटा देना कोई कम छोटी ग़लती नहीं होगा कि वह साम्राज्यवाद के अंतर्गत "अव्यवहार्य" अथवा "भ्रामक" है। इस कथन को कि जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार पूंजीवाद के अंतर्गत अव्यवहार्य है, या तो निरपेक्ष, आर्थिक अर्थ में अथवा सापेक्ष, राजनीतिक अर्थ में समझा जा सकता है।

पहले मामले में यह सैद्धांतिक दृष्टि से बुनियादी तौर पर ग़लत है। पहले, इस अर्थ में कि ऐसी चीज़ें, जैसे उदाहरण के लिए, श्रम-मुद्रा

अथवा संकटों का खात्मा, आदि पूंजीवाद के अंतर्गत अव्यवहार्य हैं। यह सरासर असत्य है कि जातियों का आत्मनिर्णय **उतना ही** अव्यवहार्य है। दूसरे, १९०५ में स्वीडन से नार्वे के अलग होने की एक मिसाल तक इस अर्थ में "अव्यवहार्यता" का खंडन करने के लिए पर्याप्त है। तीसरे, इससे इन्कार करना उपहासास्पद होगा कि, उदाहरण के लिए, जर्मनी और ब्रिटेन के पारस्परिक राजनीतिक और रणनीतिक संबंधों में कोई मामूली परिवर्तन नये पोलिश, हिंदुस्तानी और ऐसे ही अन्य राज्य को आज या कल पूर्णतः "व्यवहार्य" बना सकता है। चौथे, वित्त पूंजी विस्तार के अपने प्रयास में किसी भी, "स्वाधीन" देश तक की सबसे स्वतंत्र जनतांत्रिक अथवा गणतांत्रिक सरकार तथा निर्वाचित अधिकारियों तक को "स्वतंत्रतापूर्वक" खरीद सकती और रिश्वत देकर अपनी ओर कर सकती है। वित्त पूंजी का और सामान्य रूप से पूंजी का प्रभुत्व राजनीतिक जनतंत्र के क्षेत्र में **किसी भी तरह के** सुधारों से मिटनेवाला नहीं है; और आत्मनिर्णय पूर्णतया तथा अनन्य रूप से इसी क्षेत्र से सरोकार रखता है। परंतु वित्त पूंजी का यह प्रभुत्व वर्ग उत्पीड़न तथा वर्ग संघर्ष के अधिक स्वतंत्र, अधिक विस्तृत और अधिक स्पष्ट **रूप** के नाते राजनीतिक जनतंत्र के महत्व को लेशमात्र नहीं मिटाता। इसलिए पूंजीवाद के अंतर्गत राजनीतिक जनतंत्र की मांगों में से एक की, आर्थिक अर्थ में, "अव्यवहार्यता" के बारे में सारे तर्क पूंजीवाद तथा समग्र रूप में राजनीतिक जनतंत्र के बीच आम और बुनियादी संबंधों की सैद्धांतिक रूप से ग़लत परिभाषा में परिणत हो जाते हैं।

दूसरे मामले में यह दावा अपूर्ण और असटीक है। इसलिए कि जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार ही नहीं, अपितु राजनीतिक जनतंत्र की **सारी** मूलभूत मांगें भी साम्राज्यवाद के अंतर्गत मात्र अपूर्ण रूप में "व्यवहार्य" हैं, और वह भी विकृत तथा विरल अपवाद के रूप में (उदाहरण के लिए, १९०५ में नार्वे की स्वीडन से विलग्नता)। समस्त क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों द्वारा उठायी उपनिवेशों की तत्काल मुक्ति की मांग भी पूंजीवाद के अंतर्गत क्रांतियों की एक शृंखला के बिना "अव्यवहार्य" है। परंतु इससे कदापि यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सामाजिक-जनवाद इन **सारी** मांगों के लिए तुरंत तथा सबसे निर्णायक संघर्ष को अस्वीकार कर दे – इस तरह का अस्वीकरण बुर्जुआज़ी तथा

प्रतिक्रिया के हाथों में खेलना मात्र होगा – अपितु इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन मांगों को सुधारवादी नहीं, बल्कि क्रांतिकारी ढंग से निरूपित तथा पेश किया जाना चाहिए; अपने को बुर्जुआ क़ानूनियत की सीमाओं में न बांधा जाये, बल्कि उन्हें तोड़ा जाये; संसद में भाषणों तथा शाब्दिक विरोधों से संतोष न कर लिया जाये, बल्कि जनसाधारण को सक्रिय कार्रवाई में खींचा जाये, प्रत्येक बुनियादी जनतांत्रिक मांग के लिए संघर्ष को फैलाते हुए, उसकी आग भड़काते हुए उसे बुर्जुआज़ी पर सर्वहारा के सीधे हमले तक, अर्थात बुर्जुआ वर्ग का स्वत्वहरण करनेवाली समाजवादी क्रांति तक पहुंचाया जाये। समाजवादी क्रांति केवल किसी बड़ी हड़ताल या सड़कों पर प्रदर्शन या भूखों के बलवे या सैनिक विद्रोह या औपनिवेशिक बग़ावत के कारण ही नहीं, अपितु ड्राइफ़स के मुक़दमे[73] अथवा ज़ेबर्न-कांड[74] जैसे किसी भी राजनीतिक संकट के कारण या किसी उत्पीड़ित जाति के विलग होने के बारे में जनमत-संग्रह, आदि के सिलसिले में भी भड़क सकती है।

साम्राज्यवाद के अंतर्गत बढ़े हुए जातीय उत्पीड़न का अर्थ यह नहीं है कि सामाजिक-जनवाद जातियों के विलग होने की स्वतंत्रता के लिए, बुर्जुआ लोगों के शब्दों में "यूटोपियाई" संघर्ष को अस्वीकार कर दे, अपितु इसके विपरीत उसका अर्थ है इस क्षेत्र में **भी** उत्पन्न होनेवाली टक्करों का जन-कार्रवाई के लिए तथा बुर्जुआज़ी पर क्रांतिकारी प्रहारों के लिए आधारभूमि के रूप में और अधिक अपयोग करना।

३. आत्मनिर्णय के अधिकार का महत्व तथा संघ के साथ उसका संबंध

जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का अर्थ अनन्य रूप से राजनीतिक अर्थ में स्वतंत्रता का, उत्पीड़नकारी राष्ट्र से स्वतंत्र राजनीतिक पृथक्करण का अधिकार है। ठोस रूप में राजनीतिक जनतंत्र की इस मांग का अर्थ है विलग्नता के लिए आंदोलन करने की पूर्ण स्वतंत्रता तथा विलग्न होनेवाली जाति के जनमत-संग्रह द्वारा विलग्नता के प्रश्न का निर्णय। इसलिए यह मांग पृथक्करण की, विखंडीकरण की तथा छोटे राज्यों के गठन की मांग के बराबर कदापि नहीं है। वह सब

तरह के जातीय उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष की सुसंगत अभिव्यक्ति मात्र है। कोई जनतांत्रिक राज्य-प्रणाली विलग्नता की पूर्ण स्वतंत्रता के जितने समीप होगी, पृथक होने की कामना व्यवहार में उतनी ही विरल और उतनी ही क्षीण होगी, इसलिए कि बड़े राज्यों के लाभ आर्थिक प्रगति के दृष्टिकोण से तथा जनसाधारण के हितों के दृष्टिकोण से अकाट्य होते हैं, इसके अलावा वे पूंजीवाद के संवर्धन के साथ बढ़ते जाते हैं। आत्मनिर्णय की मान्यता सिद्धांत के रूप में संघ की मान्यता का पर्याय नहीं है। कोई इस सिद्धांत का कट्टर विरोधी और जनतांत्रिक केंद्रवाद का पक्षधर हो सकता है, परंतु इसके बावजूद वह पूर्ण जनतांत्रिक केंद्रवाद की ओर एकमात्र मार्ग के रूप में जातियों की असमानता के मुक़ाबले संघ को तरजीह दे सकता है। ठीक इसी दृष्टिकोण से मार्क्स ने, जो केंद्रवादी थे, आयरलैंड तथा इंगलैंड के संघ तक को आयरलैंड को अंग्रेज़ों के जबरन मातहत रखे जाने पर तरजीह दी थी।[75]

समाजवाद का लक्ष्य मानवजाति के छोटे-छोटे राज्यों में विभाजन का अंत करना ही नहीं, जातियों के हर प्रकार के अलगाव का अंत करना ही नहीं, जातियों को एक-दूसरे के समीप लाना ही नहीं, अपितु उन्हें समेकित करना भी है। और ठीक इस लक्ष्य की सिद्धि के हेतु हमें, एक ओर, जनसाधारण को रेनर और ओटो बावेर के उस विचार का, जिसे "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता"[76] नाम दिया गया है, प्रतिक्रियावादी स्वरूप समझाना होगा, और, दूसरी ओर, आम गोल-मोल फ़िक़रों में नहीं, खोखली उद्घोषणाओं में नहीं, समाजवाद के आने तक प्रश्न को "हटा देने" के रास्ते नहीं, अपितु स्पष्ट रूप में, सटीक रूप में निरूपित राजनीतिक कार्यक्रम में, जो उत्पीड़क जातियों के समाजवादियों के पाखंड और उनकी कायरता को विशेष रूप से ध्यान में रखे, उत्पीड़ित जातियों की मुक्ति की मांग करनी होगी। जिस तरह मानवजाति उत्पीड़ित वर्ग के अधिनायकत्व की संक्रमणकालीन अवधि के जरिये ही वर्गों के उन्मूलन तक पहुंच सकती है, ठीक उसी तरह मानवजाति सारी उत्पीड़ित जातियों की पूर्ण मुक्ति, अर्थात विलग होने की उनकी स्वतंत्रता की संक्रमणकालीन अवधि के ज़रिये ही जातियों के अपरिहार्य समेकन तक पहुंच सकती है।

४. जातियों के आत्मनिर्णय के प्रश्न का सर्वहारा-क्रांतिकारी प्रस्तुतीकरण

निम्न-बुर्जुआ वर्ग ने जातियों के आत्मनिर्णय की मांग को ही नहीं, अपितु हमारे जनतांत्रिक न्यूनतम कार्यक्रम के **सारे** मुद्दों तक को **बहुत पहले**, १७वीं और १८वीं शताब्दियों में ही सामने रख दिया था। और आज भी वह उन **सबको** यूटोपियाई ढंग से प्रस्तुत कर रहा है, वह वर्ग संघर्ष तथा जनतंत्र के अंतर्गत उनकी बढ़ी हुई तीव्रता को नहीं देख पा रहा है, वह "शांतिमय" पूंजीवाद में विश्वास करता है। साम्राज्यवाद के अंतर्गत समान जातियों के शांतिमय संघ के यूटोपिया का, जो जनता की आंखों में धूल झोंकता है और जिसकी काउत्स्कीपंथी पैरोकारी करते हैं, वास्तविक स्वरूप बिलकुल यही है। इस निम्न-बुर्जुआ, अवसरवादी यूटोपिया के मुक़ाबले में सामाजिक-जनवाद के कार्यक्रम को जातियों के उत्पीड़क तथा उत्पीड़ित में विभाजन को साम्राज्यवाद के अंतर्गत आधारभूत, सारभूत तथा अपरिहार्य मानना होगा।

उत्पीड़क जातियों का सर्वहारा अपने को किसी भी शांतिमय बुर्जुआ द्वारा समामेलनों के विरुद्ध तथा सामान्य रूप में जातियों की समानता के पक्ष में दुहराये जानेवाले, आम, घिसे-पिटे फ़िक़रों तक सीमित नहीं रख सकता। सर्वहारा वर्ग जातीय उत्पीड़न के आधार पर स्थापित किये गये राज्य की **सीमाओं** के प्रश्न पर, जो साम्राज्यवादी बुर्जुआज़ी को विशेष रूप से "अप्रिय" है, मौन नहीं रह सकता। सर्वहारा संबद्ध राज्य की सीमाओं में उत्पीड़ित जातियों को जबरन रखे जाने के विरुद्ध लड़े बिना नहीं रह सकता, और इसका अर्थ आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए लड़ना ही है। सर्वहारा को "अपने ही" राष्ट्र द्वारा उत्पीड़ित उपनिवेशों तथा जातियों की राजनीतिक पृथकता की स्वतंत्रता की मांग करनी होगी। अन्यथा सर्वहारा का अंतर्राष्ट्रीयतावाद खोखली लफ़्फ़ाज़ी के सिवा और कुछ न होगा; उत्पीड़ित तथा उत्पीड़क जातियों के मज़दूरों के बीच न विश्वास संभव होगा और न वर्ग एकजुटता; सुधारवादियों और काउत्स्कीपंथियों का, जो आत्मनिर्णय की तो पैरवी करते हैं, परंतु "अपने ही" राष्ट्र द्वारा उत्पीड़ित तथा

जबरन "अपने" राज्य में रखी जानेवाली जातियों के बारे में मौन रहते हैं, पाखंड बेनक़ाब हुए बिना रहेगा।

दूसरी ओर, उत्पीड़ित जातियों के समाजवादियों को उत्पीड़ित जाति तथा उत्पीड़क जाति के मज़दूरों की बिना शर्त तथा पूर्ण एकता की – संगठनात्मक एकता समेत – ख़ास तौर पर रक्षा करना और उसे अमली जामा पहनाना चाहिए। इसके बिना बुर्जुआज़ी की सारी साज़िशों, धोखेबाज़ी और तिकड़मों के सम्मुख सर्वहारा की स्वतंत्र नीति तथा दूसरे देशों के सर्वहारा के साथ उसकी वर्ग एकजुटता की रक्षा करना असंभव है, इसलिए कि उत्पीड़ित जातियों का बुर्जुआ वर्ग राष्ट्रीय मुक्ति के नारों का मज़दूरों को छलने के लिए निरंतर उपयोग करता है: आंतरिक नीति में वह इन नारों का प्रभुत्वशाली जाति के बुर्जुआज़ी के साथ प्रतिक्रियावादी समझौतों के लिए इस्तेमाल करता है (उदाहरण के लिए, आस्ट्रिया तथा रूस में पोल, जो यहूदियों तथा उक्रइनियों के उत्पीड़न के लिए प्रतिक्रियावादियों के साथ समझौता कर लेते हैं); विदेश नीति में वह अपने लुटेरे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रतिद्वंद्वी साम्राज्यवादी देशों में से एक के साथ समझौता करने का प्रयास करता है (छोटे बाल्कन राज्यों की नीति, आदि)।

यह परिस्थिति कि एक साम्राज्यवादी ताक़त के विरुद्ध राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष का कुछ हालात में दूसरी "बड़ी" ताक़त अपने समान रूप से साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए उपयोग कर सकती है, सामाजिक-जनवादियों को जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता का परित्याग करने के लिए उतना ही कम बाध्य कर सकती है, जितना कम राजनीतिक धोखाधड़ी तथा वित्तीय लूट-खसोट के उद्देश्य के लिए गणतंत्रीय नारों के बुर्जुआज़ी द्वारा उपयोग के कई मामले, उदाहरण के लिए, रोमांसभाषी देशों में, सामाजिक-जनवादियों को अपने गणतंत्रवाद का परित्याग करने के लिए बाध्य कर सकते हैं।*

---

* कहने की ज़रूरत नहीं कि आत्मनिर्णय के अधिकार का इस आधार पर परित्याग करना कि उसमें "पितृभूमि की रक्षा" सन्निहित है, सरासर उपहासास्पद होगा। उतने ही अधिकार से – यानी उतनी ही ग़ैर-संजीदगी से – १९१४–१९१६ में सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी "पितृभूमि की रक्षा" को न्यायोचित ठहराने के लिए जनतंत्र की किसी भी मांग का (उदाहरण के लिए, उसके गणतंत्रवाद का) तथा जातियों के उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष के किसी भी निरूपण का हवाला देते हैं। मार्क्सवादी ऐसे युद्धों में, जैसे, उदाहरण के लिए, यूरोप में महान फ्रांसीसी क्रांति के युद्धों में अथवा गरीबाल्दी के युद्धों में, पितृभूमि की रक्षा की स्वीकृति और साथ ही १९१४–१९१६ के साम्राज्यवादी युद्ध में पितृभूमि की रक्षा की अस्वीकृति का निष्कर्ष प्रत्येक पृथक युद्ध की ठोस ऐतिहासिक विशेषताओं के विश्लेषण से निकालते हैं, किसी "सामान्य सिद्धांत" से, कार्यक्रम के किसी एक अलग मुद्दे से किसी भी सूरत में नहीं।

५. जातीय प्रश्न के बारे में मार्क्सवाद तथा प्रूदोंवाद

निम्न-बुर्जुआ जनवादियों के विपरीत मार्क्स बिना किसी अपवाद के प्रत्येक जनतांत्रिक मांग को कोई निरपेक्ष सत्य नहीं, अपितु सामंतवाद के विरुद्ध बुर्जुआज़ी के नेतृत्व में जनसाधारण के संघर्ष की ऐतिहासिक अभिव्यक्ति मानते थे। इन मांगों में से एक भी ऐसी नहीं है, जो मज़दूरों की आंखों में धूल झोंकने के लिए कतिपय परिस्थितियों में बुर्जुआ वर्ग का अस्त्र न बन सकी हो और न बनी हो। इस मामले में राजनीतिक जनतंत्र की एक मांग को, विशेष रूप से जातियों के आत्मनिर्णय को, चुन लेना और उसे बाक़ी के मुक़ाबले में खड़ा करना सिद्धांत रूप में मूलतः ग़लत है। व्यवहार में सर्वहारा गणतंत्र की मांग को अलग किये बिना समस्त जनतांत्रिक मांगों के लिए अपने संघर्ष को बुर्जुआज़ी का तख़्ता उलटने के लिए अपने क्रांतिकारी संघर्ष के मातहत रखकर ही अपने स्वावलंबन को अक्षुण्ण रख सकता है।

दूसरी ओर, प्रूदोंवादियों के विपरीत, जो "सामाजिक क्रांति के नाम पर" जातीय समस्या को "अस्वीकार" करते थे, मार्क्स ने उन्नत देशों में सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के हितों को सबसे अधिक ध्यान में रखते हुए अंतर्राष्ट्रीयतावाद तथा समाजवाद के मूलभूत सिद्धांत को पहले स्थान पर रखा: अर्थात यह कि दूसरी जातियों का उत्पीड़न करनेवाली कोई भी जाति आज़ाद नहीं हो सकती।[77] ठीक जर्मन मज़दूरों के क्रांतिकारी आंदोलन के हितों के दृष्टिकोण से ही मार्क्स ने १८४८ में मांग की थी कि जर्मनी में विजयी जनतंत्र को जर्मनों द्वारा उत्पीड़ित जातियों की स्वतंत्रता की घोषणा करनी चाहिए और उसे अमल में लाना चाहिए। अंग्रेज़ मज़दूरों के क्रांतिकारी संघर्ष के दृष्टिकोण से ही मार्क्स ने १८६९ में आयरलैंड को इंगलैंड से पृथक करने की मांग की थी और इतना और जोड़ा था: "भले ही पृथक्करण के बाद

संघ बन आये।"[78] केवल ऐसी मांग पेश करके ही मार्क्स अंग्रेज मजदूरों को वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीयतावाद की भावना में शिक्षित-दीक्षित कर रहे थे। केवल इसी तरह वह अवसरवादियों तथा बुर्जुआ सुधारवाद के मुक़ाबले में, जो आज तक, आधी शताब्दी के बाद भी आयरिश "सुधार" को मूर्त रूप नहीं दे पाया है, संबद्ध ऐतिहासिक समस्या का क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत कर सके। केवल इसी तरह मार्क्स – पूंजी के पैरवीकारों के विपरीत, जो चिल्लाते हैं कि छोटी जातियों के विलग होने की स्वतंत्रता यूटोपियाई और अव्यवहार्य है और केवल आर्थिक ही नहीं, अपितु राजनीतिक संकेंद्रण भी प्रगतिशील है – दावा कर सकते थे कि यह संकेंद्रण प्रगतिशील होता है, जब वह ग़ैर-साम्राज्यवादी हो और यह कि जातियों को ज़ोर ज़बरदस्ती से नहीं, बल्कि सभी देशों के सर्वहाराओं के स्वतंत्र मेल के ज़रिये एक दूसरे के पास लाया जाना चाहिए। केवल इसी तरह मार्क्स जातियों की समानता तथा आत्मनिर्णय की कोरी शाब्दिक और बहुधा पाखंडभरी मान्यता के मुक़ाबले में जातीय प्रश्नों के समाधान में भी जनसाधारण की क्रांतिकारी कार्रवाई का समर्थन कर सकते थे। १९१४–१९१६ के साम्राज्यवादी युद्ध और अवसरवादियों और काउत्स्कीपंथियों के पाखंड की उसके द्वारा अनावृत्त ओजीयम की घुड़सालों* ने मार्क्स की इस नीति की सत्यता की ज्वलंत रूप में पुष्टि कर दी है, जिसे समस्त उन्नत देशों के लिए आदर्श का काम देना चाहिए, इसलिए कि उनमें से प्रत्येक इस समय दूसरी जातियों का उत्पीड़न कर रहा है।**

---

* यूनानी पुराणकथा में वर्णित राजा ओजीयस की वर्षों से गंदी पड़ी घुड़सालें, जिन्हें हरकुलीज़ ने उन पर आल्फ़ीयस नदी का पानी बहाकर साफ़ किया था। – अनु०

** इस बात का अकसर हवाला दिया जाता है – उदाहरण के लिए, हाल में *Die Glocke*[79] के अंक ८ तथा ९ में जर्मन अंधराष्ट्रवादी लेंश द्वारा – कि कतिपय जनगण के राष्ट्रीय आंदोलन पर, उदाहरण के लिए, १८४८ में चेकों के राष्ट्रीय आंदोलन पर मार्क्स की आपत्ति मार्क्सवाद के दृष्टिकोण से जातियों के आत्मनिर्णय की स्वीकृति की आवश्यकता का खंडन करती है। परंतु यह ग़लत है, इसलिए कि १८४८ में "प्रतिक्रियावादी" और क्रांतिकारी-जनतांत्रिक राष्ट्रों में अंतर करने के ऐतिहासिक तथा राजनीतिक आधार थे। मार्क्स सही थे, जब उन्होंने पहले की भर्त्सना की और दूसरे का पक्ष लिया।[80] आत्मनिर्णय का अधिकार जनतंत्र की मांगों में से एक है, जिसे स्वभावतया जनतंत्र के आम हितों के मातहत रखा जाना ज़रूरी है। १८४८ में तथा आगे के वर्षों में ये आम हित मुख्यतया ज़ारशाही से लड़ने में निहित थे।

६. जातियों के आत्मनिर्णय के सिलसिले में तीन क़िस्म के देश

इस सिलसिले में देशों को तीन मुख्य क़िस्मों में बांटना ज़रूरी है।

पहली, पश्चिमी यूरोप के उन्नत देश तथा संयुक्त राज्य अमरीका। यहां प्रगतिशील बुर्जुआ राष्ट्रीय आंदोलन बहुत पहले समाप्त हो चुके थे। इन "महान" राष्ट्रों में से प्रत्येक उपनिवेशों में तथा स्वदेश में परायी जातियों का उत्पीड़न करता है। इन शासक राष्ट्रों के सर्वहारा के कार्यभार वही हैं, जो १९वीं शताब्दी में आयरलैंड के सिलसिले में इंगलैंड में सर्वहारा के थे।*

दूसरी, पूर्वी यूरोप: आस्ट्रिया, बाल्कन और ख़ास तौर पर रूस। यहां ठीक २०वीं शताब्दी ने ही बुर्जुआ-जनतांत्रिक राष्ट्रीय आंदोलनों को विशेष रूप से विकसित किया तथा जातीय संघर्ष को तीक्ष्ण बनाया। इन देशों में बुर्जुआ-जनतांत्रिक सुधारों को पूर्ण करने तथा अन्य देशों में समाजवादी क्रांति को सहायता देने – दोनों – में सर्वहारा के कार्यभार जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की हिमायत किये बिना पूर्ण नहीं हो सकते। यहां सबसे कठिन तथा विशेष रूप से महत्वपूर्ण कार्यभार

---

* कुछ छोटे राज्यों में, उदाहरण के लिए, हालैंड तथा स्विट्ज़रलैंड में, जो १९१४–१९१६ के युद्ध से बाहर रहे, बुर्जुआ वर्ग साम्राज्यवादी युद्ध में शिरकत को न्यायसंगत ठहराने के लिए "जातियों के आत्मनिर्णय" के नारे का व्यापक उपयोग करता है। यह ऐसे देशों में सामाजिक-जनवादियों को आत्मनिर्णय का परित्याग करने के लिए प्रेरित करनेवाले अभिप्रेरकों में से एक है। एक सही सर्वहारा नीति की, अर्थात **साम्राज्यवादी** युद्ध में "पितृभूमि की रक्षा" के अस्वीकरण की पैरवी करने के लिए ग़लत तर्कों का उपयोग किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप सिद्धांत में मार्क्सवाद विकृत होता है और अमल में छोटी जाति की अपनी क़िस्म की तंगदिली पैदा होती है, "अभिभावी" राष्ट्रों द्वारा ग़ुलाम बनायी गयी जातियों के **करोड़ों** लोगों की उपेक्षा होती है। साथी गोर्टर अपनी उम्दा पुस्तिका 'साम्राज्यवाद, युद्ध तथा सामाजिक-जनवाद' में जातियों के आत्मनिर्णय के सिद्धांत को ग़लत ढंग से अस्वीकार करते हैं, परंतु उसे सही ढंग से **लागू करते हैं**, जब वह डच ईस्ट इंडीज़ को **तत्काल** "राजनीतिक और **राष्ट्रीय** स्वतंत्रता" प्रदान करने की मांग करते हैं और उन डच अवसरवादियों का परदाफ़ाश करते हैं, जो यह मांग पेश करने तथा उसके लिए लड़ने से इन्कार करते हैं।

है उत्पीड़क जातियों के मज़दूरों के वर्ग संघर्ष तथा उत्पीड़ित जातियों के मज़दूरों के वर्ग संघर्ष को सूत्रबद्ध करना।

तीसरी, चीन, फ़ारस तथा तुर्की जैसे अर्ध-औपनिवेशिक देश तथा वे तमाम उपनिवेश, जिनकी कुल मिलाकर आबादी एक अरब है। यहां बुर्जुआ-जनतांत्रिक आंदोलन या तो मुश्किल से ही शुरू हुए हैं या उन्हें अभी बहुत लंबा सफ़र तय करना है। समाजवादियों को न केवल बिला मुआवज़ा उपनिवेशों की बिला शर्त तथा तत्काल मुक्ति की ही मांग करनी चाहिए – और यह मांग अपनी राजनीतिक अभिव्यक्ति में सिवाय आत्मनिर्णय के अधिकार के और किसी चीज़ की द्योतक नहीं है; समाजवादियों को इन देशों में बुर्जुआ-जनतांत्रिक राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों में अधिक क्रांतिकारी तत्वों का अत्यंत संकल्पपूर्वक समर्थन करना चाहिए और उन्हें उत्पीड़ित करनेवाली साम्राज्यवादी शक्तियों **के विरुद्ध** इन तत्वों के विप्लव की – और क्रांतिकारी युद्ध होने की सूरत में – उसकी सहायता करनी चाहिए।

७. सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद तथा जातियों का आत्मनिर्णय

साम्राज्यवादी युग तथा १९१४–१९१६ के युद्ध ने अग्रणी देशों में अंधराष्ट्रवाद तथा राष्ट्रवाद के विरुद्ध संघर्ष के कार्यभार को ख़ास तौर पर महत्वपूर्ण बना दिया है। जातियों के आत्मनिर्णय के प्रश्न पर सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों, अर्थात अवसरवादियों और काउत्स्कीपंथियों के बीच, जो युद्ध के साम्राज्यवादी, प्रतिक्रियावादी स्वरूप पर "पितृभूमि की रक्षा" की धारणा को लागू करके उसे छुपाते हैं, दो मुख्य प्रवृत्तियां हैं।

एक ओर, हम बुर्जुआज़ी के अप्रच्छन्न चाकरों को देखते हैं, जो समामेलनों की इस नाम पर सफ़ाई देते हैं कि साम्राज्यवाद तथा राजनीतिक संकेंद्रण प्रगतिशील हैं और आत्मनिर्णय के अधिकार को, जिसे वे यूटोपियाई, मायाजाल, निम्न-बुर्जुआ, आदि बताते हैं, अस्वीकार करते हैं। इनमें शामिल हैं कूनोव, पार्वुस तथा जर्मनी के घोर अवसरवादी, इंगलैंड में कुछ फ़ेबियन[81] तथा ट्रेड-यूनियन नेता तथा रूस में – सेम्कोव्स्की, लीबमैन, युरकेविच, आदि अवसरवादी।

दूसरी ओर, हम काउत्स्कीपंथियों को देखते हैं, जिनमें वानडरवेल्डे, रेनोदिल, ब्रिटेन और फ़्रांस में बहुत-से शांतिवादी, आदि शामिल हैं। वे पहलेवालों से एकता के पक्ष में हैं और अमल में पूर्णतः उनके सदृश हैं, वे आत्मनिर्णय के अधिकार का सिर्फ़ ज़बानी, पाखंडभरे ढंग से समर्थन करते हैं: वे मुक्त राजनीतिक पृथक्करण की मांग को " अतिवादी " ("zu viel verlangt": Kautsky *Neue Zeit* में, २१ मई, १९१५ को) मानते हैं, वे विशेष रूप से उत्पीड़क राष्ट्रों के समाजवादियों की क्रांतिकारी कार्यनीति की आवश्यकता की हिमायत नहीं करते, बल्कि इसके विपरीत उनके क्रांतिकारी दायित्वों को धुंधला बनाते हैं, उनकी अवसरवादिता को न्यायसंगत ठहराते हैं, उनके लिए अपनी जनता की आंखों में धूल झोंकना आसान बनाते हैं तथा अधिकारहीन जातियों को ज़बरदस्ती अपनी हदों के भीतर रखनेवाले राज्य की **सीमाओं** के प्रश्न से ही कतराते हैं।

दोनों समान रूप से अवसरवादी हैं, जो मार्क्सवाद के साथ अनाचार करते हैं, उस कार्यनीति के, जिसे मार्क्स ने आयरलैंड का उदाहरण पेश कर समझाया था, सैद्धांतिक महत्व और व्यावहारिक तात्कालिकता को समझने की सारी क्षमता खो बैठे हैं।

जहां तक समामेलनों का संबंध है, तो यह प्रश्न युद्ध के सिलसिले में ख़ास तौर पर तात्कालिक बन गया है। परंतु समामेलन है क्या? आसानी से देखा जा सकता है कि समामेलनों का विरोध या तो जातियों के आत्मनिर्णय की स्वीकृति बन जाता है अथवा status quo* की पैरवी करनेवाली शांतिवादी फ़िक़रेबाज़ी पर आधारित है, जो **किसी भी**, यहां तक कि क्रांतिकारी हिंसा की भी विरोधी है। इस तरह की फ़िक़रेबाज़ी बुनियादी रूप से झूठ है और मार्क्सवाद से मेल नहीं खाती।

८. निकट भविष्य में सर्वहारा के ठोस कार्यभार

समाजवादी क्रांति अत्यंत निकट भविष्य में शुरू हो सकती है। इस सूरत में सर्वहारा के सामने सत्ता पर अधिकार करने, बैंकों का

*यथास्थिति। – सं०

स्वत्वहरण करने तथा अन्य अधिनायकत्ववादी उपायों को कार्यान्वित करने का तात्कालिक कार्यभार आ जायेगा। बुर्जुआ लोग – खास तौर पर फ़ेबियनों और काउत्स्कीपंथियों की किस्म के बुद्धिजीवी – ऐसी घड़ी में क्रांति पर सीमित, जनतांत्रिक लक्ष्य थोपकर उसे विभक्त और निरुद्ध करने का प्रयास करेंगे। जहां **सारी** विशुद्ध जनतांत्रिक मांगें बुर्जुआजी की सत्ता के आधार-स्तंभों पर सर्वहारा के धावे के शुरू हो जाने की सूरत में एक अर्थ में क्रांति की राह में एक बाधा बन सकती हैं, वहां **समस्त** उत्पीड़ित जनगण की स्वतंत्रता (अर्थात उनके आत्मनिर्णय के अधिकार) की घोषणा करने तथा उसे प्रदान करने की आवश्यकता समाजवादी क्रांति में उतनी ही तात्कालिक हो जायेगी, जितनी कि वह, उदाहरण के लिए, जर्मनी में १८४८ में तथा रूस में १६०५ में बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति की विजय के लिए थी।

परंतु यह संभव है कि समाजवादी क्रांति के शुरू होने तक ५, १० या इससे भी ज़्यादा वर्ष गुज़र जायें। यह जनसाधारण की ऐसी भावना में क्रांतिकारी शिक्षा-दीक्षा का समय होगा, जो समाजवादी अंधराष्ट्रवादियों तथा अवसरवादियों के मज़दूर पार्टी में आने और जीत हासिल करने को, जैसा कि १६१४–१६१६ में हुआ था, असंभव बना देगी। समाजवादियों को जनसाधारण को समझाना चाहिए कि उपनिवेशों तथा आयरलैंड के लिए अलग होने की स्वतंत्रता की मांग न करनेवाले अंग्रेज़ समाजवादी, उपनिवेशों, अल्सासवासियों, डेनों और पोलों के लिए अलग होने की स्वतंत्रता की मांग न करनेवाले, अपने क्रांतिकारी प्रचार तथा क्रांतिकारी जनव्यापी कार्यकलाप का सीधे जातियों के उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष के क्षेत्र में प्रसार न करनेवाले, उत्पीड़क राष्ट्र के सर्वहारा के बीच व्यापकतम ग़ैर-क़ानूनी प्रचार करने के लिए, सड़कों पर प्रदर्शनों तथा क्रांतिकारी जनव्यापी कार्रवाई के लिए ज़ेबर्न की घटना जैसे प्रसंगों का उपयोग न करनेवाले जर्मन समाजवादी, फ़िनलैंड, पोलैंड, उक्रइना, आदि के लिए अलग होने की स्वतंत्रता, आदि की मांग न करनेवाले रूसी समाजवादी – ऐसे समाजवादी अंधराष्ट्रवादियों के रूप में, खून से सने हुए घिनौने साम्राज्यवादी राजतंत्रों तथा साम्राज्यवादी बुर्जुआजी के टहलुओं के रूप में पेश आते हैं।

६. आत्मनिर्णय के प्रति रूसी तथा पोलिश सामाजिक-जनवादियों तथा दूसरे इंटरनेशनल का रुख़

आत्मनिर्णय के प्रश्न पर रूस के क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों तथा पोलिश सामाजिक-जनवादियों के बीच मतभेद १६०३ में ही, उस कांग्रेस में उभरकर सामने आ गये थे, जिसने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का कार्यक्रम स्वीकृत किया था तथा जिसने पोलिश सामाजिक-जनवादी प्रतिनिधिमंडल के विरोध के बावजूद इस कार्यक्रम में अनुच्छेद ६ शामिल किया था, जिसमें जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को मान्यता दी गयी थी। तब से पोलिश सामाजिक-जनवादियों ने अपनी पार्टी की ओर से कभी भी यह प्रस्ताव नहीं दुहराया कि हमारी पार्टी के कार्यक्रम से अनुच्छेद ६ निकाल दिया जाये या उसके स्थान पर कोई दूसरा सूत्र रखा जाये।

रूस में, जहां उत्पीड़ित जातियों के लोग आबादी के ५७ प्रतिशत से कम नहीं हैं, यानी १० करोड़ से ऊपर हैं, जहां ये जातियां अधिकांशतः सीमावर्ती क्षेत्रों में बसी हुई हैं, जहां उनमें से कुछ महत रूसियों से कहीं ज़्यादा सुसंस्कृत हैं, जहां राजनीतिक व्यवस्था विशेष रूप से बर्बर तथा मध्ययुगीन है, जहां बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति अभी निष्पन्न नहीं हुई है – वहां, रूस में ज़ारशाही द्वारा उत्पीड़ित जातियों के रूस से मुक्त रूप से विलग होने के अधिकार की मान्यता सामाजिक-जनवादियों के लिए अपने जनतांत्रिक तथा समाजवादी लक्ष्यों को बढ़ावा देने के लिए एकदम अनिवार्य है। जनवरी, १६१२ में पुनःस्थापित हमारी पार्टी ने १६१३ में एक प्रस्ताव[82] स्वीकार करके आत्मनिर्णय के अधिकार की अभिपुष्टि की तथा इसकी ठीक उपरोक्त ठोस अर्थ में व्याख्या की। १६१४–१६१६ में बुर्जुआजी तथा अवसरवादी समाजवादियों (रुबानोविच, प्लेखानोव, 'नाशे देलो'[83], आदि) के बीच महत रूसी अंधराष्ट्रवाद के नंगे नाच ने हमें इस मांग पर ज़ोर देने तथा यह मानने के लिए और भी ज़्यादा प्रेरित किया है कि इसे अस्वीकार करनेवाले महत रूसी अंधराष्ट्रवाद और ज़ारशाही के वास्तविक समर्थकों का काम करते हैं। हमारी पार्टी घोषित करती है कि वह

आत्मनिर्णय के अधिकार के विरुद्ध इस तरह की कार्रवाइयों के लिए कोई भी ज़िम्मेवारी सर्वथा निर्णायक रूप से अस्वीकार करती है।

जातीय प्रश्न पर पोलिश सामाजिक-जनवादियों की स्थिति के नवीनतम निरूपण (ज़िम्मरवाल्ड सम्मेलन[84] में पोलिश सामाजिक-जनवादियों के घोषणापत्र) में ये विचार निहित हैं:

यह घोषणापत्र जर्मन तथा दूसरी सरकारों की निंदा करता है, जो **"पोलिश जनता को अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करने की संभावना से वंचित कर"** "पोलिश प्रदेशों" को हरजानों के आगामी खेल में एक मोहरा मानती हैं। "पोलिश सामाजिक-जनवादी **पूरे देश की फिर से काट-छांट करने और उसे टुकड़ों में बांटने** का दृढ़ता और गंभीरता-पूर्वक विरोध करते हैं..." वे उन समाजवादियों की लानत-मलामत करते हैं, जिन्होंने **"उत्पीड़ित जनगण की मुक्ति** का कार्य" होहेन-ज़ोलेर्नों पर छोड़ दिया है। वे यह विश्वास व्यक्त करते हैं कि इस आसन्न संघर्ष में, समाजवाद के लिए संघर्ष में अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी सर्वहारा की शिरकत ही **"जातियों के उत्पीड़न की बेड़ियों को तोड़ेगी** तथा **विदेशी** शासन के **सब रूपों को** नष्ट करेगी, **पोलिश जनता के लिए** जनगण की सुसंगति में **समानताप्राप्त** सदस्य के रूप में मुक्त, सर्वतोमुखी विकास की संभावना सुनिश्चित करेगी"। घोषणापत्र युद्ध को **"पोलों के लिए" "दोनों तरह से** भ्रातृघातक" मानता है (अंत-र्राष्ट्रीय समाजवादी आयोग का बुलेटिन, अंक २,२७ सितंबर, १९१५, पृ० १५। रूसी अनुवाद 'इंटरनेशनल और युद्ध' लेख-संग्रह में, पृ० ९७)।

ये स्थापनाएं जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता से सारतः भिन्न नहीं हैं, हालांकि उनके राजनीतिक निरूपण दूसरे इंटरनेशनल के अधिकांश कार्यक्रमों तथा प्रस्तावों से भी ज़्यादा अस्पष्ट और ज़्यादा अनिश्चित हैं। इन विचारों को सटीक राजनीतिक निरूपणों की शक्ल में व्यक्त करने तथा पूंजीवादी अथवा केवल समाजवादी व्यवस्था पर उनकी प्रयोज्यता को निश्चित करने की कोई भी चेष्टा जातियों के आत्मनिर्णय को अस्वीकार करने की पोलिश सामाजिक-जनवादियों की ग़लती को और भी स्पष्ट रूप में प्रदर्शित कर देगी।

१८९६ की लंदन की अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस के निर्णय की, जिसने जातियों के आत्मनिर्णय को मान्यता दी थी, अनुपूर्ति उपरोक्त स्थापनाओं के आधार पर यह निर्दिष्ट करते हुए की जानी चाहिए: (१) साम्राज्यवाद के अंतर्गत इस मांग की विशेष तात्कालिकता, (२) विचाराधीन मांग सहित राजनीतिक जनतंत्र की सारी मांगों की राजनीतिक सापेक्षता और उनका वर्ग अंतर्य, (३) उत्पीड़क जातियों के सामाजिक-जनवादियों तथा उत्पीड़ित जातियों के सामाजिक-जनवादियों के ठोस कार्यभारों में अंतर करने की आवश्यकता, (४) अवसर-वादियों तथा काउत्स्कीपंथियों द्वारा आत्मनिर्णय की असंगत, शुद्धतः शाब्दिक और इस कारण अपने राजनीतिक महत्व में पाखंडपूर्ण मान्यता, (५) अंधराष्ट्रवादियों की उन सामाजिक-जनवादियों, ख़ास तौर पर महाशक्तियों के सामाजिक-जनवादियों (महत रूसी, आंग्ल-अमरीकी, जर्मन, फ़्रांसीसी, इतालवी, जापानी, आदि) से वास्तविक सादृश्यता, जो "अपने" राष्ट्रों द्वारा उत्पीड़ित उपनिवेशों तथा जातियों के अलग होने की स्वतंत्रता की हिमायत नहीं करते, (६) विचाराधीन मांग के लिए तथा राजनीतिक जनतंत्र की सारी बुनियादी मांगों के लिए संघर्ष को बुर्जुआ सरकारों का तख़्ता उलटने और समाजवाद हासिल करने के लिए क्रांतिकारी जनव्यापी संघर्ष के सीधे मातहत करने की आवश्यकता।

कतिपय छोटी जातियों के, ख़ास तौर पर पोलिश सामाजिक-जनवादियों के, जिन्हें राष्ट्रवादी नारों से जनता को छलनेवाले पोलिश बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध अपने संघर्ष ने आत्मनिर्णय की ग़लत अस्वीकृति तक पहुंचा दिया है, दृष्टिकोण को इंटरनेशनल में लाना सैद्धांतिक ग़लती, मार्क्सवाद के स्थान पर प्रूदोंवाद को रखना होगा, अमल में उसका अर्थ महाशक्ति राष्ट्रों के सबसे ख़तरनाक अंधराष्ट्रवाद तथा अवसरवाद का अनैच्छिक समर्थन होगा।

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के मुखपत्र 'सोत्सिआल-देमोक्रात' का संपादकमंडल

पुनश्च। ३ मार्च, १९१६ के अभी-अभी निकले *Neue Zeit* के अंक में काउत्स्की जर्मन अंधराष्ट्रवाद के सबसे घिनौने प्रतिनिधि आस्टर-लिट्ज़ की ओर खुलेआम मसीही मेल-मिलाप का हाथ बढ़ाते हैं, हाप्स-बुर्गी आस्ट्रिया की उत्पीड़ित जातियों के लिए अलग होने की स्वतंत्रता

अस्वीकार करते हैं, परंतु हिंडेनबुर्ग और विल्हेल्म द्वितीय की भृत्योचित सेवा प्रदर्शित करने के वास्ते **रूसी** पोलैंड के लिए यह स्वतंत्रता स्वीकार करते हैं। काउत्स्कीपंथ के इससे बेहतर आत्म-अनावरण की कामना नहीं की जा सकती थी!

जनवरी – फ़रवरी, १६१६ में लिखित।

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
पांचवां रूसी संस्करण,
खंड २७, पृ० २५२–२६६

आत्मनिर्णय संबंधी बहस के परिणाम

ज़िम्मरवाल्डी वामपंथी दल की मार्क्सवादी पत्रिका 'अग्रदूत' (*Vorbote*,[85] अंक २, अप्रैल, १६१६) में हमारे केंद्रीय मुखपत्र 'सोत्सि-आल-देमोक्रात'[86] के तथा पोलिश सामाजिक-जनवादी विरोध-पक्ष के मुखपत्र 'गाज़ेता रोबोत्निचा'[87] के संपादकमंडलों द्वारा हस्ताक्षरित जातियों के आत्मनिर्णय के पक्ष तथा विपक्ष में स्थापनाएं प्रकाशित की गयी हैं। ऊपर पाठक प्रथमोक्त स्थापनाओं का पुनर्मुद्रित रूप और अंतोक्त का अनुवाद पायेंगे।* वस्तुतः यह पहली बार है, जब यह प्रश्न अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इतने विशद रूप में प्रस्तुत किया गया है: बीस साल पहले, १८६५–१८६६ में, जब १८६६ की लंदन की अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस होनेवाली थी, जर्मन मार्क्सवादी पत्रिका *Neue Zeit* के कॉलमों में जो बहस चली थी, उसमें रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग, कार्ल काउत्स्की तथा पोलिश "स्वतंत्रों" (पोलैंड की स्वतंत्रता के समर्थक, पोलिश समाजवादी पार्टी) ने, जो तीन भिन्न-भिन्न मतों का प्रतिनिधित्व करते थे, इस प्रश्न को केवल पोलैंड के संबंध में उठाया था।[88] अब तक, जहां तक हमारी जानकारी है, डचों और पोलों ने ही आत्मनिर्णय के प्रश्न पर बाक़ायदा बहस की है। हम यह आशा करें कि 'अग्रदूत' इस सवाल पर, जो आज इस क़दर फ़ौरी है, अंग्रेज़ों, अमरीकियों,

* लेनिन द्वारा उपरिलिखित प्रथमोक्त स्थापनाएं प्रस्तुत पुस्तक के पृ० १३४–१५० पर देखें। अंतोक्त स्थापनाएं इस संस्करण में शामिल नहीं हैं। – सं०

फ्रांसीसियों, जर्मनों और इतालवियों के बीच बहस को आगे बढ़ा सकेगा। आधिकारिक समाजवाद, जिसका प्रतिनिधित्व "स्वयं अपनी" सरकारों के प्रत्यक्ष समर्थक प्लेखानोव, डेविड मंडली, तथा अवसरवाद के प्रच्छन्न हिमायती काउत्स्कीपंथी (जिनमें अक्सेलरोद, मार्तोव, छेईद्ज़े और दूसरे लोग शामिल हैं), दोनों ही करते हैं, इस सवाल पर इतना झूठ बोलता रहा है कि अनिवार्यतः बहुत दिनों तक, एक ओर, चुप्पी साधकर समस्या से कतराने की कोशिश की जायेगी और दूसरी ओर, इन "कमबख्त सवालों" के "सीधे-सीधे जवाब" के लिए मजदूरों द्वारा मांगें की जायेंगी। हम अपने पाठकों को विदेश के समाजवादियों के बीच इन प्रवृत्तियों के संघर्ष से अवगत रखने का प्रयास करेंगे।

हम रूसी सामाजिक-जनवादियों के लिए इस समस्या का विशिष्ट महत्व है: यह बहस १६०३ और १६१३ में हुई बहसों का एक सिलसिला है;[89] युद्धकाल में यह प्रश्न हमारी पार्टी के कुछ सदस्यों के विचारों में कुछ ढुलमुलपन का कारण रहा है; ग्वोज़्देव अथवा अंधराष्ट्रवादी मज़दूर पार्टी के मार्तोव तथा छेईद्ज़े जैसे प्रमुख नेताओं ने इस समस्या के सारतत्व से बचने की अपनी कोशिश में जो छल-प्रपंच रचा है, उससे यह प्रश्न और भी तीखा बन गया है। इसीलिए अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो बहस शुरू हुई है, उसका कम से कम प्रारंभिक लेखा-जोखा निकालना आवश्यक हो गया है।

जैसा कि स्थापनाओं से देखा जा सकता है, हमारे पोलिश साथियों ने हमारे कुछ तर्कों का, उदाहरण के लिए, मार्क्सवाद तथा प्रूदोंवाद के संबंध में तर्कों का, सीधा जवाब दिया है। परंतु अधिकांशतः वे हमें सीधा जवाब न देकर हमारे दावों के मुक़ाबले में **अपने** दावे पेश करके परोक्ष उत्तर देते हैं। आइये, उनके प्रत्यक्ष तथा परोक्ष, दोनों प्रकार के उत्तरों की परीक्षा करें।

हमने ज़ोर देकर कहा है कि समाजवाद के अंतर्गत जातियों के आत्मनिर्णय को अंजाम देने से इन्कार करना समाजवाद के प्रति विश्वासघात करना होगा। जवाब में हमसे कहा जाता है कि "आत्मनिर्णय का अधिकार समाजवादी समाज पर लागू नहीं किया जा सकता"। यह एक आधारभूत अंतर है। उसका स्रोत क्या है?

१. समाजवाद तथा जातियों का आत्मनिर्णय

अपनी आपत्तियां प्रकट करते हुए हमारे विरोधी कहते हैं: "हम जानते हैं कि समाजवाद हर तरह के जातीय उत्पीड़न का उन्मूलन करता है, क्योंकि वह उन वर्ग हितों को ही उन्मूलित कर देता है, जो जातियों के उत्पीड़न को जन्म देते हैं..." जातियों के उत्पीड़न के उन्मूलन की **आर्थिक** पूर्वापेक्षाओं के बारे में इस निर्विवाद तथा दीर्घकाल से सुपरिचित तर्क को उस बहस से क्या लेना-देना है, जिसका संबंध **राजनीतिक** उत्पीड़न के **एक** रूप से, अर्थात एक जाति को बलात दूसरी जाति की राजकीय सीमाओं के भीतर रखने से है? वास्तव में यह राजनीतिक सवालों से कतराने की एक कोशिश भर है! आगे चलकर जो तर्क दिये गये हैं, उनसे हमारा यह विश्वास और भी प्रबल हो जाता है कि हमारी धारणा सही है:

> "हमारे पास यह मानने का कोई आधार नहीं है कि समाजवादी समाज में एक आर्थिक तथा राजनीतिक इकाई के रूप में जाति का अस्तित्व बना रहेगा। इस बात की पूर्ण संभावना है कि जाति मात्र एक सांस्कृतिक तथा भाषात्मक इकाई का स्वरूप ही ग्रहण करे, क्योंकि किसी समाजवादी सांस्कृतिक प्रदेश का क्षेत्रीय विभाजन, यदि इसे अमल में लाया जाता हो, केवल उत्पादन की आवश्यकताओं के अनुसार किया जा सकता है; इस विभाजन का सवाल स्वभावतः अलग-अलग जातियों द्वारा पृथक रूप से तथा अपनी पूर्ण प्रभुसत्ता को अक्षुण्ण रखते हुए (जैसाकि "आत्मनिर्णय के अधिकार" द्वारा अपेक्षित है) नहीं निबटाया जायेगा, बल्कि उसमें दिलचस्पी रखनेवाले सभी नागरिकों द्वारा **सम्मिलित रूप से निर्णीत किया जायेगा...**"

आत्मनिर्णय के स्थान पर **सम्मिलित** निर्णय का यह अंतिम तर्क हमारे पोलिश साथियों को ऐसा भाया है कि वे अपनी स्थापनाओं में उसे **तीन बार** दोहराते हैं! परंतु बार-बार दोहराये जाने से ही यह अक्तूबरवादी तथा प्रतिक्रियावादी तर्क सामाजिक-जनवादी तर्क नहीं बन जाता, इसलिए कि सभी प्रतिक्रियावादी तथा बुर्जुआ लोग राज्य विशेष की सीमाओं के भीतर जबरदस्ती रखी गयी जातियों को यह अधिकार देते हैं कि वे सामान्य संसद में अपने भाग्य का "सम्मिलित रूप से

निर्णय" करें। विल्हेल्म द्वितीय ने भी बेल्जियाइयों को सामान्य जर्मन संसद में जर्मन साम्राज्य की नियति का "सम्मिलित रूप से निर्णय" करने का अधिकार दिया है।

हमारे विरोधी ठीक विवादाधीन प्रश्न से, उसी एक मामले से, एकमात्र जिसे बहस के लिए पेश किया गया है, अर्थात अलगाव के अधिकार से, कतराने की कोशिश करते हैं। अगर यह बात इतनी दुखद न होती, तो उस पर हंसी ही आती!

हमने अपनी पहली ही स्थापना में कहा था कि उत्पीड़ित जातियों की मुक्ति राजनीतिक क्षेत्र में दो रूपांतरणों की पूर्वापेक्षा करती है: (१) सभी जातियों के लिए पूर्ण समानता। यह बात निर्विवाद है और उसका संबंध उन घटनाओं से ही है, जो राज्य के अंदर होती हैं; (२) राजनीतिक विलग्नता की आज़ादी।* यहां इशारा राजकीय सीमा-निर्धारण की ओर है। **केवल** यही बात विवादग्रस्त है, और हमारे प्रतिपक्षी ठीक इसी बात के बारे में चुप्पी साधे हुए हैं। वे राज्य की सीमाओं के बारे में या राज्य तक के बारे में नहीं सोचना चाहते। यह १८६४–१६०२ के काल के "अर्थवाद"[७०] के ही जैसा एक तरह का "साम्राज्यवादी अर्थवाद" है, जो इस प्रकार तर्क करता था: पूंजीवाद विजयी हुआ है, **लिहाज़ा** राजनीतिक सवालों को उठाने की ज़रूरत नहीं है! साम्राज्यवाद विजयी हुआ है, **लिहाज़ा** राजनीतिक सवालों को उठाने की ज़रूरत नहीं है! इस प्रकार का अराजनीतिक सिद्धांत बुनियादी तौर पर मार्क्सवादविरोधी है।

अपनी कृति 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' में मार्क्स ने लिखा है: "पूंजीवादी और कम्युनिस्ट समाज के बीच एक के दूसरे में क्रांतिकारी रूपांतरण का काल है। इसका समवर्ती एक राजनीतिक संक्रमण-काल भी है, जिसमें राज्य सर्वहारा के क्रांतिकारी अधिनायकत्व के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।" अभी तक यह सचाई समाजवादियों के लिए निर्विवाद रही है और उसमें इस बात की मान्यता निहित है कि जब तक विजयी समाजवाद विकसित होकर पूर्ण कम्युनिज़्म का रूप ग्रहण नहीं करता, **राज्य** का अस्तित्व बना रहेगा। राज्य के **विलोपन** के बारे में एंगेल्स की उक्ति मशहूर है। पहली ही स्थापना में

---

* देखें प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १३४–१३५।–**सं०**

हमने जान-बूझकर इस बात पर जोर दिया कि जनतंत्र राज्य का एक रूप है और राज्य के विलोपन के साथ वह भी विलुप्त हो जायेगा। जब तक हमारे प्रतिपक्षी मार्क्सवाद के स्थान पर एक प्रकार का नया, "राज्य-निरपेक्ष" दृष्टिकोण स्थापित नहीं करते, उनके तर्क एक बहुत बड़ी ग़लती होंगे।

राज्य की बात (और **इसका अर्थ है** उसके **सीमा**-निर्धारण की बात!) करने के बजाय वे "समाजवादी सांस्कृतिक प्रदेश" की बात करते हैं, यानी वे जान-बूझकर इस संबंध में एक ऐसा अस्पष्ट फ़िक़रा चुनते हैं कि राज्य संबंधी सभी प्रश्न मिट जाते हैं! इस प्रकार हम यह हास्यास्पद द्विरुक्ति पाते हैं: यदि राज्य का अस्तित्व नहीं है, तो निस्संदेह सीमाओं का प्रश्न उठ ही नहीं सकता। तब समूचा जनतांत्रिक-राजनीतिक कार्यक्रम अनावश्यक हो जाता है। राज्य का "विलोपन" होने की सूरत में किसी गणतंत्र का भी अस्तित्व नहीं रह जायेगा।

स्थापना ५ (पाद-टिप्पणी)* में हमने जिन लेखों का हवाला दिया है, उनमें जर्मन अंधराष्ट्रवादी लेंश ने एंगेल्स के लेख 'पो और राइन नदियां' से एक दिलचस्प उद्धरण दिया है। इस लेख में एंगेल्स ने और बातों के साथ यह भी लिखा है कि अनेक छोटी-छोटी तथा जीवन-अक्षम जातियों को आत्मसात कर लेनेवाले ऐतिहासिक विकास-क्रम में "विशाल तथा जीवनक्षम यूरोपीय राष्ट्रों की सीमाएं" अधिकाधिक आबादी की "भाषा तथा सहभावनाओं" द्वारा निर्धारित हो रही हैं। ऐसी सीमाओं को एंगेल्स ने "स्वाभाविक" सीमाओं की संज्ञा दी है। यूरोप में १८४८–१८७१ के प्रगतिशील पूंजीवाद के काल में ऐसा ही हुआ था। आज प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी पूंजीवाद जनतांत्रिक रूप से निर्धारित इन सीमाओं को अधिकतर मामलों में **ध्वस्त कर रहा है।** इसके पूरे आसार हैं कि साम्राज्यवाद अपने उत्तराधिकारी समाजवाद के लिए **न्यूनतर** जनतांत्रिक सीमाओं, यूरोप तथा संसार के अन्य भागों में अनेक समामेलनों की विरासत छोड़ेगा। तो फिर क्या? क्या विजयी समाजवाद सर्वत्र पूर्ण जनतंत्र की पुनःस्थापना करते हुए तथा उसे लागू करते हुए राजकीय सीमाओं का **जनतांत्रिक** निर्धारण नहीं करेगा?? क्या वह आबादी की "सहभावनाओं" का लिहाज़ नहीं करना

---

* देखें प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १४२।–**सं०**

चाहेगा? इन सवालों को उठाना ही यह साफ़-साफ़ देखने के लिए काफ़ी है कि हमारे पोलिश सहयोगी मार्क्सवाद से "साम्राज्यवादी अर्थवाद" की ओर लुढ़क रहे हैं।

मार्क्सवाद का विकृतीकरण करनेवाले पुराने "अर्थवादी" मज़दूरों से कहते थे कि मार्क्सवादियों के लिए "केवल" "आर्थिक पहलू" महत्वपूर्ण है। लगता है कि नये "अर्थवादी" या तो यह सोचते हैं कि विजयी समाजवाद का जनतांत्रिक राज्य सीमाओं के बिना अस्तित्व में रहेगा (भूतद्रव्य रहित "संवेदनाओं के एक संसृष्टि" की तरह), या यह कि ये सीमाएं "केवल" उत्पादन की आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित की जायेंगी। वास्तव में ये सीमाएं जनतांत्रिक ढंग से, अर्थात आबादी की मरज़ी और "सहभावनाओं" के मुताबिक़ निर्धारित की जायेंगी। पूंजीवाद इन सहभावनाओं का दमन करता है और जातियों के पुनर्मिलन के रास्ते में और भी बड़ी अड़चनें डालता है। वर्ग उत्पीड़न **के बिना** उत्पादन संगठित करते हुए, राज्य के **सभी** सदस्यों की खुशहाली सुनिश्चित करते हुए समाजवाद आबादी की "सहभावनाओं" को **पूरी गुंजाइश** देता है और इस प्रकार जातियों के पुनर्मिलन तथा विलयन को बढ़ावा देता तथा अत्यधिक त्वरित करता है।

पाठक को भारी-भरकम और भोंडे "अर्थवाद" से थोड़ी राहत देने के लिए, आइये, हम एक ऐसे समाजवादी लेखक का तर्क उद्धृत करें, जो हमारे इस विवाद में शामिल नहीं हैं। यह लेखक हैं ओटो बावेर, जिनका खुद एक "चहेता छोटा सा मुद्दा" भी है – "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता", परंतु जो बहुत-से महत्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में सही तर्क करते हैं। उदाहरण के लिए, अपनी पुस्तक 'जातीय प्रश्न तथा सामाजिक-जनवाद' के परिच्छेद २९ में वह **साम्राज्यवादी** नीतियों पर परदा डालने के लिए राष्ट्रीय विचारधारा के उपयोग का बहुत सही उल्लेख करते हैं। 'समाजवाद तथा जातीयता का सिद्धांत', परिच्छेद ३० में वह लिखते हैं:

"समाजवादी समुदाय पूरी जातियों को बल-प्रयोग द्वारा अपने संघटन में सम्मिलित करने में कभी समर्थ नहीं हो सकेगा। ऐसे जनसमुदाय की कल्पना कीजिये, जो राष्ट्रीय संस्कृति के सभी वरदानों का उपभोग करता है, जो विधान तथा शासन में पूर्ण तथा सक्रिय भाग लेता है और अंततः जिसे

अस्त्र-शस्त्र सुलभ हैं – क्या ऐसी जाति को बल-प्रयोग द्वारा किसी विदेशी समाज-व्यवस्था के शासन के अधीन करना संभव हो सकता है? हर प्रकार की राज्य-सत्ता का आधार शस्त्र-बल है। एक विलक्षण कार्यविधि की बदौलत आज की जन-सेना अब भी ठीक पुराने ज़माने की सामंती तथा भाड़े की सेनाओं की तरह किसी निश्चित व्यक्ति, परिवार अथवा वर्ग के हाथों में औज़ार बनी हुई है। समाजवादी समाज के जनतांत्रिक समुदाय की सेना और कुछ नहीं, सशस्त्र जनता ही है, क्योंकि उसमें अत्यधिक सुसंस्कृत लोग हैं, जो स्वेच्छा से समाजवादी कारखानों में काम करते हैं और राजनीतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पूरा-पूरा भाग लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में विदेशी शासन की संभावना सर्वथा विलुप्त हो जाती है।"

यह सब कुछ सच है। पूंजीवाद के अंतर्गत जातीय (और आम तौर पर राजनीतिक प्रकार के) उत्पीड़न का उन्मूलन करना **असंभव है।** ऐसा कर सकने के लिए वर्गों का उन्मूलन, अर्थात समाजवाद की स्थापना **आवश्यक है।** परंतु अर्थतंत्र पर आधारित होते हुए भी समाजवाद कदापि अर्थतंत्र ही बनकर नहीं रह जाता। जातियों के उत्पीड़न के उन्मूलन के लिए एक आधार – समाजवादी उत्पादन – आवश्यक है, परंतु इस आधार पर राज्य का जनतांत्रिक संगठन, जनतांत्रिक सेना, इत्यादि **भी** आवश्यक हैं। पूंजीवाद को समाजवाद में रूपांतरित कर सर्वहारा जातीय उत्पीड़न के पूर्ण उन्मूलन की **संभावना** उत्पन्न करता है; यह संभावना "केवल" तभी – "केवल" तभी! – **वास्तविकता** बनती है, जब आबादी की "सहभावनाओं" के अनुरूप राज्य के सीमा-निर्धारण समेत, अलगाव के पूर्ण स्वातंत्र्य समेत सभी क्षेत्रों में जनतंत्र की स्थापना की जाये। और फिर इस आधार पर न्यून से न्यून जातीय टकराव का अथवा न्यून से न्यून जातीय अविश्वास का **व्यावहारिक रूप से** पूर्ण उन्मूलन होता जायेगा, जातियों का त्वरित पुनर्मिलन तथा विलयन होता जायेगा, जो राज्य का **विलोप होने पर** पूर्ण हो जायेगा। यह है मार्क्सवादी सिद्धांत, जिससे हमारे पोलिश सहयोगी ग़लती से भटक गये हैं।

२. क्या साम्राज्यवाद के अंतर्गत जनतंत्र "साध्य" है?

जातियों के आत्मनिर्णय के ख़िलाफ़ पोलिश सामाजिक-जनवादियों द्वारा चलायी जानेवाली पुरानी बहस पूर्णतः इस तर्क पर टिकी हुई है कि पूंजीवाद के अंतर्गत यह आत्मनिर्णय "असाध्य" है। १९०३ में ही हम, 'ईस्क्रा'-पंथियों ने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस के कार्यक्रम आयोग में इस तर्क का मज़ाक़ उड़ाया था और कहा था कि वह (दिवंगत) अर्थवादियों द्वारा मार्क्सवाद की विकृति की पुनरावृत्ति है। अपनी स्थापनाओं में हमने इस ग़लती की विशेषकर विस्तार से चर्चा की है और ठीक इसी बात के बारे में, जिसमें पूरी बहस का सैद्धांतिक सारतत्व निहित है, पोलिश साथी हमारे **किसी भी** तर्क का उत्तर देना नहीं चाहते थे (अथवा देने में असमर्थ थे?)।

आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्णय की असंभाव्यता सिद्ध करने के लिए एक ऐसे आर्थिक विश्लेषण की दरकार होगी, जिसका मशीनों के इस्तेमाल की मनाही या श्रम-मुद्रा के परिचलन, आदि की असाध्यता सिद्ध करने के लिए उपयोग किया जाता था। इस प्रकार का विश्लेषण करने की कोई कोशिश भी नहीं कर रहा है। यह कहने की कोई भी कोशिश नहीं करेगा कि पूंजीवाद के अंतर्गत एक भी देश में "श्रम-मुद्रा" को उसी प्रकार "अपवादस्वरूप" चलाना संभव हुआ है, जिस प्रकार अति-घोर साम्राज्यवाद के युग में एक छोटा-सा देश अपवादस्वरूप ही असाध्य आत्मनिर्णय को कार्यान्वित कर सका, और वह भी बिना युद्ध अथवा क्रांति के (नार्वे, १९०५)।

सामान्यतः राजनीतिक जनतंत्र पूंजीवाद ढांचे का एक संभव **रूप** ही है (यद्यपि सैद्धांतिक दृष्टि से यह रूप "शुद्ध" पूंजीवाद के लिए सामान्य है)। जैसाकि तथ्य प्रकट करते हैं, पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद **सभी** राजनीतिक रूपों के दायरे में विकसित होते हैं और उन **सबको** अपने अधीन कर लेते हैं। फलतः जनतंत्र के किसी **एक** रूप की और किसी **एक** मांग की "असाध्यता" की बात करना बुनियादी सैद्धांतिक ग़लती है।

चूंकि हमारे पोलिश सहयोगियों ने इन तर्कों का उत्तर नहीं दिया है, लिहाज़ा हम इस सवाल पर होनेवाली बहस को बंद समझने के लिए

मजबूर हैं। सुस्पष्टता के लिए, कह लीजिये, हमने यह बहुत ठोस दावा किया कि वर्तमान युद्ध के रणनीतिक तथा अन्य पहलुओं के आधार पर आज पोलैंड की पुनःस्थापना की "साध्यता" से इन्कार करना "हास्यास्पद" होगा। लेकिन इसका कोई जवाब नहीं दिया गया!

पोलिश साथियों ने बस एक प्रत्यक्षतः ग़लत बयान को **दोहराया** (§ २, १) और कहा कि "विदेशी प्रदेशों के समामेल के प्रश्नों में राजनीतिक जनतंत्र के रूपों को अलग धकेला दिया जाता है; निरा बल-प्रयोग निर्णायक होता है... पूंजी जनता को कभी इसकी इजाज़त नहीं देगी कि वह अपने राज्य की सीमाओं के सवाल का फ़ैसला करे..." गोया "पूंजी" "जनता को इस बात की इजाज़त दे" सकती है कि वह **उसकी** प्रशासन-सेवा के अधिकारियों को, साम्राज्यवाद के सेवकों को चुने! या गोया राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र की या नियमित सेना के स्थान पर मिलीशिया की स्थापना जैसे महत्वपूर्ण जनतांत्रिक सवालों के कोई भी वज़नी फ़ैसले **सामान्यतः** "निरे बल-प्रयोग" के बिना कल्पनीय हैं! पोलिश साथी आत्मनिष्ठ **रूप** से मार्क्सवाद को "गहनतर" बनाना चाहते हैं, परंतु वे इस काम में नाकाम ही हो रहे हैं। **वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से** असाध्यता के बारे में उनकी लफ़्फ़ाज़ी अवसरवाद है, क्योंकि चुपचाप यह मान लिया जाता है कि क्रांतियों की एक शृंखला के बग़ैर यह "असाध्य" है, उसी प्रकार जैसे समग्र रूप से जनतंत्र समूचे तौर पर उसकी सारी मांगें साम्राज्यवाद के अंतर्गत असाध्य हैं।

हमारे पोलिश सहयोगियों ने केवल एक बार, § २,१ के अंत में, अल्सास के बारे में बहस के दौरान "साम्राज्यवादी अर्थवाद" के दृष्टिकोण को त्यागा और जनतंत्र के एक रूप के प्रश्न के ठोस उत्तर के साथ आये और "आर्थिक पहलू" के सामान्य संकेतों से ही संतोष नहीं कर लिया। और उनका ठीक यही दृष्टिकोण ग़लत था! उन्होंने लिखा कि यदि **कुछ** अल्सासी फ़्रांसीसियों से पूछे बिना फ़्रांस पर अल्सास के साथ संयोजन "थोप दें", बावजूद इस बात के कि अल्सास का एक भाग जर्मनी की ओर अभिमुख हो और इस संयोजन से युद्ध का ख़तरा पैदा होता हो, तो यह "पार्थक्यवाद" होगा, "अजनतांत्रिक" होगा!!! उलझाव सर्वथा मनोरंजक है: आत्मनिर्णय में उत्पीड़क राज्य से **अलग होने** की स्वतंत्रता की मान्यता निहित है (यह स्वतःस्पष्ट है और अपनी स्थापनाओं में हमने उस पर विशेष

बल दिया है) ; परंतु यह बात कि किसी राज्य के साथ संयोजन में **उस राज्य की** सहमति की मान्यता निहित है, एक ऐसी चीज़ है, जिसका राजनीति में ज़िक्र करने का "रिवाज नहीं" है, उसी प्रकार जैसे आर्थिक क्षेत्र में मुनाफ़ा पाने के लिए पूंजीपति की अथवा मजदूरी पाने के लिए मज़दूर की "रज़ामंदी" की बात करना रिवाज में दाखिल नहीं है! इस तरह की बात करना ही हास्यास्पद है।

यदि कोई मार्क्सवादी राजनीतिज्ञ होना चाहता है, तो उसे अल्सास के प्रसंग में अल्सास के विलग्न होने की आज़ादी के लिए संघर्ष न करने के लिए जर्मन समाजवादी बदमाशों पर और पूरे अल्सास को बलात समामेलित करने की इच्छा रखनेवाले फ़ांसीसी बुर्जुआज़ी के साथ सुलह-मसलहत करने के लिए फ़ांसीसी समाजवादी बदमाशों पर प्रहार करना चाहिए – और "अपने-अपने" देश के साम्राज्यवाद की सेवा करने के लिए और एक पृथक राज्य, चाहे वह नन्हा-सा राज्य ही क्यों न हो, के आविर्भाव से दहशत खाने के लिए उन दोनों पर प्रहार करना चाहिए – और दिखलाना यह चाहिए कि **किस प्रकार** आत्मनिर्णय को माननेवाले समाजवादी अल्सासियों की इच्छा का उल्लंघन किये बिना इस समस्या को चंद हफ़्तों के अंदर हल कर लेंगे। इसके बजाय फ़ांसीसी अल्सासियों द्वारा अपने को ज़बरदस्ती फ़ांस पर "थोपने" के भयानक ख़तरे के बारे में तर्क करना विशुद्ध मोती उगलना है।

३. समामेलन क्या चीज़ है?

हमने अपनी स्थापनाओं (अनुच्छेद ७) में इस प्रश्न को अत्यंत निश्चित रूप से उठाया है।* पोलिश साथियों ने उसका उत्तर **नहीं** दिया: उससे **कतराते हुए** उन्होंने इस पर ज़ोर दिया कि (१) वे समामेलनों के ख़िलाफ़ हैं और (२) क्यों ख़िलाफ़ हैं, इसके कारण दिये। अवश्य ही ये प्रश्न बड़े महत्वपूर्ण हैं। परंतु ये प्रश्न **अन्य प्रकार** के हैं। अगर हम अपने उसूलों के सिद्धांततः साधार होने के बारे में, उनके स्पष्टतः तथा सटीकतः निरूपित होने के बारे में ज़रा भी चिंता करते

* देखें प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १४४ – १४५। – **सं०**

है, तो हम इस प्रश्न से नहीं कतरा सकते कि समामेलन क्या चीज़ है, कारण कि समामेलन की धारणा का हमारे राजनीतिक प्रचार तथा आंदोलन में प्रयोग किया जाता है। सहयोगियों के बीच बहस के दौरान इस सवाल से कतराने का मतलब अपनी स्थिति के त्याग के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।

हमने इस सवाल को क्यों उठाया है? इसका कारण हमने इसे उठाते समय स्पष्ट किया था। कारण यह है कि "समामेलनों का विरोध और कुछ नहीं, आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता है"। समामेलन की धारणा में साधारणतः इन बातों का समावेश है: (१) बल-प्रयोग की धारणा (ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा); (२) अन्य जाति द्वारा उत्पीड़न की धारणा ("**विदेशी**" प्रदेशों पर क़ब्ज़ा, इत्यादि) और कभी-कभी (३) status quo* के उल्लंघन की धारणा। हमने स्थापनाओं में यह इंगित किया था और उसकी कोई आलोचना नहीं की गयी है।

पूछा जा सकता है कि क्या सामाजिक-जनवादी सामान्यतः बल-प्रयोग के ख़िलाफ़ हो सकते हैं? स्पष्टतः नहीं हो सकते। मतलब यह हम समामेलनों के ख़िलाफ़ इसलिए नहीं हैं कि उनका अर्थ बल-प्रयोग है, बल्कि अन्य कारणों से हैं। इसी तरह सामाजिक-जनवादी status quo के पक्ष में भी नहीं हो सकते। आप बात को चाहे जितना घुमायें-फिरायें, हक़ीक़त यह है कि समामेलन किसी जाति के **आत्मनिर्णय का उल्लंघन** है, वह **आबादी की मरज़ी के ख़िलाफ़** राज्य की **सीमाओं** का निर्धारण है।

समामेलनों के ख़िलाफ़ होने **का मतलब है** आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में होना। "किसी जाति को राज्य विशेष की सीमाओं के भीतर ज़बरदस्ती रखे जाने के ख़िलाफ़" होना (हमने अपनी स्थापनाओं के § ४ में इसी विचार के इस किंचित परिवर्तित निरूपण का **भी जान-बूझकर** उपयोग किया**, और पोलिश साथियों ने अपने § १, ४ में, आरंभ में, यह कहकर हमें **पूर्ण स्पष्ट उत्तर दिया** कि वे "उत्पीड़ित जातियों को समामेलनकारी राज्य की सीमाओं के भीतर ज़बरदस्ती रखे जाने के ख़िलाफ़ है") – और यह **वही बात** है, जो जातियों के आत्मनिर्णय के पक्ष में होना है।

* यथास्थिति। – **सं०**

** देखें प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १२६। – **सं०**

हम शब्दों को लेकर बहस में पड़ना नहीं चाहते। यदि कोई पार्टी ऐसी है, जो अपने कार्यक्रम में (अथवा सभी के लिए अनिवार्यतः स्वीकार्य प्रस्ताव में – किसी भी रूप में, इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता) कहती है कि वह समामेलनों के ख़िलाफ़ है*, उत्पीड़ित जातियों को **अपने** राज्य की सीमाओं के भीतर ज़बरदस्ती रखे जाने के ख़िलाफ़ है, तो हम उस पार्टी के साथ सैद्धांतिक रूप में अपनी पूर्ण सहमति प्रकट करते हैं। "आत्मनिर्णय" **शब्द** के लिए हठ करना एक **बेतुकी** बात होगा। और यदि हमारी पार्टी में ऐसे लोग हैं, जो **शब्दों** को इसी भावना के अनुरूप बदलना चाहते हैं, हमारी पार्टी के कार्यक्रम के अनुच्छेद ६ को अन्य प्रकार से सूत्रबद्ध करना चाहते हैं, तो हम **ऐसे** साथियों के साथ अपने मतभेद को कदापि सैद्धांतिक प्रकार का नहीं समझते!

प्रश्न केवल हमारे नारों की राजनीतिक स्पष्टता का तथा उनके सैद्धांतिक रूप से युक्तियुक्त होने का है।

इस सवाल के बारे में – जिसकी अहमियत से, ख़ासकर आज लड़ाई की वजह से, कोई इन्कार नहीं करता – जो ज़बानी बहसें हुई हैं, उनमें यह तर्क सामने आया है (अख़बारों में वह हमारी नज़र में नहीं आया है): एक जानी-बूझी बुराई **के विरोध** का अर्थ अनिवार्यतः उस बुराई को प्रतिषिद्ध करनेवाली किसी सकारात्मक धारणा की मान्यता नहीं है। प्रकटतः यह तर्क निराधार है और मालूम होता है कि इसी कारण उसे अख़बारों में दोहराया नहीं गया है। यदि कोई समाजवादी पार्टी घोषणा करती है कि वह "किसी उत्पीड़ित जाति को समामेलनकारी राज्य की सीमाओं के भीतर ज़बरदस्ती रखे जाने के ख़िलाफ़" है, तो वह **इस घोषणा द्वारा** सत्तारूढ़ होने पर उत्पीड़ित जाति को अपने राज्य की सीमाओं के भीतर **ज़बरदस्ती** रखे जाने का **परित्याग करने के लिए वचनबद्ध होती है।**

हम क्षण भर के लिए भी इस बात में संदेह नहीं करते कि यदि कल हिंडेनबुर्ग रूस की अर्धविजय कर ले और उसकी यह अर्धविजय (ज़ारशाही को कुछ न कुछ कमज़ोर करने की ब्रिटेन और फ़्रांस की इच्छा के संदर्भ में) एक नये पोलिश राज्य के आविर्भाव के रूप में प्रकट हो, जो पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद के आर्थिक नियमों के दृष्टिकोण से सर्वथा "साध्य" है और यदि परसों पेत्रोग्राद, बर्लिन और वार्सा में समाजवादी क्रांति विजयी हो जाये, तो रूसी और जर्मन समाजवादी सरकारों की ही तरह पोलिश समाजवादी सरकार भी, उदाहरण के लिए, उक्रइनियों को "पोलिश राज्य की सीमाओं के भीतर" "ज़बरदस्ती रखे जाने" का परित्याग करेगी। यदि 'गाज़ेता रोबोत्निचा'[92] के संपादकमंडल के सदस्य उस सरकार में मौजूद हों, तो वे निश्चय ही अपनी "स्थापनाओं" को तिलांजलि दे देंगे और इस प्रकार इस "सिद्धांत" का खंडन करेंगे कि "आत्मनिर्णय का अधिकार समाजवादी समाज पर लागू नहीं होता"। यदि हम ऐसा न सोचते, तो हम पोलिश सामाजिक-जनवादियों के साथ बिरादराना बहस को अपनी कार्यसूची में न रखते, बल्कि उन्हें अंधराष्ट्रवादी मानकर उनके ख़िलाफ़ निर्मम संघर्ष चलाते।

मान लीजिये कि मैं किसी भी यूरोपीय नगर की सड़क पर जाऊं और वहां इस बात के ख़िलाफ़ सार्वजनिक रूप से "विरोध" प्रकट करूं कि मुझे किसी आदमी को बतौर ग़ुलाम के ख़रीदने की इजाज़त नहीं दी गयी और फिर इस "विरोध" को अख़बारों में छापूं, तो निस्संदेह लोगों को मुझे दासस्वामी समझने, दासता के सिद्धांत या, आप चाहें, तो कह लें, दासता की व्यवस्था का हिमायती समझने का हक़ होगा। यह बात कि दासता के प्रति मेरी सहानुभूति सकारात्मक रूप ("मैं दासता का पक्षधर हूं") में नहीं, बल्कि विरोध के नकारात्मक रूप में प्रकट हुई है, किसी को धोखे में नहीं डालेगी। राजनीतिक "विरोध" **पूरी तरह से** राजनीतिक कार्यक्रम के समतुल्य होता है; यह बात इतनी उजागर है कि उसकी व्याख्या करने को विवश होना कुछ अजीब-सा ही लगता है। बहरसूरत हमें पक्का इत्मीनान है कि अगर हम यह कहें कि जो लोग राजनीतिक विरोध को राजनीतिक कार्यक्रम से अलग कर सकते हैं, एक को दूसरे के मुक़ाबले रख सकते हैं, उनके लिए तीसरे इंटरनेशनल में कोई जगह नहीं होगी, तो हमें कम से कम ज़िम्मरवाल्डी वामपंथी दल की ओर से – हम पूरे ज़िम्मरवाल्डी दल की बात नहीं करते, क्योंकि उसमें मार्तोव तथा अन्य काउत्स्कीपंथी भी शामिल हैं – इस बात पर "विरोध" का सामना नहीं करना पड़ेगा।

चूंकि हम शब्दों को लेकर बहस में पड़ना नहीं चाहते, इसलिए

* कार्ल रादेक ने *Berner Tagwacht* [91] में प्रकाशित अपने एक लेख में इसे इस प्रकार सूत्रित किया है: "पुराने तथा नये समामेलनों के ख़िलाफ़।"

हम यह हार्दिक आशा व्यक्त करते हैं कि पोलिश सामाजिक-जनवादी हमारे पार्टी कार्यक्रम से (जो **उनका** भी कार्यक्रम है) तथा इंटरनेशनल के कार्यक्रम से भी (१८९६ की लंदन कांग्रेस का प्रस्ताव) अनुच्छेद ९ को निकालने के अपने प्रस्ताव को यथाशीघ्र आधिकारिक रूप से सूत्रबद्ध करने की कोशिश करेंगे, और "पुराने तथा नये समामेलनों" तथा "किसी उत्पीड़ित जाति को समामेलनकारी राज्य की सीमाओं के भीतर ज़बरदस्ती रखे जाने" के संबंधित राजनीतिक विचारों की **स्वयं अपनी** परिभाषा को भी सूत्रबद्ध करने की कोशिश करेंगे।

आइये, अब अगले प्रश्न की ओर मुड़ें।

४. समामेलनों का समर्थन अथवा विरोध ?

अपनी स्थापनाओं के प्रथम भाग के अनुच्छेद ३ में पोलिश साथियों ने अत्यंत निश्चित रूप से घोषणा की है कि वे किसी भी प्रकार के समामेलन के ख़िलाफ़ हैं। दुर्भाग्यवश उसी भाग के अनुच्छेद ४ में हम एक ऐसा कथन पाते हैं, जिसे समामेलनवादी मानना पड़ता है। यह अनुच्छेद निम्नलिखित–इस बात को ज़्यादा नरम ढंग से कैसे कहा जा सकता है?–अजीब फ़िक़रे से शुरू होता है:

> "समामेलनों के ख़िलाफ़, उत्पीड़ित जातियों को समामेलनकारी राज्य की सीमाओं के भीतर ज़बरदस्ती रखे जाने के ख़िलाफ़ सामाजिक-जनवादियों का संघर्ष **पितृभूमि की किसी भी प्रकार की रक्षा के परित्याग** (शब्दों पर ज़ोर लेखकों द्वारा) पर आधारित है। साम्राज्यवाद के युग में पितृभूमि की रक्षा विदेशी जनगण को उत्पीड़ित करने और लूटने के अपने ही बुर्जुआ वर्ग के अधिकार की रक्षा के बराबर है..."

यह क्या है? कैसे है?

"समामेलनों के ख़िलाफ़ संघर्ष पितृभूमि की **किसी भी प्रकार की** रक्षा के परित्याग पर आधारित है..." परंतु किसी भी जातीय युद्ध और किसी भी जातीय विद्रोह को "पितृभूमि की रक्षा" की संज्ञा दी जा सकती है और अभी तक **सामान्यतः** उसे यही माना भी गया है! हम समामेलनों के ख़िलाफ़ हैं, **परंतु...** इसका हम यह मतलब लगाते हैं कि हम समामेलनकारियों से मुक्ति **के लिए** समामेलित जाति के युद्ध के ख़िलाफ़ हैं, कि हम समामेलित जाति के उस विद्रोह के ख़िलाफ़ हैं, जिसका प्रयोजन है अपने को समामेलनकारियों से मुक्त कर लेना। क्या यह समामेलनवादी कथन नहीं है?

अपने ... विचित्र दावे का हेतु प्रस्तुत करते हुए स्थापनाओं के रचयिता कहते हैं कि "साम्राज्यवाद के युग में" पितृभूमि की रक्षा विदेशी जनगण को उत्पीड़ित करने के अपने ही बुर्जुआ वर्ग के अधिकार की रक्षा के बराबर है। परंतु यह बात **केवल** साम्राज्यवादी युद्ध के प्रसंग में सही है, अर्थात साम्राज्यवादी राज्यों या राज्यों के गुटों **के बीच** होनेवाले युद्ध के प्रसंग में सही है, जब **दोनों ओर के** युद्धरत देश न केवल "विदेशी जनगण" को उत्पीड़ित करते हैं, वरन यह **फ़ैसला करने के लिए** युद्ध करते हैं कि उनके उत्पीड़न में **अधिक भाग** किसका होगा!

मालूम होता है कि "पितृभूमि की रक्षा" के प्रश्न को जिस प्रकार हमारी पार्टी प्रस्तुत करती है, स्थापनाओं के रचयिता उसे उससे अत्यंत भिन्न रूप में प्रस्तुत करते हैं। हम **साम्राज्यवादी** युद्ध में "पितृभूमि की रक्षा" का परित्याग करते हैं। यह बात हमारी पार्टी की केंद्रीय समिति के घोषणापत्र में तथा उन बर्न प्रस्तावों में यथासंभव स्पष्टतम रूप से कही गयी है, जिन्हें जर्मन तथा फ़्रांसीसी, दोनों भाषाओं में प्रकाशित 'समाजवाद और युद्ध' नामक पुस्तिका में दोबारा छापा गया है। हमने अपनी स्थापनाओं में इस पर **दो बार** ज़ोर दिया है (अनुच्छेद ४ तथा ६ की पाद-टिप्पणियां)*। प्रकटतः पोलिश स्थापनाओं के रचयिता पितृभूमि की रक्षा का **सामान्य रूप से**, अर्थात **किसी जातीय युद्ध के लिए भी** परित्याग करते हैं, संभवतः, यह मानते हुए कि "साम्राज्यवाद के युग में" जातीय युद्ध **असंभव** हैं। हमने "संभवतः" इसलिए कहा कि पोलिश साथियों ने अपनी स्थापनाओं में यह विचार प्रकट **नहीं** किया है।

यह विचार जर्मन 'इंटरनेशनल' दल[93] की स्थापनाओं में तथा जूनियस के पैम्फ़लेट में, जिसके बारे में हम एक विशेष लेख दे रहे हैं**,

---

* देखें प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १४०–१४१, १४३। –सं०

** देखें व्ला० इ० लेनिन, 'जूनियस का पैम्फ़लेट'। –सं०

स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। इस लेख में जो कहा गया है, उसके अलावा हम इस बात को भी ध्यान में रखें कि समामेलनकारी देश के ख़िलाफ़ किसी समामेलित प्रदेश अथवा देश के जातीय विद्रोह को युद्ध नहीं, विद्रोह ही कहा जा सकता है (हमने सुना है कि ऐसी आपत्ति की गयी है और इसलिए हम यहां उसका उल्लेख कर रहे हैं, हालांकि हम पारिभाषिक शब्दों के इस विवाद को गंभीर नहीं मानते)। बहरसूरत, शायद ही कोई इस बात से इन्कार करने की जुर्रत करे कि समामेलित बेल्जियम, सर्बिया, गैलीशिया और आर्मीनिया समामेलनकारियों के ख़िलाफ़ अपने "विद्रोह" को "पितृभूमि की रक्षा" की संज्ञा देंगे **और सर्वथा न्यायोचित रूप से देंगे।** प्रकटतः पोलिश साथी इस प्रकार के विद्रोह का इस आधार पर **विरोध करते हैं** कि इन समामेलित देशों में **भी** बुर्जुआज़ी है और वह **भी** विदेशी जनगण को उत्पीड़ित करता है या ज़्यादा ठीक कहा जाये, तो उत्पीड़ित कर सकता है, क्योंकि प्रश्न केवल "उत्पीड़ित करने के **अधिकार**" का है। फलतः किसी युद्ध विशेष अथवा विद्रोह विशेष के मूल्यांकन के लिए जो कसौटी चुनी जाती है, वह उस युद्ध अथवा विद्रोह की **वास्तविक** सामाजिक अंतर्वस्तु (उत्पीड़क जाति से मुक्ति के लिए उत्पीड़ित जाति का संघर्ष) नहीं, बल्कि इस समय स्वयं उत्पीड़ित बुर्जुआज़ी द्वारा "उत्पीड़ित करने के" अपने "**अधिकार** की संभाव्य सिद्धि है। मान लीजिये, बेल्जियम १९१७ में जर्मनी द्वारा समामेलित किया जाता है और १९१८ में अपनी मुक्ति प्राप्त करने के लिए विद्रोह करता है, तो पोलिश साथी इस आधार पर विद्रोह का विरोध करेंगे कि बेल्जियाई बुर्जुआज़ी को "विदेशी जनगण को उत्पीड़ित करने का अधिकार" प्राप्त है!

इस तर्क में रत्ती भर मार्क्सवादी अथवा क्रांतिकारी तत्व तक नहीं है। यदि हम समाजवाद के प्रति विश्वासघात नहीं करना चाहते, तो हमें अपने प्रमुख शत्रु, बड़े राज्यों के बुर्जुआज़ी के ख़िलाफ़ **प्रत्येक** विद्रोह का समर्थन करना **होगा,** बशर्ते कि वह किसी प्रतिक्रियावादी वर्ग का विद्रोह न हो। समामेलित प्रदेशों के विद्रोह का समर्थन करने से इन्कार करके हम वस्तुगत दृष्टिकोण से समामेलनवादी बन जाते हैं। ठीक "साम्राज्यवाद के युग में", जो जायमान सामाजिक क्रांति का युग है, समामेलित प्रदेशों के विद्रोह का सर्वहारा आज विशेष उत्साहपूर्वक

समर्थन करेगा, ताकि कल या उसी समय वह इस विद्रोह द्वारा कमज़ोर हुए "महान" शक्ति के बुर्जुआज़ी पर हमला कर सके।

परंतु पोलिश साथी अपने समामेलनवाद में और भी दूर तक जाते हैं। वे समामेलित प्रदेशों द्वारा विद्रोह के ही विरोधी नहीं हैं, वे उनकी स्वतंत्रता की **किसी भी** प्रकार की पुनःस्थापना, यहां तक कि शांतिपूर्ण पुनःस्थापना के भी विरोधी हैं! ज़रा सुनिये:

> "साम्राज्यवाद द्वारा चलायी जानेवाली उत्पीड़न की नीति के परिणामों के लिए किसी भी तरह की ज़िम्मेदारी लेने से इन्कार करते हुए और इन परिणामों के ख़िलाफ़ उग्रतम संघर्ष करते हुए सामाजिक-जनवाद **यूरोप में साम्राज्यवाद द्वारा ध्वस्त सरहदी खंभों के स्थान पर नये खंभों की स्थापना के क़तई हक़ में नहीं है**" (ज़ोर लेखकों-द्वारा)।

आज जर्मनी तथा बेल्जियम, रूस तथा गैलीशिया के बीच के "सरहदी खंभों को साम्राज्यवाद ने ध्वस्त कर दिया है"। अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद को, बात यह है, सामान्यतः इन सरहदी खंभों की बहाली का किसी भी तरह से विरोध करना चाहिए। १९०५ में, "साम्राज्यवाद के युग में", जब नार्वे की स्वायत्त विधान सभा ने स्वीडन से अपनी विलग्नता को घोषित किया और नार्वे के ख़िलाफ़ स्वीडनी प्रतिक्रियावादियों द्वारा प्रचारित स्वीडन का युद्ध स्वीडनी मज़दूरों के प्रतिरोध तथा अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी स्थिति दोनों ही के कारण संभव नहीं हो सका – उस समय सामाजिक-जनवाद को नार्वे की विलग्नता के ख़िलाफ़ होना चाहिए था, क्योंकि निस्सन्देह उसका अर्थ था "यूरोप में नये सरहदी खंभों की स्थापना"!!

यह प्रत्यक्ष और खुला हुआ समामेलनवाद है। उसका खंडन करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह स्वयं अपना खंडन करता है। एक भी समाजवादी पार्टी यह स्थिति अपनाने का निर्णय नहीं करेगी: "हम सामान्यतः समामेलनों के ख़िलाफ़ हैं, परंतु यूरोप के लिए समामेलनों की मंज़ूरी देते हैं या यदि समामेलन किये जा चुके हों, तो उन्हें सहन करते हैं..."

आवश्यकता केवल इस बात की है कि उस ग़लती के सैद्धांतिक स्रोतों की चर्चा की जाये, जिसने हमारे पोलिश साथियों को ऐसी स्वतः-

स्पष्ट... "असंभाव्यता" तक पहुंचाया है। हम "यूरोप" को अपवाद मानने के बेतुकेपन के बारे में आगे बात करेंगे। स्थापनाओं के निम्नलिखित दो वाक्यांश इस ग़लती के अन्य स्रोतों को प्रकट करते हैं:

"जहां भी साम्राज्यवाद का चक्र एक बने-बनाये पूंजीवादी राज्य को कुचलता हुआ उसके ऊपर से निकला है, वहां साम्राज्यवादी उत्पीड़न के पाशविक रूप में पूंजीवादी संसार का राजनीतिक तथा आर्थिक संकेंद्रण हो रहा है, जो समाजवाद के लिए पथ प्रशस्त करता है..."

समामेलनों को इस प्रकार न्यायोचित ठहराना मार्क्सवाद नहीं, स्त्रूवेवाद है। रूसी सामाजिक-जनवादियों को, जिन्हें रूस में १८६०–१६०० के दशक की याद है, मार्क्सवाद को विकृत करने की स्त्रूवे, कूनोव, लेजियन-मंडली में समान रूप से पायी जानेवाली इस पद्धति की अच्छी जानकारी है। पोलिश साथियों की स्थापनाओं के एक दूसरे भाग (अनुच्छेद २, अनुभाग ३) में हम विशिष्ट रूप से जर्मन स्त्रूवेवादियों, तथाकथित "सामाजिक-साम्राज्यवादियों" के बारे में निम्नलिखित उद्धरण पढ़ते हैं:

...(आत्मनिर्णय का नारा) "सामाजिक-साम्राज्यवादियों को यह अवसर देता है कि वे इस नारे के भ्रांतिमूलक स्वरूप को सिद्ध करते हुए जातियों के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ हमारे संघर्ष को ऐतिहासिक दृष्टि से अनुचित कोरी भावुकता बतायें और इस प्रकार सामाजिक-जनवादी कार्यक्रम के वैज्ञानिक आधार में सर्वहारा के विश्वास को ध्वस्त करें..."

इसका अर्थ यह है कि स्थापनाओं के रचयिता जर्मन स्त्रूवेवादियों के दृष्टिकोण को "वैज्ञानिक" मानते हैं! उन्हें हमारी बधाई।

परंतु एक "छोटी-सी बात" इस विचित्र तर्क को, जिसने यह सिद्ध कर देने की आशंका उत्पन्न कर दी थी कि लेंश, कूनोव और पार्वुस जैसे लोग हमारे मुक़ाबले में **सही थे**, ध्वस्त कर देती है: वह बात यह है कि लेंश जैसे लोग अपने ढंग से सुसंगत लोग हैं और अंधराष्ट्रवादी जर्मन पत्र *Die Glocke* के अंक ८–६ में—हमने अपनी स्थापनाओं

में जान-बूझकर इन्हीं अंकों का हवाला दिया है—लेंश ने आत्मनिर्णय के नारे का "वैज्ञानिक रूप से निराधार" होना (पोलिश सामाजिक-जनवादी प्रकटतः लेंश के **इस** तर्क को अकाट्य मानते हैं, जैसाकि उनकी स्थापनाओं में उपरोक्त तर्कों से देखा जा सकता है) तथा **साथ ही साथ** समामेलनविरोधी नारे का भी "वैज्ञानिक रूप से निराधार" होना सिद्ध किया है!!

कारण, लेंश को उस सीधी-सादी सचाई की बड़ी अच्छी समझ थी, जिसकी ओर हमने अपने उन पोलिश सहयोगियों का ध्यान दिलाया है, जो हमारे इस कथन का उत्तर देने की इच्छा नहीं करते थे: आत्मनिर्णय की "मान्यता" तथा समामेलनों के "विरोध" के बीच "न तो राजनीतिक, न ही आर्थिक" और न सामान्यतः कोई तार्किक अंतर है। यदि पोलिश साथी आत्मनिर्णय के विरुद्ध लेंश जैसे लोगों के तर्कों को अकाट्य मानते हैं, तो एक **हक़ीक़त** माननी ही होगी: लेंश जैसे लोग समामेलनों के ख़िलाफ़ संघर्ष का विरोध करने के लिए भी इन **सारे** तर्कों का इस्तेमाल करते हैं।

हमारे पोलिश सहयोगियों के तर्कों के मूल में जो सैद्धांतिक ग़लती है, उसके फलस्वरूप वे **असंगत समामेलनवादी** बन गये हैं।

५. सामाजिक-जनवाद समामेलन का विरोधी क्यों है?

हमारे दृष्टिकोण से उत्तर स्पष्ट है: इसलिए कि समामेलन जातियों के आत्मनिर्णय का उल्लंघन है, या, दूसरे शब्दों में, वह जातियों के उत्पीड़न का एक रूप है।

पोलिश सामाजिक-जनवादियों के दृष्टिकोण से इसके लिए **विशेष** स्पष्टीकरण अपेक्षित है कि हम समामेलन का क्यों विरोध करते हैं, और इस स्पष्टीकरण ने ही (स्थापनाओं का अनुच्छेद १, अनुभाग ३) रचयिताओं को अनिवार्यतः अंतर्विरोधों की एक नयी शृंखला में उलझा दिया है।

यह "उचित ठहराने" के लिए वे दो कारण सामने रखते हैं कि हम क्यों (लेंश जैसे लोगों के "वैज्ञानिक दृष्टि से ठोस" तर्कों के बावजूद) समामेलनों के विरुद्ध हैं। पहला:

> "...यूरोप में समामेलन विजयी साम्राज्यवादी राज्य की सैनिक सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं, इस कथन के विरोध में सामाजिक-जनवादी यह तथ्य उपस्थित करते हैं कि समामेलन विरोधों को केवल तीव्र ही करते हैं और इस प्रकार युद्ध के ख़तरे को बढ़ाते हैं..."

लेंश जैसे लोगों को यह उत्तर देना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि उनका मुख्य तर्क सैनिक आवश्यकता नहीं, वरन समामेलनों की, जिनका साम्राज्यवाद के अंतर्गत अर्थ है संकेंद्रण, **आर्थिक दृष्टि से** प्रगतिशीलता है। यदि पोलिश सामाजिक-जनवादी यूरोप में साम्राज्यवाद द्वारा ध्वस्त सरहदी खंभों को फिर से खड़ा करने से इन्कार करते हुए ऐसे संकेंद्रण की प्रगतिशीलता को तो मानते हैं और उसी ही सांस में समामेलनों **के ख़िलाफ़** आवाज़ उठाते हैं, तो इसमें तर्कसंगति कहां है?

फिर: समामेलनों से **किस प्रकार के** युद्धों का ख़तरा बढ़ जाता है? साम्राज्यवादी युद्ध में मुख्य विरोध निस्संदेह ब्रिटेन और जर्मनी के बीच तथा जर्मनी और रूस के बीच हैं। इन विरोधों का समामेलनों से कभी कोई संबंध नहीं रहा है और नहीं है। प्रश्न है **जातीय** युद्धों तथा जातीय विद्रोहों के ख़तरे के बढ़ने का। परंतु यह कैसे हो सकता है कि आप, एक ओर, "साम्राज्यवाद के युग में" जातीय युद्धों के **असंभव होने** की घोषणा करें और फिर, दूसरी ओर, जातीय युद्धों के "ख़तरे" की बात करें? यह तर्कसंगत न होगा।

दूसरा तर्क:

> समामेलन "शासक जाति के सर्वहारा तथा उत्पीड़ित जाति के सर्वहारा के बीच एक खाई खोदते हैं"... "उत्पीड़ित जाति का सर्वहारा अपने बुर्जुआज़ी के साथ मिल जायेगा और शासक जाति के सर्वहारा को अपना शत्रु मानेगा। अंतर्राष्ट्रीय बुर्जुआज़ी के ख़िलाफ़ सर्वहारा का अंतर्राष्ट्रीय वर्ग संघर्ष होने की जगह सर्वहारा में फूट पड़ जायेगी और वह विचारधारात्मक दृष्टि से भ्रष्ट हो जायेगा..."

हम इन तर्कों के साथ पूरी तरह सहमत हैं। परंतु क्या एक ही प्रश्न के बारे में एक-दूसरे को काट देनेवाले दो तर्कों को एक साथ प्रस्तुत करना तर्कसंगत है? स्थापनाओं के पहले भाग के अनुच्छेद ३

में हम उपरोक्त तर्कों को पाते हैं, जिनके अनुसार समामेलन सर्वहारा के बीच **फूट** डालते हैं और ठीक उसके बाद, अनुच्छेद ४ में हमसे कहा जाता है कि यूरोप में जो समामेलन किये जा चुके हैं, हमें उनके निरसन का विरोध करना चाहिए और "उत्पीड़ित तथा उत्पीड़क जातियों के मेहनतकश जनसाधारण की संघर्ष में एकजुटता की भावना में शिक्षा-दीक्षा" का समर्थन करना चाहिए। यदि समामेलनों को निरसित करना प्रतिक्रियावादी "भावुकता" है, तो यह तर्क हरगिज़ **नहीं किया जा सकता** कि समामेलन "सर्वहारा" के विभिन्न अंशकों के बीच "खाई" खोदते और "फूट" डालते हैं, बल्कि इसके विपरीत उन्हें विभिन्न जातियों के सर्वहारा के परस्पर **सामीप्यीकरण** की एक शर्त मानना चाहिए।

हमारा कहना है: हम समाजवादी क्रांति को संपन्न करने तथा बुर्जुआज़ी का तख़्ता उलटने के लिए शक्ति अर्जित कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि मज़दूर अधिक घनिष्ठ रूप से एकताबद्ध हों और यह घनिष्ठ एकता आत्मनिर्णय के संघर्ष, अर्थात समामेलनों के ख़िलाफ़ संघर्ष द्वारा पुष्ट होती है। हम सुसंगत हैं। परंतु जब पोलिश साथी, जो यह मानते हैं कि यूरोपीय समामेलन "अनिरसनीय हैं" और जातीय युद्ध "असंभव हैं", जातीय युद्ध **संबंधी** तर्कों का इस्तेमाल कर समामेलनों के "ख़िलाफ़" विवाद में पड़ते हैं, तो वे स्वयं अपने ऊपर ही प्रहार करते हैं! ये तर्क ठीक इसी प्रकार के हैं कि समामेलन विभिन्न जातियों के मज़दूरों के परस्पर सामीप्यीकरण तथा विलयन को **अधिक कठिन बना देते हैं!**

दूसरे शब्दों में, समामेलनों के विरुद्ध बहस करने के लिए पोलिश सामाजिक-जनवादियों को अपने तर्क उसी सैद्धांतिक भंडार से निकालने पड़ते हैं, जिसका **उन्होंने स्वयं** सिद्धांततः परित्याग किया है।

यह बात उपनिवेशों के प्रश्न के प्रसंग में कहीं ज़्यादा स्पष्ट हो जाती है।

६. क्या वर्तमान प्रश्न के संदर्भ में उपनिवेशों का मुक़ाबला "यूरोप" से किया जा सकता है?

हमारी स्थापनाओं में कहा गया है कि उपनिवेशों की अविलंब मुक्ति की मांग पूंजीवाद के अंतर्गत उतनी ही "असाध्य" है (अर्थात वह अनेक क्रांतियों के बिना पूरी नहीं की जा सकती और वह समाजवाद के बिना स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सकती), जितने कि जातियों का आत्मनिर्णय, सरकारी अधिकारियों का जनता द्वारा निर्वाचन, जनतांत्रिक गणतंत्र, आदि असाध्य हैं – और दूसरी ओर, यह भी कहा गया है कि उपनिवेशों की मुक्ति की मांग "जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता" के सिवा और कुछ नहीं है।

पोलिश साथियों ने इनमें से एक भी तर्क का उत्तर नहीं दिया है। उन्होंने "यूरोप" तथा उपनिवेशों के बीच फ़र्क़ करने की कोशिश की है। जहां तक यूरोप का संबंध है, वे पहले से संपन्न समामेलनों के निरसन से इन्कार करके असंगत समामेलनवादी बन जाते हैं। जहां तक उपनिवेशों का संबंध है, वे बिला शर्त मांग करते हैं: "उपनिवेशों से बाहर निकलो!"

रूसी समाजवादियों के लिए आवश्यक है कि वे यह मांग पेश करें: "तुर्किस्तान, ख़ीवा, बुख़ारा, वग़ैरह से बाहर निकलो", परंतु यह कहा जाता है कि यदि वे पोलैंड, फ़िनलैंड, उक्रइना, वग़ैरह के लिए भी इसी प्रकार की विलग होने की आज़ादी की मांग करें, तो वे "कल्पनावाद", "अवैज्ञानिक" "भावुकता", आदि के दोषी होंगे। ब्रिटिश समाजवादियों के लिए आवश्यक है कि वे मांग करें: "अफ़्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया से बाहर निकलो", परंतु आयरलैंड से नहीं। जो अंतर इतने प्रकट रूप से झूठा है, उसका सैद्धांतिक आधार क्या है? इस प्रश्न से कतराया नहीं जा सकता।

आत्मनिर्णय के विरोधियों का मुख्य "आधार" है: "असाध्यता"। "आर्थिक तथा राजनीतिक संकेंद्रण" के उल्लेख में वही विचार सूक्ष्म अंतर के साथ प्रकट किया जाता है।

प्रकटतः संकेंद्रण उपनिवेशों के समामेलन के ज़रिये **भी** होता है। पहले उपनिवेशों तथा यूरोपीय जनों – कम से कम अधिकांश यूरोपीय

जनों – के बीच एक यह आर्थिक अंतर था कि उपनिवेश **मालों** के विनिमय में खींच लिये गये थे, मगर पूंजीवादी **उत्पादन** में नहीं। साम्राज्यवाद ने इस चीज़ को बदल डाला। साम्राज्यवाद अन्य बातों के साथ **पूंजी** का निर्यात भी है। उपनिवेशों में पूंजीवादी उत्पादन का प्रतिरोपण निरंतर बढ़ती हुई गति से हो रहा है। उपनिवेशों को यूरोपीय वित्त पूंजी पर उनकी निर्भरता की स्थिति से मुक्त नहीं किया जा सकता। सैनिक दृष्टिकोण से तथा विस्तार के दृष्टिकोण से भी उपनिवेशों का अलगाव सामान्यतः समाजवाद के अंतर्गत ही साध्य है; पूंजीवाद के अंतर्गत वह अपवादस्वरूप ही अथवा उपनिवेशों और शासक देशों, दोनों में क्रांतियों और विद्रोहों के एक पूरे सिलसिले की क़ीमत पर ही साध्य है।

यूरोप की अधिकांश आश्रित जातियां उपनिवेशों की जातियों की अपेक्षा पूंजीवादी रूप से अधिक विकसित हैं (हालांकि सभी नहीं: अल्बानियाई तथा रूस की बहुत-सी ग़ैर-रूसी जातियां अपवाद हैं)। परंतु ठीक यही बात जातियों के उत्पीड़न तथा समामेलनों का अधिक प्रतिरोध पैदा करती है! ठीक इसी कारण से यूरोप में पूंजीवाद का विकास अलगाव समेत किन्हीं भी राजनीतिक अवस्थाओं में उपनिवेशों की अपेक्षा **अधिक सुरक्षित** है... उपनिवेशों की चर्चा करते हुए पोलिश साथी कहते हैं (अनुच्छेद १, अनुभाग ४): "वहां पूंजीवाद के सामने उत्पादक शक्तियों का स्वतंत्र रूप से विकास करने का काम अभी भी पड़ा हुआ है..." यूरोप में यह बात और भी अधिक उभरकर सामने आती है: भारत, तुर्किस्तान, मिस्र तथा अन्य देशों के मुक़ाबले, जो ठेठ उपनिवेश हैं, पोलैंड, फ़िनलैंड, उक्रइना और अल्सास में पूंजीवाद उत्पादक शक्तियों को निस्संदेह अधिक प्रबल, द्रुत तथा स्वतंत्र रूप से विकसित कर रहा है। पण्य उत्पादक समाज में पूंजी के बिना स्वतंत्र विकास अथवा किसी भी प्रकार का विकास असंभव है। यूरोप की आश्रित जातियों के पास **स्वयं अपनी** पूंजी है और उन्हें काफ़ी व्यापक शर्तों पर उसे प्राप्त करने के सहज उपाय भी उपलब्ध हैं। उपनिवेशों के पास **स्वयं अपनी** पूंजी नहीं है या नहीं के बराबर है, और जब तक वहां वित्त पूंजी का बोलबाला है, वे राजनीतिक अधीनता की अवस्था में ही पूंजी प्राप्त कर सकते हैं। तब फिर इन सारे तथ्यों के सम्मुख उपनिवेशों को अविलंब और बिला शर्त मुक्त करने की मांग का क्या

अर्थ है? क्या यह स्पष्ट नहीं है कि यह मांग अधिक "कल्पनावादी" है, इस शब्द के उस कुत्सित, विकृत "मार्क्सवादी" अर्थ में, जिस अर्थ में वह स्त्रूवे, लेंश, कूनोव जैसे लोगों और दुर्भाग्यवश उनके पदचिह्नों पर चलते हुए पोलिश साथियों द्वारा प्रयुक्त होता है? यहां साधारण, नैतिक ढंग से हर विचलन पर, उस सब पर, जो क्रांतिकारी है, "कल्पनावाद" का लेबल चिपका दिया जाता है। परंतु राष्ट्रीय आंदोलनों समेत **सभी प्रकार** के क्रांतिकारी आंदोलन उपनिवेशों की अपेक्षा यूरोपीय परिस्थिति में अधिक साध्य हैं, अधिक दृढ़ हैं, अधिक चेतन हैं, अधिक दुर्जेय हैं।

पोलिश साथी कहते हैं (अनुच्छेद १, अनुभाग ३) कि समाजवाद "उपनिवेशों के अल्पविकसित जनगण को, उन पर **शासन किये बिना, निःस्वार्थ सांस्कृतिक सहायता** दे सकेगा"। बिलकुल सही है। परंतु यह मान लेने का क्या कारण है कि समाजवाद अंगीकार करनेवाला कोई बड़ा राष्ट्र, कोई बड़ा राज्य "निःस्वार्थ सांस्कृतिक सहायता" द्वारा एक छोटी उत्पीड़ित यूरोपीय जाति को आकर्षित नहीं कर सकेगा? पोलिश सामाजिक-जनवादी विलग होने की जो स्वतंत्रता उपनिवेशों को "**प्रदान**" करते हैं, ठीक वही स्वतंत्रता यूरोप की छोटी-छोटी, परंतु सुसंस्कृत तथा राजनीतिक रूप से **आग्रही** उत्पीड़ित जातियों को बड़े समाजवादी राज्यों के साथ एकीकरण की दिशा में आकर्षित करेगी, क्योंकि समाजवाद के अंतर्गत बड़े राज्य का अर्थ होगा – रोज़ाना इतने घंटे **कम** काम और रोज़ाना इतना ज़्यादा **वेतन**। बुर्जुआ जूए से अपने को मुक्त करते हुए मेहनतकश जनसाधारण उस "सांस्कृतिक सहायता" की ख़ातिर बड़े उन्नत समाजवादी राष्ट्रों के साथ एकीकरण तथा विलयन की दिशा में अरोध्य रूप से **आकर्षित होंगे**, बशर्ते कि कल के उत्पीड़क दीर्घकाल से उत्पीड़ित जातियों की आत्मसम्मान की अत्यंत विकसित जनतांत्रिक भावना को न कुचलें और बशर्ते कि राज्य के संगठन तथा "स्वयं अपने" राज्य को संगठित करने के अनुभव समेत उन्हें सभी बातों में समानता प्रदान की जाये। पूंजीवाद के अंतर्गत इस "अनुभव" का अर्थ है युद्ध, पार्थक्य, एकांतिकता तथा विशेषाधिकार-संपन्न लघु राष्ट्रों (हालैंड, स्विट्ज़रलैंड) का संकीर्ण अहंकार। समाजवाद के अंतर्गत मेहनतकश जनता कहीं भी उपरोक्त विशुद्ध आर्थिक प्रयोजनों से ही अलगाव के लिए राज़ी नहीं होती, बल्कि

राजनीतिक रूपों का वैविध्य, राज्य से विलग होने की स्वतंत्रता तथा राज्य के संगठन का अनुभव – जब तक राज्य का अपने सभी रूपों में विलोपन नहीं होता – ये सभी बातें समृद्ध सुसंस्कृत जीवन का आधार होंगी और जातियों के स्वैच्छिक समीप्यीकरण तथा विलयन की त्वरित प्रक्रिया को प्रत्याभूत करेंगी।

उपनिवेशों को अलग रखते हुए तथा यूरोप से उनका मुक़ाबला करते हुए पोलिश साथी अपने सम्मुख एक ऐसा अंतर्विरोध उपस्थित कर लेते हैं कि वह उनके समस्त मिथ्या तर्क को तुरंत ही ध्वस्त कर देता है।

७. मार्क्सवाद अथवा प्रूदोंवाद?

आयरलैंड के अलगाव की ओर मार्क्स के रवैये का हमने जो हवाला दिया है, उससे बचते हुए हमारे पोलिश साथी हमें अपवादस्वरूप, परोक्ष नहीं, प्रत्यक्ष उत्तर देते हैं। उनकी आपत्ति क्या है? उनका कहना है कि १८४८ से १८७१ तक मार्क्स ने जो स्थिति अपनायी थी, उसके उल्लेख का "तनिक भी मूल्य" नहीं है। इस असाधारण क्रोधपूर्ण तथा निश्चयात्मक कथन के समर्थन में यह तर्क दिया जाता है कि मार्क्स ने "इसके साथ-साथ" "चेकों, दक्षिणी स्लावों, इत्यादि" की स्वतंत्रता की आकांक्षाओं का विरोध किया था।[94]

इस तर्क में क्रोध का इतना पुट ठीक इसीलिए है कि वह इस क़दर खोखला है। पोलिश मार्क्सवादियों के अनुसार मार्क्स बस एक उलझे हुए दिमाग़ के आदमी थे, जो "साथ-साथ" परस्परविरोधी बातें कहते थे! यह सरासर ग़लत है और निश्चय ही यह मार्क्सवाद नहीं है। हमारे पोलिश साथी "ठोस" विश्लेषण की जो मांग करते हैं, **परंतु जिसे वे स्वयं लागू नहीं करते**, ठीक वही हमारे लिए यह ज़रूरी बना देती है कि हम इसकी जांच करें कि मार्क्स ने अलग-अलग मूर्त "राष्ट्रीय" आंदोलनों के प्रति जो अलग-अलग रुख़ अपनाया, वह क्या **एक अभिन्न** समाजवादी दृष्टिकोण से उत्पन्न नहीं होता।

जैसाकि सुविदित है ज़ारशाही की शक्ति तथा प्रभाव के ख़िलाफ़ – अथवा, कहा जा सकता है, उसकी सर्वशक्तिमत्ता तथा प्रभुत्वपूर्ण

प्रतिक्रियावादी प्रभाव के खिलाफ़ – **यूरोपीय** जनतंत्र के संघर्ष में उस जनतंत्र के हितार्थ मार्क्स पोलैंड की स्वतंत्रता के पक्ष में थे। यह दृष्टिकोण कितना सही था, यह १८४६ में अत्यंत स्पष्ट तथा व्यावहारिक रूप से प्रमाणित हो गया, जब रूस की भूदास सेना ने हंगरी के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को तथा क्रांतिकारी-जनतांत्रिक विद्रोह को कुचल डाला। उस समय से लेकर मार्क्स की मृत्यु तक, और बाद में भी, १८६० तक, जब इस बात का खतरा पैदा हो गया था कि फ़्रांस के साथ संश्रय बनाकर ज़ारशाही **साम्राज्यवादी** जर्मनी के खिलाफ़ **नहीं**, बल्कि राष्ट्रीय रूप से स्वतंत्र जर्मनी के खिलाफ़ प्रतिक्रियावादी युद्ध चलायेगी, एंगेल्स ने सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि ज़ारशाही के खिलाफ़ संघर्ष का समर्थन किया। इसी कारण से और एकमात्र इसी कारण से मार्क्स और एंगेल्स ने चेकों तथा दक्षिणी स्लाव लोगों के राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध किया। १८४८ और १८४६ में मार्क्स और एंगेल्स ने जो लिखा, उसका महज़ हवाला हर आदमी को, जो मार्क्सवाद को एक ओर बुहार देने के लिए मार्क्सवाद में दिलचस्पी नहीं रखता, यह दिखा देगा कि उस समय मार्क्स और एंगेल्स ने यूरोप में "रूसी चौकियों का काम देनेवाली" "समग्र प्रतिक्रियावादी जातियों" तथा "क्रांतिकारी जातियों", अर्थात जर्मनों, पोलों और मैग्यारों (हंगरियाइयों) के बीच एक स्पष्ट तथा निश्चित प्रकार **अंतर स्थापित किया था।** यह एक वास्तविकता है, और यह वास्तविकता **उस समय अकाट्य** सचाई के साथ देखी गयी थी: १८४८ में क्रांतिकारी जातियों ने, जिनकी मुख्य शत्रु ज़ारशाही थी, आज़ादी की लड़ाई लड़ी, जबकि चेक, वग़ैरह वास्तव में प्रतिक्रियावादी जातियां अथवा ज़ारशाही की चौकियां थे।

अगर कोई मार्क्सवाद के प्रति वफ़ादार रहना चाहता है, तो यह ठोस मिसाल, जिसका **ठोस** विश्लेषण करना ज़रूरी है, हमें क्या बताती है? केवल यह: (१) कि यूरोप में कतिपय बड़ी और बहुत बड़ी जातियों की मुक्ति के हित छोटी जातियों के मुक्ति आंदोलन के हितों से ऊपर हैं; (२) कि जनतंत्र की मांग पर अलग-अलग नहीं, बल्कि यूरोप के – आज कहा जाना चाहिए: विश्व के – पैमाने पर विचार करना आवश्यक है।

इससे अधिक कुछ नहीं। इस प्राथमिक समाजवादी सिद्धांत का, जिसे पोलिश साथी भूल जाते हैं, मगर जिसके प्रति मार्क्स **हमेशा** वफ़ादार रहे, लेशमात्र खंडन नहीं किया गया है कि दूसरी जातियों का उत्पीड़न करनेवाली कोई भी जाति आज़ाद नहीं हो सकती।[95] उस काल में, जब ज़ारशाही का प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर हावी था, मार्क्स के सम्मुख जो ठोस परिस्थिति थी, वह अगर दोबारा उत्पन्न हो, उदाहरण के लिए, इस रूप में उत्पन्न हो कि कतिपय जातियां समाजवादी क्रांति आरंभ करें (जैसे कि १८४८ में यूरोप में बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति आरंभ की गयी थी), जबकि **अन्य** जातियां बुर्जुआ प्रतिक्रियावाद के मुख्य स्तंभ का काम दें – तो हमें भी इस दूसरी श्रेणी की जातियों के खिलाफ़ क्रांतिकारी युद्ध के पक्ष में, उन्हें "कुचल देने" के पक्ष में, उनकी सभी चौकियों को नष्ट कर देने के पक्ष में होना होगा, चाहे उन जातियों के बीच कैसे भी लघु राष्ट्रीय आंदोलन क्यों न उभरे हों। फलतः मार्क्स की कार्यनीति के किन्हीं भी उदाहरणों को ठुकराना तो रहा दूर – उन्हें ठुकराने का अर्थ होगा कथनी में मार्क्सवाद को मानना तथा करनी में उसे तिलांजलि दे देना – हमारे लिए आवश्यक है कि हम उनका ठोस विश्लेषण करें और भविष्य के लिए उनसे अमूल्य सबक़ हासिल करें। आत्मनिर्णय समेत जनतंत्र की विभिन्न मांगें निरपेक्ष नहीं हैं, वरन वे आम जनतांत्रिक (अब: आम समाजवादी) **विश्व** आंदोलन का एक **छोटा-सा ही भाग** हैं। ऐसी विशेष, ठोस परिस्थितियां हो सकती हैं, जब एक भाग समष्टि का प्रतिवाद करे; यदि ऐसा है, तो उस भाग का परित्याग करना होगा। यह संभव है कि किसी एक देश में गणतांत्रिक आंदोलन अन्य देशों के पुरोहितवादी अथवा वित्तीय-राजतंत्रीय षड्यंत्रों का साधन मात्र हो; यदि ऐसा है, तो हमें हरगिज़ इस विशेष और मूर्त आंदोलन का समर्थन **नहीं** करना चाहिए। परंतु इस कारण अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद के कार्यक्रम से गणतंत्र के नारे को ही निकाल देना हास्यास्पद होगा।

१८४८–१८७१ के काल तथा १८६८–१६१६ के काल (मैं साम्राज्यवाद की सबसे महत्वपूर्ण मंज़िलों को एक काल मान रहा हूं: स्पेनी-अमरीकी साम्राज्यवादी युद्ध से लेकर यूरोपीय साम्राज्यवादी युद्ध तक) के बीच ठोस परिस्थिति किस प्रकार परिवर्तित हुई है? यह प्रकट तथा निर्विवाद है कि ज़ारशाही प्रतिक्रियावाद का मुख्य आधार नहीं रह गयी है, पहले तो इस कारण कि उसका अंतर्राष्ट्रीय, विशेषतः

फ़्रांसीसी वित्त पूंजी समर्थन करती है और दूसरे, १६०५ की घटनाओं के कारण। उस समय बड़े जातीय राज्यों – यूरोप के जनतांत्रिक देशों – की प्रणाली संसार में ज़ारशाही के बावजूद जनतंत्र तथा समाजवाद ला रही थी।* मार्क्स और एंगेल्स साम्राज्यवाद के युग को अपनी आंखों देखने के लिए जीवित नहीं रहे। वर्तमान समय में ऐसी मुट्ठी भर साम्राज्यवादी "महा" शक्तियों (संख्या में पांच या छः) की एक प्रणाली बन गयी है, जिनमें से प्रत्येक शक्ति अन्य जातियों का उत्पीड़न करती है; और यह उत्पीड़न पूंजीवाद के पतन के कृत्रिम अवरोध का तथा संसार पर अभिभावी साम्राज्यवादी राष्ट्रों में अवसरवाद और सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद के कृत्रिम अवलंब का एक स्रोत है। उस समय पश्चिम यूरोपीय जनतंत्र, जो बड़ी जातियों को मुक्त कर रहा था, किन्हीं लघु-राष्ट्रीय आंदोलनों का अपने प्रतिक्रियावादी लक्ष्यों के लिए इस्तेमाल करनेवाली ज़ारशाही का विरोधी था। आज एक ओर, अंधराष्ट्रवादियों, "सामाजिक-साम्राज्यवादियों" और, दूसरी ओर, क्रांतिकारियों में बंटे हुए समाजवादी सर्वहारा को ज़ारशाही साम्राज्यवाद तथा उन्नत पूंजीवादी, यूरोपीय साम्राज्यवाद के उस **संश्रय** का सामना करना पड़ रहा है, जिसका आधार उनके द्वारा अनेक जातियों का संयुक्त उत्पीड़न है।

परिस्थिति में ये ही ठोस परिवर्तन हुए हैं और ठोस दृष्टिकोण ग्रहण करने के अपने वादे के बावजूद पोलिश सामाजिक-जनवादी इन्हीं परिवर्तनों की उपेक्षा करते हैं! अतः ठोस परिवर्तन उन्हीं समाजवादी

* रियाज़ानोव ने ग्रूनबर्ग के 'समाजवाद के इतिहास के पुरालेख' (१६१६, खंड १) में पोलिश प्रश्न के बारे में एंगेल्स के १८६६ में लिखे एक बड़े दिलचस्प लेख को प्रकाशित किया है। एंगेल्स ज़ोर देकर कहते हैं कि सर्वहारा के लिए यूरोप के बड़े, प्रधान राष्ट्रों की राजनीतिक स्वतंत्रता तथा "आत्मनिर्णय" के अधिकार (right to dispose of itself) को मान्यता देना आवश्यक है और उन्होंने "जातियों के सिद्धांत" के (विशेषतः इस सिद्धांत के बोनापार्तीय कार्यान्वयन के), अर्थात किसी भी छोटी-मोटी जाति को इन बड़े राष्ट्रों के समकक्ष रखने के बेतुकेपन की ओर इशारा किया है। एंगेल्स कहते हैं: "रूस के पास लूट का बहुत-सा माल है" (अर्थात उत्पीड़ित जातियां हैं), "जिसे उसे हिसाब चुकाने के दिन लौटाना पड़ेगा।"[96] बोनापार्तशाही तथा ज़ारशाही, दोनों ही ख़ुद **अपने** फ़ायदे के लिए और यूरोपीय जनतंत्र **के ख़िलाफ़** लघु-राष्ट्रीय आंदोलनों का **इस्तेमाल करती हैं।**

सिद्धांतों के कार्यान्वयन में हुआ है: **उस समय** सबसे मुख्य बात थी "ज़ारशाही के विरुद्ध" (तथा **ज़ारशाही द्वारा** जनतंत्रविरोधी लक्ष्यों के लिए इस्तेमाल किये जानेवाले किन्हीं लघु-राष्ट्रीय आंदोलनों के विरुद्ध) और पश्चिम की बृहत्तर क्रांतिकारी जातियों के लिए संघर्ष करना। **आज** मुख्य बात है साम्राज्यवादी शक्तियों, साम्राज्यवादी बुर्जुआज़ी तथा सामाजिक-साम्राज्यवादियों के संयुक्त, क़तारबंद मोरचे का विरोध करना और समाजवादी क्रांति के प्रयोजन के लिए साम्राज्यवादविरोधी **सभी** राष्ट्रीय आंदोलनों के उपयोग **के पक्ष में** होना। **आज** आम साम्राज्यवादी मारचे के ख़िलाफ़ संघर्ष जितना ही **अधिक शुद्ध रूप से** सर्वहारा संघर्ष बन जाता है, स्पष्टतः उतना ही अधिक महत्वपूर्ण यह अंतर्राष्ट्रीयतावादी सिद्धांत हो जाता है कि "दूसरी जातियों का उत्पीड़न करनेवाली कोई भी जाति आज़ाद नहीं हो सकती"।

सामाजिक क्रांति की अपनी मताग्रही समझ **के नाम पर** प्रूदोंवादियों ने पोलैंड की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका की उपेक्षा की और राष्ट्रीय आंदोलनों की ओर से मुंह मोड़ा। पोलिश सामाजिक-जनवादियों का आचरण भी इतना ही मताग्रही है, इसलिए कि वे सामाजिक-साम्राज्यवादियों के ख़िलाफ़ संघर्ष के अंतर्राष्ट्रीय मोरचे को तोड़ते हैं और समामेलनों के प्रश्न पर अपने ढुलमुलपन द्वारा इन सामाजिक-साम्राज्यवादियों की (वस्तुगत दृष्टि से) सहायता करते हैं। इसलिए कि यह ठीक सर्वहारा संघर्ष का अंतर्राष्ट्रीय मोरचा ही है, जो छोटी जातियों की ठोस स्थिति के संबंध में बदल गया है: उस समय (१८४८–१८७१ के काल में) छोटी जातियों का महत्व यह था कि वे "पश्चिमी जनतंत्र" और क्रांतिकारी जातियों की या ज़ारशाही की संभाव्य संघाती थीं; आज (१८६८–१६१४ में) छोटी जातियों का यह महत्व समाप्त हो चुका है; आज ये इसी अर्थ में महत्वपूर्ण हैं कि ये "अभिभावी जातियों" की परोपजीविता और फलतः सामाजिक-साम्राज्यवाद का एक पोषक माध्यम हैं। महत्वपूर्ण बात यह नहीं है कि छोटी जातियों का पचासवां या सौवां भाग समाजवादी क्रांति से पहले मुक्त होता है या नहीं, बल्कि यह है कि साम्राज्यवाद के युग में सर्वहारा वस्तुगत कारणों से दो अंतर्राष्ट्रीय ख़ेमों में बंट गया है, जिनमें से एक अभिभावी जातियों के बुर्जुआ वर्ग की थाली के बचे-खुचे टुकड़े खाकर पतित हो गया है – जिन्हें यह वर्ग अन्य बातों के अलावा छोटी जातियों के दोहरे या तेहरे

शोषण द्वारा प्राप्त करता है – जबकि दूसरे क्षेमे का सर्वहारा छोटी-छोटी जातियों को मुक्त किये बिना, जनसाधारण को अंधराष्ट्रवाद-विरोधी, अर्थात समामेलनविरोधी, अर्थात "आत्मनिर्णयवादी" भावना में दीक्षित किये बिना अपने आप को मुक्त नहीं कर सकता।

हमारे पोलिश साथी प्रश्न के इस सबसे महत्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा करते हैं; वे चीज़ों को साम्राज्यवाद के युग में केंद्रीय दृष्टिकोण से, अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा के दो क्षेमों में विभाजन के दृष्टिकोण से **नहीं** देखते।

उनके प्रूदोंवाद की कुछ और ठोस मिसालें ये हैं: (१) १९१६ के आयरिश विद्रोह के प्रति उनका दृष्टिकोण, जिसकी चर्चा हम बाद में करेंगे; (२) स्थापनाओं में उनकी घोषणा (अनुच्छेद २, अनुभाग ३, पैरा ३ के अंत में) कि समाजवादी क्रांति के नारे को "किसी भी चीज़ से ढांका नहीं जाना चाहिए"। यह विचार निश्चय ही घोर मार्क्सवादविरोधी है कि समाजवादी क्रांति के नारे को जातियों के प्रश्न समेत सभी प्रश्नों के बारे में एक सुसंगत क्रांतिकारी दृष्टिकोण से **संबद्ध करने से** उस नारे को "ढांका" जा सकता है।

पोलिश सामाजिक-जनवादियों की दृष्टि में हमारा कार्यक्रम एक "राष्ट्रीय-सुधारवादी" कार्यक्रम है। ज़रा दो व्यावहारिक प्रस्तावों की तुलना कीजिये: (१) स्वायत्तता का प्रस्ताव (पोलिश स्थापना ३, अनुभाग ४) तथा (२) विलग होने की स्वतंत्रता का प्रस्ताव। इसी बात में और केवल इसी बात में हमारे कार्यक्रम भिन्न हैं! और क्या यह प्रत्यक्ष नहीं है कि पहला कार्यक्रम सुधारवादी है, न कि दूसरा? सुधारवादी परिवर्तन वह होता है, जो शासक वर्ग की सत्ता के आधारों को अखंडित छोड़ देता है, वह मात्र एक रिआयत है, जिससे इस सत्ता पर आंच नहीं आती। क्रांतिकारी परिवर्तन सत्ता के आधारों को खंडित करता है। सुधारवादी जातीय कार्यक्रम शासक जाति के **सभी** विशेषाधिकारों को रद्द **नहीं** करता; वह पूर्ण समानता स्थापित **नहीं** करता, वह जातीय उत्पीड़न के **सभी रूपों को** नष्ट **नहीं** करता। कोई "स्वायत्त" जाति जिन अधिकारों का उपभोग करती है, वे "शासक" जाति के अधिकारों के समान नहीं होते; यदि हमारे पोलिश साथी (हमारे पुराने अर्थवादियों की तरह) **राजनीतिक** धारणाओं तथा प्रवर्गों के विश्लेषण से आग्रहपूर्वक कतराये न होते, तो वे यह देखे बिना नहीं

रह सकते थे। १९०५ तक स्वीडन के एक भाग के रूप में स्वायत्त नार्वे ने व्यापकतम स्वायत्तता का उपभोग किया, परंतु वह स्वीडन के समकक्ष न था। उसकी समानता केवल उसके स्वतंत्र विलगाव द्वारा ही **व्यवहारतः** प्रत्यक्ष तथा सिद्ध हुई (चलते-चलते हम इतना और कह दें कि ठीक इस स्वतंत्र विलगाव ने ही अधिकारों की समानता पर टिके एक अधिक घनिष्ठ तथा अधिक जनतांत्रिक साहचर्य के लिए आधार निर्मित किया)। जब तक नार्वे एक स्वायत्त प्रदेश मात्र था, स्वीडनी अभिजात वर्ग को **एक** अतिरिक्त विशेषाधिकार प्राप्त था; विलग्नता ने इस विशेषाधिकार को "कमज़ोर" नहीं किया (सुधारवाद का सारतत्व है किसी बुराई को नष्ट न करके उसे **कमज़ोर** करना), बल्कि **पूरी तरह मिटा दिया** (जो किसी कार्यक्रम के क्रांतिकारी चरित्र का प्रमुख लक्षण है)।

प्रसंगवश यह कहा जा सकता है: स्वायत्तता एक सुधार के रूप में विलग होने की स्वतंत्रता से, जो एक क्रांतिकारी क़दम है, सिद्धांततः भिन्न है। यह बात अविवाद्य है। परंतु, जैसाकि सभी जानते हैं, सुधार व्यवहारतः अकसर क्रांति की दिशा में एक क़दम होता है। ठीक स्वायत्तता ही संबद्ध राज्य की सीमाओं के भीतर ज़बरदस्ती रखी हुई किसी जाति को एक निश्चित राष्ट्र के रूप में गठित होने, अपनी शक्तियों का अनुमान लगाने, उन्हें एकजुट तथा संगठित करने और सबसे उपयुक्त मौक़ा चुनकर... "नार्वेजियाई" भावना के अनुरूप यह **घोषणा** करने में सक्षम बनाती है: हम, अमुक जाति अथवा अमुक प्रदेश की स्वायत्त विधान सभा के सदस्य घोषणा करते हैं कि समस्त रूस का सम्राट पोलैंड का राजा नहीं रह गया है, आदि। इस बात पर जो आम "आपत्ति" की जाती है, वह यह है कि ऐसे सवालों का फ़ैसला घोषणाओं से नहीं, लड़ाइयों से होता है। सही बात है: अधिकांश मामलों में ऐसे सवालों का फ़ैसला लड़ाइयों से ही होता है (ठीक उसी प्रकार, जैसे बड़े राज्यों के शासन के स्वरूप का प्रश्न अधिकांश मामलों में युद्धों तथा क्रांतियों द्वारा ही निश्चित होता है)। फिर भी इस बात पर ग़ौर करने में कोई हर्ज नहीं है कि क्या किसी क्रांतिकारी पार्टी के राजनीतिक कार्यक्रम पर **इस प्रकार की** "आपत्ति" युक्तिसंगत है? क्या हम सर्वहारा के लिए न्याय तथा लाभ **के हेतु**, जनतंत्र तथा समाजवाद **के हेतु** होनेवाले युद्धों तथा क्रांतियों के विरुद्ध हैं?

"परंतु हम संभवतः एक या दो करोड़ की आबादीवाली एक छोटी-सी जाति की संदिग्ध मुक्ति की खातिर बड़ी जातियों के बीच युद्ध के, दो करोड़ आदमियों की हत्या के पक्ष में नहीं हो सकते!" नहीं, हम बेशक नहीं हो सकते। इसलिए नहीं कि हमने अपने कार्यक्रम से जातियों की पूर्ण समानता को निकाल दिया है, बल्कि इसलिए कि किसी **एक** देश के जनतांत्रिक हितों को अनिवार्यतः **अनेक तथा सभी** देशों के जनतांत्रिक हितों के अधीन करना चाहिए। मान लीजिये कि दो विशाल राजतंत्रों के बीच एक छोटा-सा राजतंत्र है, जिसका राजा दोनों पड़ोसी देशों के महाराजाओं के साथ रक्त संबंध तथा अन्य संबंधों द्वारा "बंधा" हुआ है। हम यह भी मान लें कि इस छोटे-से देश में गणतंत्र की घोषणा तथा **उसके** राजा के निष्कासन का व्यावहारिक परिणाम यह होगा कि वहां उसी राजा अथवा किसी दूसरे राजा के शासन की पुनःस्थापना के लिए दोनों पड़ोसी देशों के बीच युद्ध छिड़ जायेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समस्त अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद तथा इस छोटे-से देश के सामाजिक-जनवाद का सचमुच अंतर्राष्ट्रीयतावादी अंशक इस मामले में **राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र की स्थापना का विरोध करेगा।** राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र की स्थापना करने की मांग निरपेक्ष नहीं है, बल्कि वह जनतांत्रिक मांगों में से एक मांग है, जो समग्र रूप से जनतंत्र के हितों के (और निःसंदेह इससे भी ज्यादा समाजवादी सर्वहारा के हितों के) अधीन है। इस बात की पूरी संभावना है कि इस प्रकार के मामले को लेकर किसी भी देश के सामाजिक-जनवादियों के बीच तनिक-सा भी मतभेद उत्पन्न न हो। परंतु यदि **इस** आधार पर कोई भी सामाजिक-जनवादी यह प्रस्ताव करे कि अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद के कार्यक्रम से गणतंत्र के नारे को बिलकुल निकाल देना चाहिए, तो उसे निश्चय ही पागल समझा जायेगा। उससे कहा जायेगा कि कुछ भी हो, **विशेष** तथा **सामान्य** के प्राथमिक युक्तिसंगत अंतर को हरगिज़ नहीं भूलना चाहिए।

यह उदाहरण कुछ भिन्न पहलू से मज़दूर वर्ग की **अंतर्राष्ट्रीयतावादी** शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। क्या ऐसी शिक्षा-दीक्षा – जिसकी आवश्यकता तथा जिसके अत्यधिक महत्व के बारे में ज़िम्मरवाल्डी वामपंथियों के बीच मतभेद अकल्पनीय हैं – बड़ी, उत्पीड़क जातियों तथा छोटी, उत्पीड़ित जातियों के बीच, समामेलनकारी जातियों तथा समामेलित जातियों के बीच **यथार्थतः एकरूप** हो सकती है?

जाहिर है कि नहीं हो सकती। हर ठोस मामले में सामान्य लक्ष्य – **सभी** जातियों की पूर्ण समानता, उनका घनिष्ठतम साहचर्य तथा आगे चलकर विलयन – प्रकटतः भिन्न-भिन्न मार्गों से हासिल किया जाता है, उसी प्रकार, जैसे कहा जा सकता है कि पृष्ठ विशेष के मध्यवर्ती किसी बिंदु पर पहुंचने का रास्ता एक किनारे से बायीं ओर है और दूसरे किनारे से दायीं ओर। यदि एक बड़ी, उत्पीड़क, समामेलनकारी जाति का कोई सामाजिक-जनवादी सामान्यतः जातियों के विलयन की हिमायत करते हुए एक क्षण के लिए भी यह भूल जाये कि "उसके" निकोलाई द्वितीय, "उसके" विल्हेल्म, जार्ज, प्वांकारे, आदि **भी** छोटी जातियों के साथ **विलयन** (समामेलनों द्वारा) का **समर्थन करते हैं** – निकोलाई द्वितीय गैलीशिया के साथ "विलयन" का, विल्हेल्म द्वितीय बेल्जियम के साथ "विलयन" का, आदि – तो ऐसा सामाजिक-जनवादी सिद्धांततः हास्यास्पद मताग्रही तथा व्यवहारतः साम्राज्यवाद का मददगार ही होगा।

उत्पीड़क देशों के मज़दूरों की अंतर्राष्ट्रीयतावादी शिक्षा-दीक्षा में अनिवार्यतः इस पर बल दिया जाना चाहिए कि वे उत्पीड़ित देशों के लिए विलग होने की स्वतंत्रता की हिमायत करें और उसके लिए संघर्ष करें। इसके बिना कोई अंतर्राष्ट्रीयतावाद **नहीं** हो सकता। किसी उत्पीड़क जाति का जो सामाजिक-जनवादी ऐसा प्रचार **नहीं** चलाता, उसे साम्राज्यवादी और पाजी समझना हमारा अधिकार और कर्तव्य है। भले ही समाजवाद की स्थापना से पहले विलग्नता के संभव तथा "साध्य" होने का **संयोग** क्षीण से क्षीण हो, तो भी यह मांग एक सर्वथा निरपेक्ष मांग है।

हमारा यह कर्तव्य है कि हम मज़दूरों को जातीय भेदों के प्रति "उदासीन" होने की शिक्षा दें। इसके बारे में कोई संदेह नहीं है। परंतु यह **समामेलनकारियों** की उदासीनता हरगिज़ नहीं होनी चाहिए। उत्पीड़क जाति के सदस्य को इसके प्रति "उदासीन" होना चाहिए कि छोटी जातियां अपनी सहभावनाओं के अनुसार **उसके** राज्य का **या किसी पड़ोसी** राज्य का अंग हैं या ख़ुदमुख़्तार हैं; यदि वह इस प्रकार से "उदासीन" नहीं है, तो वह सामाजिक-जनवादी **नहीं है।**

अंतर्राष्ट्रीयतावादी सामाजिक-जनवादी होने के लिए ज़रूरी है कि सिर्फ़ अपनी ही जाति के बारे में ही **न** सोचा जाये, बल्कि सभी जातियों के हितों को, उनकी सामान्य स्वतंत्रता तथा समानता को **स्वयं अपनी जाति के ऊपर** रखा जाये। "सिद्धांत" में सभी इसे मानते हैं, परंतु व्यवहार में समामेलनवादी उदासीनता प्रदर्शित की जाती है। यही बुराई की जड़ है।

दूसरी ओर, छोटी जाति के सामाजिक-जनवादी को अपने आंदोलन में हमारे सामान्य सूत्र – जातियों का "स्वैच्छिक **एकीकरण**" – के **दूसरे** शब्द पर बल देना चाहिए। वह अंतर्राष्ट्रीयतावादी होने के नाते अपने कर्तव्यों से च्युत हुए बिना अपनी जाति की राजनीतिक स्वाधीनता और किसी पड़ोसी राज्य क, ख, ग, आदि में उसके विलयन, **दोनों** का हामी हो सकता है। लेकिन यह ज़रूरी है कि वह बहरसूरत लघु-जातीय संकीर्णता, पृथकता तथा एकांतिकता **के ख़िलाफ़** संघर्ष करे, यह ज़रूरी है कि वह समष्टि तथा सामान्य की मान्यता के लिए, विशेष के हितों को सामान्य के हितों के अधीन बनाने के लिए संघर्ष करे।

जिन लोगों ने इस प्रश्न पर अच्छी तरह विचार नहीं किया है, वे सोचते हैं कि उत्पीड़क जातियों के सामाजिक-जनवादियों के लिए "**विलग होने** की स्वतंत्रता" का आग्रह करना और साथ ही उत्पीड़ित जातियों के सामाजिक-जनवादियों के लिए "**एकीकरण** की स्वतंत्रता" का आग्रह करना "अंतर्विरोधपूर्ण" है। मगर मामूली तौर से भी ग़ौर किया जाये, तो यह ज़ाहिर हो जायेगा कि परिस्थिति **विशेष से** अंतर्राष्ट्रीयतावाद तथा जातियों के विलयन की दिशा में **अन्य कोई** मार्ग, इस लक्ष्य की दिशा में अन्य कोई मार्ग न है और न ही हो सकता है।

अब हम डच तथा पोलिश सामाजिक-जनवाद के **विशिष्ट** दृष्टिकोण पर आते हैं।

८. डच तथा पोलिश सामाजिक-जनवादी अंतर्राष्ट्रीयतावादियों के दृष्टिकोण में विशेष तथा सामान्य

इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि डच तथा पोलिश मार्क्सवादी, जो आत्मनिर्णय का विरोध करते हैं, अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-

जनवाद के बेहतरीन क्रांतिकारी तथा अंतर्राष्ट्रीयतावादी तत्वों में से हैं। तब फिर यह कैसे हो **सकता है** कि उनके सैद्धांतिक तर्कों में, जैसा हम देख चुके हैं, ग़लतियां ही ग़लतियां हों? एक भी सही सामान्य तर्क नहीं, "साम्राज्यवादी अर्थवाद" के सिवाय कुछ भी नहीं!

ऐसा डच तथा पोलिश साथियों के विशिष्ट आत्मगत अवगुणों के कारण हरगिज़ नहीं, बल्कि उनके देशों में मौजूद **विशिष्ट** वस्तुगत परिस्थितियों के कारण हुआ है। दोनों देशों की विशेषताएं हैं: (१) वे महाशक्तियों की वर्तमान "प्रणाली" के अंतर्गत छोटे तथा निस्सहाय हैं; (२) भौगोलिक रूप से दोनों ही साम्राज्यवादी लुटेरों में अति-घोर प्रतिद्वंद्वी, प्रचंड शक्तिशाली देशों (ब्रिटेन और जर्मनी, जर्मनी और रूस) के बीच स्थित हैं; (३) दोनों ही में उन युगों की स्मृतियां तथा परंपराएं घोर सशक्त हैं, जब वे **स्वयं** "महाशक्तियां" थे: हालैंड कभी इंगलैंड से ज़्यादा बड़ी औपनिवेशिक शक्ति था; पोलैंड रूस और प्रशा के मुक़ाबले अधिक सुसंस्कृत तथा अधिक प्रबल महाशक्ति था; (४) दोनों ही ने आज तक अन्य जातियों के उत्पीड़न का विशेषाधिकार सुरक्षित रखा है: डच बुर्जुआज़ी अत्यंत संपदासंपन्न डच इंडीज़ का स्वामी है; पोलिश ज़मींदार उक्रइनी तथा बेलोरूसी किसान पर ज़ुल्म ढाता है, तो पोलिश बुर्जुआ यहूदियों पर आदि, आदि।

इन चारों बातों के संयोजन में जो विशिष्टता है, वह आयरलैंड, पुर्तगाल (पुर्तगाल एक समय स्पेन में समामेलित था), अल्सास, नार्वे, फ़िनलैंड, उक्रइना, लाटवी तथा बेलोरूसी प्रदेशों और बहुत-से देशों में नहीं पायी जाती और यह विशिष्टता ही सारी बात का **वास्तविक सारतत्व** है! जब डच और पोलिश सामाजिक-जनवादी **सामान्य** दलीलों का, अर्थात सामान्यतः साम्राज्यवाद संबंधी, सामान्यतः समाजवाद संबंधी, सामान्यतः जनतंत्र संबंधी, सामान्यतः जातीय उत्पीड़न संबंधी दलीलों का इस्तेमाल करते हुए आत्मनिर्णय के ख़िलाफ़ तर्क करते हैं, तो हम सचाई के साथ कह सकते हैं कि वे एक ग़लती के बाद दूसरी ग़लती करते हैं। परंतु जो विशेष स्थिति वे ग्रहण करते हैं, वह इन प्रत्यक्षतः ग़लत सामान्य तर्कों के **खोल** को फेंकते और हालैंड तथा पोलैंड में मौजूद **विशेष** परिस्थितियों की विशिष्टता के दृष्टिकोण से प्रश्न के **सारतत्व** की परीक्षा करते ही, वह **बोधगम्य** तथा सर्वथा उचित दिखायी देने लगती है। हम असंगति में धंसने का भय किये बिना कह सकते हैं

कि आत्मनिर्णय के खिलाफ़ ज़ोर-शोर से जूझते समय डच और पोलिश मार्क्सवादियों का मतलब बिलकुल ठीक-ठीक वह ही नहीं होता, जो वे कहते हैं, या इसी बात को दूसरे ढंग से कहा जा सकता है – जो उनका मतलब है, उसे वे बिलकुल ठीक-ठीक कहते नहीं। *

हम अपनी स्थापनाओं** में एक उदाहरण पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। गोर्टर **स्वयं अपने** देश के आत्मनिर्णय के खिलाफ़ हैं, परंतु "अपनी" जाति द्वारा उत्पीड़ित डच इंडीज़ के आत्मनिर्णय **के हक़ में** हैं! यह क्या कोई ताज्जुब की बात है कि हमारी नज़र में वह उन लोगों के मुक़ाबले ज़्यादा ईमानदार अंतर्राष्ट्रीयतावादी और हमारे ज़्यादा नज़दीकी सहचिंतक हैं, जो आत्मनिर्णय को **उस प्रकार** – सिर्फ़ ज़बानी, पाखंडपूर्ण रूप से – मानते हैं, जैसे जर्मनी में काउत्स्की और रूस में त्रोत्स्की तथा मार्तोव मानते हैं? मार्क्सवाद के सामान्य तथा आधारभूत सिद्धांत असंदिग्ध रूप से यह कर्तव्य घोषित करते हैं कि "मेरी अपनी" जाति द्वारा उत्पीड़ित जातियों के विलग होने की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया जाये, परंतु वे निश्चय ही यह अपेक्षा नहीं करते कि विशेषतः हालैंड की स्वाधीनता को सर्वप्रमुख महत्व का प्रश्न बना दिया जाये – उस हालैंड की, जो सर्वाधिक अपनी ही इस संकीर्ण, संवेदनाशून्य, स्वार्थपूर्ण तथा विमूढ़कारी एकांतिकता का शिकार है: सारी दुनिया जलकर राख हो जाती है, तो हो जाये; हम इस सबसे अलग हैं, "हम" अपनी पुरानी लूट से और, उसका जो बेशक़ीमत हिस्सा हमारे पास "बच रहा" है, उससे, डच इंडीज़ से, संतुष्ट हैं और "हम" और किसी बात से मतलब नहीं रखते!

एक और मिसाल। पोलिश सामाजिक-जनवादी कार्ल रादेक ने, जिन्होंने युद्ध के आरंभ-काल से जर्मन सामाजिक-जनवाद की पांतों में अंतर्राष्ट्रीयतावाद के लिए अपने दृढ़ संघर्ष से विशेषतः बहुत बड़ी सेवा की है, 'जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार' शीर्षक एक लेख में (जूलिआन बोरहार्ड्ट द्वारा संपादित उग्र वामपंथी मासिक *Zichtstrahlen* [97] में, जिस पर प्रशाई सेंसर ने पाबंदी लगा रखी है। देखें ५ दिसंबर, १९१५, वर्ष ३, अंक ३) आत्मनिर्णय के सिद्धांत पर भीषण प्रहार किया है। प्रसंगवश इस लेख में उन्होंने अपने समर्थन में **केवल** डच तथा पोलिश प्रमाणों को उद्धृत किया है और अन्य तर्कों के साथ यह तर्क उपस्थित किया है कि आत्मनिर्णय इस विचार का पोषण करता है कि "सामाजिक-जनवाद का यह कर्तव्य है कि वह स्वतंत्रता के लिए किसी भी संघर्ष का समर्थन करे"।

* पाठक को इस बात की याद दिलाना ज़रूरी है कि **सभी** पोलिश सामाजिक-जनवादियों ने अपनी ज़िम्मरवाल्ड घोषणा में **सामान्यतः** आत्मनिर्णय को **स्वीकार** किया था, हालांकि उन्होंने इस सिद्धांत का निरूपण कुछ भिन्न रूप से किया था।

** देखें प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १४३। – सं०

सामान्य सिद्धांत की दृष्टि से यह एकदम शर्मनाक तर्क है, क्योंकि वह प्रत्यक्षतः असंगत है: पहली बात यह कि यदि विशेष को सामान्य के अधीन न किया जाये, तो एक भी ऐसी जनतांत्रिक मांग न है, न हो सकती है, जिससे बुराइयां न पैदा होती हों; हम न तो स्वतंत्रता के लिए "किसी भी" संघर्ष का, न ही "किसी भी" गणतंत्रीय अथवा पादरीशाहीविरोधी आंदोलन का समर्थन करने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं। दूसरी बात यह कि जातीय उत्पीड़न के खिलाफ़ संघर्ष के लिए **कोई एक** ऐसा सूत्र न है और न हो सकता है, जो **ठीक इसी** "दोष" से मुक्त हो। स्वयं रादेक ने *Berner Tagwacht* अख़बार (१९१५, अंक २५३) में "पुराने और नये समामेलनों के खिलाफ़" सूत्र का इस्तेमाल किया। कोई भी पोलिश राष्ट्रवादी इस सूत्र से सर्वथा उचित रूप से यह "निष्कर्ष" निकाल सकता है: "पोलैंड समामेलित देश है, मैं समामेलनों के खिलाफ़ हूं, **अर्थात** मैं पोलैंड की आज़ादी का हामी हूं।" या रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग को ले लीजिये; मुझे याद है कि १९०८ में लिखे एक लेख[98] में उन्होंने यह विचार प्रकट किया था कि "जातीय उत्पीड़न के खिलाफ़" सूत्र बिलकुल पर्याप्त है। परंतु कोई भी पोलिश राष्ट्रवादी कहेगा – **और सर्वथा न्यायोचित रूप से कहेगा** – कि समामेलन जातीय उत्पीड़न का **एक** रूप है और **इसलिए**, इत्यादि।

परंतु आइये, हम इन सामान्य तर्कों के स्थान पर पोलैंड की **विशिष्ट** स्थिति को लें: **आज** युद्धों अथवा क्रांतियों के बिना उसकी स्वाधीनता "असाध्य" है। स्वाधीन राज्य के रूप में पोलैंड की पुनःस्थापना की ही ख़ातिर सर्वयूरोपीय युद्ध का हामी होना निकृष्टतम प्रकार का राष्ट्रवादी होना है और मुट्ठी भर पोलों के हितों को युद्ध से पीड़ित होनेवाले दसियों करोड़ लोगों के हितों के ऊपर रखना है। उदाहरण के लिए, "फ़ाकि" गुट (पोलिश समाजवादी पार्टी का दक्षिणपक्ष) के लोग सचमुच ऐसे ही हैं, जो केवल नामधारी समाजवादी हैं और जिनके

मुकाबले में पोलिश सामाजिक-जनवादी हजार बार सही है। **आज, पड़ोसी** साम्राज्यवादी शक्तियों के **मौजूदा** संतुलन की स्थिति में पोलैंड की स्वाधीनता का नारा उठाना वास्तव में मृग-मरीचिका के पीछे दौड़ना है, तंगनज़र राष्ट्रवाद पर उतर आना है और यह भूल जाना है कि अखिल यूरोपीय क्रांति या कम से कम रूसी और जर्मन क्रांतियां पोलिश स्वाधीनता की अनिवार्य पूर्वापेक्षा हैं। रूस में १६०८–१६१४ में संश्रय-स्वातंत्र्य को एक स्वतंत्र नारे के रूप में पेश करना भी मृग-मरीचिका होता और उससे वस्तुगत रूप से स्तोलीपिन मज़दूर पार्टी[११] (अब पोत्रेसोव-ग्वोज्देव पार्टी – बात एक ही है) को ही मदद मिलती। परंतु सामान्यतः सामाजिक-जनवाद के कार्यक्रम से संश्रय-स्वातंत्र्य की मांग को निकाल देना पागलपन होगा!

एक तीसरा और शायद सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण। पोलिश स्थापनाओं में (स्थापना ३, अनुच्छेद २ के अंत में) हम पढ़ते हैं कि एक मध्यवर्ती राज्य के रूप में स्वाधीन पोलिश राज्य के विचार का इस आधार पर विरोध किया जाता है कि वह "छोटे पुंसत्वहीन दलों की कोरी कल्पना है। यदि इस विचार को कार्यान्वित किया जाता है, तो उसका अर्थ होगा एक छोटा-सा पोलिश राज्य-खंड स्थापित करना, जो महाशक्तियों के किसी एक या दूसरे गुट का सैनिक उपनिवेश होगा, उनके सैनिक अथवा आर्थिक हितों की क्रीड़ा-भूमि होगा, विदेशी पूंजी के शोषण का एक क्षेत्र तथा भावी युद्धों का एक रणक्षेत्र होगा"। ये सारी बातें, जब वे **वर्तमान काल में** पोलिश स्वाधीनता के नारे **के ख़िलाफ़** कही जाती हैं, बहुत **सही हैं**, क्योंकि अकेले पोलैंड में क्रांति हो भी जाये, तो उसमें कुछ बदलनेवाला नहीं है और उससे होगा केवल यह कि पोलैंड में जनसाधारण का ध्यान **मुख्य वस्तु** से – उनके संघर्ष तथा रूसी और जर्मन सर्वहारा के संघर्ष के संबंध से – हट जायेगा। यह कोई विरोधाभास नहीं, अपितु एक वास्तविकता है कि आज पोलिश सर्वहारा पड़ोसी देशों के सर्वहारा के साथ **मिल-जुलकर** संघर्ष करके ही, **तंगनज़र पोलिश** राष्ट्रवादियों का मुकाबला करके ही, **पोलैंड की स्वतंत्रता समेत** समाजवाद तथा स्वतंत्रता के ध्येय की सहायता कर सकता है। इन राष्ट्रवादियों के ख़िलाफ़ संघर्ष में पोलिश सामाजिक-जनवादियों ने ऐतिहासिक दृष्टि से जो बड़ी सेवाएं की हैं, उनसे इन्कार नहीं किया जा सकता।

परंतु **वर्तमान** युग में पोलैंड में मौजूदा **विशेष** परिस्थितियों के दृष्टिकोण से सही ये ही तर्क उस **सामान्य** रूप में सही नहीं हैं, जो उन्हें दिया जाता है। जब तक युद्ध होते रहेंगे, तब तक जर्मनी और रूस के बीच युद्धों में पोलैंड सदा एक रणक्षेत्र बना रहेगा, यह युद्धों की मध्यवर्ती अवधि में अधिक व्यापक राजनीतिक स्वतंत्रता के ख़िलाफ़ (और इसलिए राजनीतिक स्वाधीनता के ख़िलाफ़) कोई तर्क नहीं है। यही बात विदेशी पूंजी द्वारा शोषण के बारे में तथा विदेशी हितों की क्रीड़ा-भूमि के रूप में पोलैंड की भूमिका के बारे में विचारों पर लागू होती है। फ़िलहाल पोलिश सामाजिक-जनवादी पोलैंड की स्वाधीनता का नारा नहीं उठा सकते, क्योंकि सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावादियों के रूप में पोल "फ़ाकि" गुट की तरह दो में से **एक** साम्राज्यवादी राजतंत्र के सम्मुख दीन भाव से नतमस्तक हुए बिना इस मामले में **कुछ नहीं** कर सकते। परंतु रूसी और जर्मन मज़दूर इस ओर से उदासीन **नहीं** हो सकते कि वे पोलैंड के समामेलन में भागीदार होंगे (इसका अर्थ है जर्मन और रूसी मज़दूरों तथा किसानों को जघन्यतम नीचता, विदेशी जनों के जल्लाद की भूमिका अदा करने के लिए सहमति की भावना में दीक्षित करना) या पोलैंड स्वाधीन राज्य होगा।

परिस्थिति सचमुच उलझी हुई है, फिर भी एक उपाय है, जिसके द्वारा **सभी** भागीदार अंतर्राष्ट्रीयतावादी बने रह सकते हैं: रूसी और जर्मन सामाजिक-जनवादी यह मांग करके कि पोलैंड को बेशर्त "विलग होने की **स्वतंत्रता**" दी जाये; और पोलिश सामाजिक-जनवादी युग विशेष अथवा काल विशेष में पोलैंड की स्वाधीनता का नारा उठाये बिना छोटे और बड़े, दोनों ही प्रकार के देशों में सर्वहारा आंदोलन की एकता के लिए संघर्ष करके।

९. काउत्स्की के नाम एंगेल्स का पत्र

अपनी पुस्तिका 'समाजवाद तथा औपनिवेशिक नीति' (बर्लिन, १६०७) में काउत्स्की ने, जिन्होंने तब तक मार्क्सवाद को तिलांजलि नहीं दी थी, १२ सितंबर, १८८२ को अपने को लिखे गये एंगेल्स के एक पत्र को प्रकाशित किया, जो विचाराधीन प्रश्न के प्रसंग में बड़ा दिलचस्प है। इस पत्र का मुख्य भाग यहां दिया जाता है:

"... मेरी राय में असली उपनिवेश, अर्थात वे देश – कनाडा, केप, आस्ट्रेलिया – जहां यूरोप के लोग बस गये हैं, सब स्वाधीन हो जायेंगे; दूसरी ओर, सर्वहारा को उन देशों को, जहां देशी आबादी निवास करती है और जिन्हें बस अधीन कर लिया गया है – भारत, अल्जीरिया, डच, पुर्तगाली और स्पेनी अधिकृत प्रदेशों को – फ़िलहाल अपने अधिकार में ले लेना और उन्हें यथाशीघ्र स्वाधीनता की दिशा में अग्रसर करना चाहिए। यह कहना कठिन है कि यह प्रक्रिया किस प्रकार विकसित होगी। संभव है, सचमुच बहुत अधिक संभव है कि भारत क्रांति संपन्न कर लेगा और चूंकि अपने को स्वतंत्र करने की प्रक्रिया में रत सर्वहारा कोई औपनिवेशिक युद्ध नहीं चला सकता, इसलिए इस क्रांति को अपना प्रक्रम पूरा करने के लिए छोड़ देना होगा; बेशक वह तरह-तरह के विध्वंस के बिना समाप्त नहीं होगी, लेकिन इस तरह की चीज़ किसी भी क्रांति से अलग नहीं की जा सकती। यही बात अन्यत्र, उदाहरणार्थ, अल्जीरिया में या मिस्र में हो सकती है और वह निस्संदेह **हमारे लिए** सबसे अच्छी बात होगी। हमें अपने यहां काफ़ी कुछ करने को पड़ा होगा। एक बार यूरोप और उत्तरी अमरीका का पुनर्गठन हो ले, तो उससे ऐसी विराट शक्ति तथा ऐसा उदाहरण प्रस्तुत होगा कि अर्धसभ्य देश स्वयमेव उनके पदचिह्नों पर चलेंगे; और कुछ नहीं, तो आर्थिक आवश्यकताएं यह सुनिश्चित कर देंगी। परंतु तब, इसके पहले कि ये देश भी समाजवादी संगठन की मंज़िल पर पहुंचें, उन्हें किन सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्थाओं से गुज़रना होगा, इसके बारे में, मेरा ख़याल है, आज हम ख़याली घोड़े ही दौड़ा सकते हैं। केवल एक बात निश्चित है: **विजयी सर्वहारा बग़ैर ऐसे कार्य द्वारा अपनी विजय की जड़ काटे किसी भी विदेशी जाति पर किसी भी प्रकार की नेमतें ज़बरदस्ती नहीं लाद सकता।** कहने की ज़रूरत नहीं कि इससे विभिन्न प्रकार के प्रतिरक्षात्मक युद्ध कदापि वर्जित नहीं हो जाते..."

एंगेल्स यह बिलकुल कल्पना नहीं करते कि एकमात्र "आर्थिक पक्ष" सारी कठिनाइयों को सीधे दूर कर देगा। आर्थिक क्रांति **सभी** जनों को समाजवाद के लिए **चेष्टा करने** की प्रेरणा देगी; परंतु इसके साथ ही – समाजवादी राज्य के ख़िलाफ़ – क्रांतियां तथा युद्ध संभव हैं। राजनीति अनिवार्यतः अपने को अर्थव्यवस्था के अनुरूप ढालेगी, परंतु तत्काल और निर्विघ्न रूप से नहीं, न सीधे और प्रत्यक्ष रूप से। एंगेल्स केवल

एक ही सर्वथा अंतर्राष्ट्रीयतावादी सिद्धांत के "निश्चित" होने का उल्लेख करते हैं और इसे वह **सभी** "विदेशी जातियों" पर, अर्थात केवल औपनिवेशिक जातियों पर ही नहीं, लागू करते हैं: उनके ऊपर ज़बरदस्ती नेमतें लादने का अर्थ होगा सर्वहारा की विजय की जड़ काटना।

सर्वहारा सिर्फ़ इसलिए ही निष्पाप तथा ग़लतियों और कमज़ोरियों से प्रतिरक्षित नहीं हो जायेगा कि उसने सामाजिक क्रांति संपन्न कर ली है। परंतु संभाव्य ग़लतियां (और स्वार्थपूर्ण हित – दूसरों के कंधे पर सवार होकर चलने की कोशिशें) उसे अनिवार्यतः इस सत्य को हृदयंगम करने के लिए विवश करेंगी।

हम सबका, ज़िम्मरवाल्डी वामपंथियों का वही विश्वास है, जो, उदाहरणार्थ, काउत्स्की का, १९१४ में अंधराष्ट्रवाद के पक्षपोषणार्थ मार्क्सवाद का परित्याग करने के पहले था, अर्थात यह विश्वास कि समाजवादी क्रांति **अत्यंत निकट भविष्य में** सर्वथा संभव है, जैसा स्वयं काउत्स्की ने कभी कहा था, "अब किसी भी घड़ी" संभव है। जातियों में वैर-विरोध इतनी जल्दी विलुप्त नहीं हो जायेंगे; किसी उत्पीड़ित जाति की अपनी उत्पीड़क जाति के प्रति घृणा – सर्वथा उचित घृणा – कुछ समय तक **क़ायम रहेगी**; वह समाजवाद की विजय **के बाद** और जातियों के बीच पूर्ण जनतांत्रिक संबंध अंतिम रूप से स्थापित होने **के बाद** विलुप्त होगी। यदि हम समाजवाद के प्रति वफ़ादार रहना चाहते हैं, तो यह ज़रूरी है कि हम इस समय ही जनसाधारण को अंतर्राष्ट्रीयतावाद की भावना में शिक्षित-दीक्षित करें, जो उत्पीड़क जातियों में उत्पीड़ित जातियों के लिए विलग होने की आज़ादी का प्रचार किये बिना असंभव है।

१०. १९१६ का आयरिश विद्रोह

हमारी स्थापनाएं इस विद्रोह के भड़कने से पहले ही लिखी गयी थीं, जिसे सैद्धांतिक विचारों को परखने के लिए कसौटी का काम देना होगा।

आत्मनिर्णय के विरोधियों के विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीड़ित छोटी-छोटी जातियों की प्राणशक्ति अभी

से क्षीण हो चुकी है, कि वे साम्राज्यवाद के खिलाफ़ कोई भी भूमिका अदा नहीं कर सकतीं, कि उनकी खालिस राष्ट्रीय आकांक्षाओं का समर्थन करने से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा, इत्यादि। १६१४–१६१६ के साम्राज्यवादी युद्ध का अनुभव **तथ्यों की मदद से** ऐसे निष्कर्षों का खंडन करता है।

युद्ध पश्चिम यूरोपीय जातियों के लिए और कुल मिलाकर साम्राज्यवाद के लिए संकट का एक युग सिद्ध हुआ है। प्रत्येक संकट रूढ़ियों को कूड़े में फेंक देता है, बाह्य आवरण को छिन्न-भिन्न कर देता है, जीर्ण-शीर्ण को बुहार फेंकता है और अंतर्निहित प्रेरणाओं और शक्तियों को प्रकट करता है। उत्पीड़ित जातियों के आंदोलन के दृष्टिकोण से उसने क्या प्रकट किया है? उपनिवेशों में विद्रोह की कोशिशों का एक पूरा सिलसिला सामने आया है, जिसे उत्पीड़क जातियों ने सैनिक सेंसरशिप के ज़रिये छिपाने की बेशक अपनी भरसक पूरी कोशिश की है। फिर भी लोग जानते हैं कि सिंगापुर में अंग्रेज़ों ने अपने हिंदुस्तानी सैनिकों के एक विद्रोह का पाशविक ढंग से दमन किया है; कि फ़ांसीसी अनाम में (देखें 'नाशे स्लोवो'[100]) और जर्मन कैमरून में (देखें 'जूनियस का पैंफ़्लेट') बग़ावत की कोशिशें की गयी हैं; कि यूरोप में, एक ओर, आयरलैंड में विद्रोह हुआ, जिसे "आज़ादीपसंद" अंग्रेज़ों ने, जिनकी यह हिम्मत न हुई कि अनिवार्य सैनिक भरती क़ानून को आयरलैंड पर भी लागू करें, विद्रोहियों को फांसी पर चढ़ाकर कुचल डाला, और दूसरी ओर, आस्ट्रियाई सरकार ने चेक विधान सभा के प्रतिनिधियों को "राजद्रोह के लिए" मौत की सज़ाएं दीं और पूरी की पूरी चेक रेजिमेंटों को उसी "अपराध" के लिए गोलियों से उड़वा दिया।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह सूची बिलकुल अधूरी है। फिर भी इससे यह साबित हो जाता है कि साम्राज्यवाद के संकट **के फलस्वरूप** उपनिवेशों तथा यूरोप, **दोनों** में राष्ट्रीय विद्रोह की आग भड़क उठी है, और यह कि क्रूरतापूर्ण धमकियों तथा दमनकारी कार्रवाइयों के बावजूद जातियों में सहानुभूति तथा विद्वेष की भावनाएं प्रकट हुई हैं। और ऐसा उस समय हुआ, जब साम्राज्यवाद का संकट अभी अपने विकास के चरम बिंदु पर नहीं पहुंचा था: साम्राज्यवादी बुर्जुआज़ी की शक्ति की जड़ अभी तक काटी नहीं गयी थी ("दम निकलने तक चलनेवाला" युद्ध ऐसा कर सकता है, परंतु अभी तक हुआ नहीं है) और साम्राज्यवादी देशों में सर्वहारा आंदोलन अभी भी बहुत कमज़ोर थे। तब क्या होगा, जब युद्ध पूरी तरह दम निकाल देगा या जब कम से कम एक राज्य में सर्वहारा संघर्ष के प्रहारों से बुर्जुआज़ी की शक्ति इस तरह हिल उठेगी, जिस तरह १६०५ में ज़ारशाही की शक्ति हिल गयी थी?

६ मई, १६१६ को कुछ वामपंथियों समेत ज़िम्मरवाल्डियों के मुखपत्र *Berner Tagwacht* में का० रा० प्रथमाक्षरों के हस्ताक्षर से आयरिश विद्रोह पर 'उनका राग समाप्त हुआ' शीर्षक से एक लेख निकला। इस लेख में आयरिश विद्रोह के बारे में कहा गया था कि वह "पर्युत्क्षेपण षड्यंत्र" (putsch) भर था, न कुछ उससे ज़्यादा, न कम, क्योंकि, जैसा लेखक ने तर्क किया, "आयरिश प्रश्न एक कृषिक प्रश्न था", किसानों को सुधारों के द्वारा शांत कर दिया गया था, और राष्ट्रवादी आंदोलन केवल एक "खालिस शहरी, निम्न-बुर्जुआ आंदोलन" होकर रह गया, "जिसे, उसने जो भी सनसनी पैदा की हो, उसके बावजूद, बहुत अधिक सामाजिक समर्थन प्राप्त न था"।

यह कोई अचरज की बात नहीं है कि यह बीभत्स रूप से मताग्रही तथा पंडिताऊ मूल्यांकन रूसी राष्ट्रवादी-उदारतावादी, कैडेट श्री अ० कुलिशेर के मूल्यांकन ('रेच', अंक १०२, १५ अप्रैल, १६१६) के साथ हूबहू मिल जाता है। इन सज्जन ने भी आयरिश विद्रोह को "डबलिन का पर्युत्क्षेपण षड्यंत्र" कहा है।

यह आशा की जाती है कि इस कहावत के मुताबिक़ कि "ऐसी कोई बुरी बात नहीं होती, जिससे किसी को फ़ायदा न हो", जिन बहुत-से साथियों ने यह नहीं समझा कि "आत्मनिर्णय" को तिलांजलि देकर और छोटी-छोटी जातियों के राष्ट्रीय आंदोलनों की अवहेलना कर वे किस दलदल में धंसते जा रहे हैं, उनकी आंखें साम्राज्यवादी बुर्जुआज़ी के एक प्रतिनिधि तथा एक सामाजिक-जनवादी के इस "सांयोगिक" मतैक्य से खुल जायेंगी!!

"पर्युत्क्षेपण षड्यंत्र" शब्द का वैज्ञानिक अर्थ में तभी प्रयोग किया जा सकता है, जब विद्रोह की चेष्टा बस षड्यंत्रकारियों या बेवकूफ़ दीवानों की किसी मंडली को ही प्रकाश में लाती है और जनसाधारण की सहानुभूति प्राप्त

करने में असफल रहती है। आयरलैंड का सदियों पुराना राष्ट्रीय आंदोलन विभिन्न मंजिलों तथा वर्ग हितों के संयोजनों से गुज़रकर अन्य बातों के अलावा अमरीका में एक आम आयरिश राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में प्रकट हुआ (*Vorwärts*,[101] २० मार्च, १९१६), जिसने आयरलैंड के लिए स्वाधीनता की मांग की; वह सड़कों पर लड़ाई के रूप में भी प्रकट हुआ, जिसे शहरी निम्न-बुर्जुआज़ी के एक भाग तथा **मज़दूरों के एक भाग** ने जन-आंदोलन की एक लंबी मुद्दत, प्रदर्शनों, अख़बारों पर पाबंदी, वग़ैरह के बाद चलाया। जो भी **इस प्रकार के** विद्रोह को "पर्युत्क्षेपण षड्यंत्र" की संज्ञा देता है, वह या तो कट्टर प्रतिक्रियावादी है, या ऐसा मताग्रही, जो सामाजिक क्रांति को एक प्राणवान घटना के रूप में ग्रहण करने में नितांत असमर्थ है।

यह सोचना कि उपनिवेशों में और यूरोप में छोटी जातियों के विद्रोहों के बिना, **अपने तमाम पूर्वाग्रहों समेत** निम्न-बुर्जुआज़ी के एक भाग द्वारा क्रांतिकारी विस्फोटों के बिना, ज़मींदारों, चर्च और राजतंत्र द्वारा उत्पीड़न के ख़िलाफ़, जातीय उत्पीड़न, आदि के ख़िलाफ़ राजनीतिक चेतनाहीन सर्वहारा तथा अर्धसर्वहारा जनसाधारण के आंदोलन के बिना सामाजिक क्रांति **संभव** है – यह सब सोचना **सामाजिक क्रांति से मुंह मोड़ लेना है।** मो, कहीं एक सेना क़तारबंद हो जाती है और कहती है: "**हम समाजवाद के हामी हैं**", और दूसरी सेना कहीं और क़तारबंद हो जाती है और कहती है: "हम साम्राज्यवाद के हामी हैं" और यही सामाजिक क्रांति होगी! सिर्फ़ इस प्रकार का हास्यास्पद पंडिताऊ मत रखनेवाले लोग ही आयरिश विद्रोह को "पर्युत्क्षेपण षड्यंत्र" कहकर उसे बदनाम कर सकते हैं।

जो भी "ख़ालिस" सामाजिक क्रांति का इंतज़ार करता है, वह जीते-जी **कभी भी** उसका दर्शन **नहीं** कर सकेगा। ऐसा व्यक्ति बिना यह समझे कि वास्तविक क्रांति क्या चीज़ है, क्रांति की सेवा का ढोंग रचता है।

१९०५ की रूसी क्रांति एक बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति थी। वह लड़ाइयों का एक सिलसिला थी, जिनमें आबादी के **सभी** असंतुष्ट वर्गों, समूहों तथा तत्वों ने भाग लिया। इनमें वे जनसाधारण थे, जिनमें भोंडे से भोंडे पूर्वग्रह व्याप्त थे और जो संघर्ष के अस्पष्टतम तथा विलक्षण-तम लक्ष्यों की ओर उन्मुख थे; जापानियों का पैसा खानेवाले छोटे-

छोटे दल थे, सट्टेबाज़ और मुहिमबाज़ क़िस्म के लोग थे, वग़ैरह। परंतु **वस्तुगत रूप से** यह जन-आंदोलन ज़ारशाही की कमर तोड़े दे रहा था तथा जनतंत्र के लिए ज़मीन तैयार कर रहा था, इसीलिए वर्ग-चेतन मज़दूरों ने उसका नेतृत्व किया।

यूरोप में समाजवादी क्रांति सभी और हर प्रकार के उत्पीड़ित तथा असंतुष्ट तत्वों के जन-संघर्ष के विस्फोट के अलावा और कुछ **नहीं हो सकती।** निम्न-बुर्जुआज़ी तथा पिछड़े हुए मज़दूरों के अंशक अनिवार्यतः उसमें भाग लेंगे – ऐसी सहभागिता के बिना **जन**-संघर्ष संभव **नहीं** है, उसके बिना **कोई भी** क्रांति संभव **नहीं** है – और उसी प्रकार अनिवार्यतः वे आंदोलन में अपने पूर्वग्रहों, अपनी प्रतिक्रियावादी कल्पनाओं, अपनी कमज़ोरियों और ग़लतियों को भी लायेंगे। परंतु **वस्तुगत रूप से** वे **पूंजी** पर प्रहार करेंगे और क्रांति का वर्ग-चेतन हरावल, अग्रणी सर्वहारा एक वैविध्यपूर्ण, अनमेल, पंचरंगे तथा बाह्य रूप से छुट-फुट जन-संघर्ष के इस वस्तुनिष्ठ सत्य को प्रकट करते हुए उसे एकजुट करने और दिशा देने में, सत्ता पर अधिकार करने, बैंकों पर क़ब्ज़ा करने और उन ट्रस्टों का स्वत्वहरण करने में समर्थ होगा, जिनसे सभी घृणा करते हैं (यद्यपि भिन्न-भिन्न कारणों से!), वह और अन्य अधिनायकीय कार्रवाइयां कर सकेगा, जिनका कुल मिलाकर फल होगा बुर्जुआज़ी का तख़्ता उलटा जाना तथा समाजवाद की विजय, जो अपने को निम्नबुर्जुआ मैल से कदापि तत्काल "शुद्ध" नहीं कर लेगा।

जैसाकि हम पोलिश स्थापनाओं (स्थापना १, अनुच्छेद ४) में पढ़ते हैं, सामाजिक-जनवाद को "**यूरोप में क्रांतिकारी संकट को तेज़ करने की गरज़ से** यूरोपीय साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ उपनिवेशों के तरुण बुर्जुआज़ी के संघर्ष का उपयोग करना चाहिए"। (शब्दों पर ज़ोर लेखकों द्वारा।)

क्या यह स्पष्ट नहीं है कि **इस** प्रसंग में यूरोप और उपनिवेशों के बीच वैपरीत्य प्रदर्शित करना सबसे अधिक वर्जनीय है? **यूरोप में** उत्पीड़ित जातियों का संघर्ष, जो विद्रोह तथा सड़कों की लड़ाई तक जाने की, सेना के लौह-अनुशासन और मार्शल लॉ को भंग करने की क्षमता रखता है, "यूरोप में क्रांतिकारी संकट" को किसी दूरस्थ उप-निवेश के कहीं ज्यादा विकसित विद्रोह की अपेक्षा बेअंदाज़ अधिक मात्रा

13*

में "तेज़ करेगा"। अंग्रेज साम्राज्यवादी बुर्जुआजी की सत्ता पर आयरलैंड में होनेवाला विद्रोह जो प्रहार करता है, वह एशिया में अथवा अफ्रीका में किये जानेवाले समान शक्ति के ऐसे प्रहार की अपेक्षा राजनीतिक दृष्टि से सौगुना अधिक अर्थपूर्ण है।

हाल में फ़्रांसीसी अंधराष्ट्रवादी प्रेस ने बेल्जियम मे एक ग़ैर कानूनी पत्रिका 'आज़ाद बेल्जियम' के ८०वें अंक के निकलने की ख़बर दी थी। बेशक फ़्रांस के अंधराष्ट्रवादी अख़बार अकसर झूठ बोलते हैं, परंतु यह ख़बर सही जान पड़ती है। जहां अंधराष्ट्रवादी तथा काउत्स्की-पंथी जर्मन सामाजिक-जनवाद युद्ध के दो वर्षों के दौरान अपने लिए एक स्वतंत्र प्रेस की स्थापना न कर सका और उसने सैनिक सेंसरशिप के जूए को चुपचाप, दीन भाव से झेल लिया है (केवल वामपंथी आमूल-वादी अंशकों ने – उनके सम्मान में यह कहा जाना चाहिए – सेंसर कराये बिना पैंफ़लेट तथा घोषणापत्र प्रकाशित किये), एक उत्पीड़ित सभ्य जाति ने क्रांतिकारी विरोध के एक मुखपत्र की स्थापना कर अभूतपूर्व रूप से पाशविक सैनिक उत्पीड़न के ख़िलाफ़ अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की है! इतिहास की द्वंद्वात्मक गति ऐसी है कि साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष में **स्वतंत्र** कारक के रूप में शक्तिहीन छोटी जातियां एक किण्वन तत्व, एक जीवाणु की भूमिका अदा करती हैं, जो **वास्तविक** साम्राज्य-वादविरोधी शक्ति, अर्थात समाजवादी सर्वहारा को उभारकर सामने लाने में सहायक होता है।

वर्तमान युद्ध में जनरल स्टाफ़ शत्रु शिविर में सभी राष्ट्रीय तथा क्रांतिकारी आंदोलन को इस्तेमाल करने के लिए भरसक कोशिश कर रहे हैं: जर्मन आयरिश विद्रोह का इस्तेमाल करते हैं, फ़्रांसीसी – चेक आंदोलन का, इत्यादि। उनके अपने दृष्टिकोण से उनका आचरण बिलकुल ठीक है। यदि शत्रु की छोटी से छोटी कमज़ोरी से फ़ायदा न उठाया जाये और यदि जो भी मौक़ा सामने आये, उसे इस्तेमाल न किया जाये, तो इसका मतलब एक गंभीर युद्ध के प्रति गंभीर रुख़ न अपनाना होगा – इसलिए और भी कि पहले से ही यह जानना असंभव है कि बारूद का कोई ढेर कब, कहां और कितनी प्रबलता के साथ "विस्फोटित" हो उठेगा। अगर समाजवाद के लिए सर्वहारा के महान मुक्ति संघर्ष में हम यह न जानें कि संकट को तीव्र करने तथा उसे व्यापक रूप देने के उद्देश्य से हम **प्रत्येक** साम्राज्यवादी दुर्भाग्य के ख़िलाफ़ **प्रत्येक** जन-आंदोलन का किस प्रकार इस्तेमाल कर सकते हैं, तो हम बड़े कच्चे क्रांतिकारी साबित होंगे। यदि, एक ओर, हम भिन्न-भिन्न सुर और लय में इस घोषणा को दोहरायें कि हम समस्त जातीय उत्पीड़न का "विरोध" करते हैं और, दूसरी ओर, अपने उत्पीड़कों के ख़िलाफ़ किसी उत्पीड़ित जाति के किन्हीं वर्गों की सबसे गतिशील तथा प्रबुद्ध श्रेणी के वीरत्वपूर्ण विद्रोह को "पर्युत्क्षेपण षड्यंत्र" की संज्ञा दें, तो हम काउत्स्की-पंथियों की ही हिमाक़त के स्तर ही उतर आयेंगे।

आयरिश लोगों का यह दुर्भाग्य था कि उन्होंने समय से पहले विद्रोह किया, जबकि सर्वहारा के यूरोपीय विद्रोह को परिपक्व होने का **अवसर नहीं मिला था।** पूंजीवाद इतने सामंजस्यपूर्ण रूप में गठित नहीं है कि विद्रोह के विभिन्न स्रोत विफलताओं और पराजयों के बिना तुरत स्वयमेव एकाकार हो सकें। उलटे ठीक यही बात कि ये विद्रोह भिन्न-भिन्न समय पर, भिन्न-भिन्न स्थानों में भड़कते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, सामान्य आंदोलन की व्यापकता तथा गहराई की ज़मानत है; केवल अपरिपक्व, अलग-अलग, छुट-फुट और फलतः असफल क्रांतिकारी आंदोलनों के अनुभव में ही जनसाधारण अनुभव प्राप्त करते हैं, ज्ञान अर्जित करते हैं, शक्ति संग्रह करते हैं, अपने सच्चे नेताओं, समाजवादी सर्वहाराओं को पहचानते हैं और इस प्रकार सामान्य धावे की तैयारी करते हैं, ठीक वैसे ही, जैसे किन्हीं स्थानीय तथा राष्ट्रीय हड़तालों, प्रदर्शनों, सेना में ग़दरों, किसानों के बीच विद्रोहों, इत्यादि ने १९०५ के सामान्य धावे के लिए ज़मीन तैयार की थी।

११. उपसंहार

पोलिश सामाजिक-जनवादियों के भ्रांतिपूर्ण दावों के विपरीत हमारी पार्टी के आंदोलन में जातियों के आत्मनिर्णय की मांग ने जो भूमिका अदा की है, वह, उदाहरण के लिए, जनता को हथियारों से लैस करने, धर्म को राज्य से पृथक करने, प्रशासनिक अधिकारियों का जनता द्वारा चुनाव करने के प्रश्नों और कूपमंडूकों द्वारा "कल्पनावादी" बताये गये अन्य मुद्दों की भूमिका से कुछ कम नहीं रही है। इसके विपरीत १९०५ के पश्चात राष्ट्रीय आंदोलनों ने जो शक्ति अर्जित की है, उसने

स्वभावतः हमारी पार्टी को ज़्यादा ज़ोरदार प्रचार-आंदोलन के लिए प्रेरित किया है। इसमें १९१२–१९१३ में लिखे गये कतिपय लेख और हमारी पार्टी का १९१३ का वह प्रस्ताव भी शामिल है, जिसने इस विषय के **अंतर्य** की एक सटीक, "काउत्स्कीविरोधी" परिभाषा दी है (अर्थात ऐसी परिभाषा, जो कोरी ज़बानी "मान्यता" को सहन नहीं करती)।

तभी उस प्रारंभिक अवस्था में ही एक ऐसा तथ्य प्रकट हुआ, जिसे आंख से ओझल करना असंभव था: विभिन्न जातियों के अवसरवादी, उक्रइनी युरकेविच, बुंदपंथी लीबमैन, पोत्रेसोव और उनकी मंडली के रूसी चाकर सेम्कोव्स्की, ये सभी आत्मनिर्णय **के ख़िलाफ़** रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के तर्कों **के पक्ष में** बोले! जो चीज़ इस पोलिश सामाजिक-जनवादी, रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग द्वारा पोलैंड में आंदोलन की **विशिष्ट** परिस्थितियों का सिर्फ़ एक ग़लत सैद्धांतिक सामान्यीकरण थी, वही फ़ौरन अमल में, अधिक व्यापक परिस्थितियों में, एक छोटे राज्य में नहीं, वरन एक बड़े राज्य में विद्यमान अवस्थाओं में, सीमित पोलिश पैमाने पर नहीं, एक अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर लागू किये जाने पर रूसी साम्राज्यवाद का **वस्तुगत दृष्टि से** अवसरवादी समर्थन बन गयी। राजनीतिक चिंतन की (अलग-अलग व्यक्तियों से भिन्न रूप में) **धाराओं** के इतिहास ने हमारे कार्यक्रम की यथार्थता को प्रमाणित कर दिया है।

और लेंश जैसे खुले सामाजिक-साम्राज्यवादी अब भी प्रत्यक्षतः आत्मनिर्णय तथा समामेलनों के परित्याग, दोनों की भर्त्सना कर रहे हैं। और काउत्स्कीपंथी आत्मनिर्णय को मानने का ढोंग रच रहे हैं – रूस में त्रोत्स्की और मार्तोव उसी रास्ते पर चल रहे हैं। काउत्स्की की तरह ये **दोनों** ही आत्मनिर्णय की ज़बानी तौर पर हिमायत करते हैं। लेकिन कथनी को छोड़ करनी को लें, तो? 'नाशे स्लोवो' अख़बार में 'जाति तथा अर्थव्यवस्था' शीर्षक से प्रकाशित त्रोत्स्की के लेखों को लीजिये। हम उनमें उनका वही पुराना सारसंग्रहवाद पाते हैं: एक ओर तो यह कि अर्थव्यवस्था जातियों को एकताबद्ध करती है और, दूसरी ओर, यह कि जातीय उत्पीड़न उनमें फूट डालता है। निष्कर्ष? निष्कर्ष यह कि प्रवर्तमान पाखंड पर परदा पड़ा रहता है, आंदोलन में जान नहीं आती और उसमें ठीक वही बात नहीं उठायी जाती, जो सबसे मुख्य, बुनियादी और अर्थपूर्ण है और व्यवहार से सबसे घनिष्ठ रूप

से संबद्ध है, अर्थात किसी व्यक्ति का "स्वयं अपनी" जाति द्वारा उत्पीड़ित जाति के प्रति दृष्टिकोण। मार्तोव तथा विदेशों में अन्य सचिवों ने आत्मनिर्णय के ख़िलाफ़ अपने सहयोगी तथा सहसदस्य सेम्कोव्स्की के संघर्ष को बस भूल जाना ही श्रेयस्कर समझा – यह विस्मरण कितना लाभदायक है! ग्वोज़्देवपंथियों के क़ानूनी अख़बार ('नाश गोलोस'[102] में मार्तोव ने आत्मनिर्णय का **पक्षपोषण** किया और इस निर्विवाद सत्य को सिद्ध किया कि **अभी तक** उसका अर्थ साम्राज्यवादी युद्ध में सहभागिता, इत्यादि नहीं है, परन्तु वह मुख्य बात से कतराकर निकल गये – वह स्वतंत्र ग़ैर-क़ानूनी अख़बारों में भी उससे कतराते हैं! – और वह मुख्य बात यह है कि रूस ने **शांति-काल में भी** ऐसे साम्राज्यवाद के अंतर्गत जातियों के उत्पीड़न का विश्व रिकार्ड स्थापित किया है, जो कहीं ज़्यादा भोंडा, मध्ययुगीन, आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ और सैनिक तथा नौकरशाहाना है। जो भी रूसी सामाजिक-जनवादी जातियों के आत्मनिर्णय को कमोबेश उस प्रकार "मानता" है, जिस प्रकार उसे प्लेख़ानोव, पोत्रेसोव-मंडली द्वारा माना जाता है, अर्थात जो ज़ारशाही द्वारा उत्पीड़ित जातियों के विलग होने की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का कष्ट किये बिना मानता है, वह **वास्तव में** साम्राज्यवादी और ज़ारशाही का चाकर है।

आत्मगत रूप से त्रोत्स्की और मार्तोव की "सद्भावनाएं" जो भी हों, वस्तुगत रूप से वे अपनी टालमटोल द्वारा रूसी सामाजिक-साम्राज्यवाद का पोषण करते हैं। साम्राज्यवाद के युग ने सभी "महा" शक्तियों को अनेक जातियों के उत्पीड़कों में बदल डाला है और साम्राज्यवाद के विकास के फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद में भी इस प्रश्न से संबंधित प्रवृत्तियों का अधिक सुस्पष्ट रूप से विभाजन अनिवार्य हो जायेगा।

जुलाई, १९१६ में
लिखित।

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
पांचवां रूसी संस्करण,
खंड ३०, पृ० १७–५८

जातियों या "स्वायत्तीकरण" का प्रश्न[103]

लगता है कि मैं रूस के मज़दूरों के सामने अपराधी हूं, क्योंकि मैंने काफ़ी ज़ोरदार और निर्णायक रूप से स्वायत्तीकरण के कुख्यात प्रश्न में हस्तक्षेप नहीं किया है, जिसे, प्रतीत होता है; औप-चारिक रूप से सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ का प्रश्न कहा जाता है।

पिछली गरमियों में, जब यह सवाल उठा था, मैं बीमार था और फिर शरद में मैंने इस बात की आशा की थी कि मैं स्वस्थ हो जाऊंगा और अक्तूबर और दिसंबर के पूर्णाधिवेशनों[104] में मुझे इस सवाल में दखल देने का मौक़ा मिलेगा। लेकिन मैं न तो अक्तूबर के पूर्णाधिवेशन में (जब यह प्रश्न उठाया गया था) तथा न ही दिसंबर के पूर्णाधिवेशन में उपस्थित रह सका और इस तरह मैं इस सवाल में लगभग कोई भाग न ले सका।

मुझे सिर्फ़ साथी द्ज़ेर्जीन्स्की के साथ बातचीत करने का समय मिल पाया है, जो काकेशिया से आये थे और उन्होंने मुझे इस सवाल पर जार्जिया की स्थिति मे अवगत कराया था। मैं साथी ज़िनोव्येव से भी कुछ बातचीत कर पाया हूं और इस विषय पर अपनी आशंकाएं प्रकट कर सका हूं। साथी द्ज़ेर्जीन्स्की जार्जिया की घटना की "जांच करने" के लिए केंद्रीय समिति द्वारा भेजे गये आयोग के अध्यक्ष थे। उन्होंने जो कुछ मुझे बताया है, उसमे मुझे बड़ी से बड़ी आशंकाएं दी हुई हैं। अगर मामला यहां तक पहुंच चुका था कि ओर्जो-निकीद्ज़े बल-प्रयोग करने की हद तक चले गये – जैसाकि साथी द्ज़े-र्जीन्स्की ने मुझे बताया – तो खुद आसानी से समझा जा सकती है कि हम किस दलदल में फंस गये हैं। प्रत्यक्षतः "स्वायत्तीकरण" का सारा विचार ही सिर से पैर तक ग़लत और असामयिक था।

कहा जाता है कि एक एकीकृत राज्य-मशीनरी की ज़रूरत थी। मगर यह आश्वासन आया कहां से? क्या वह उसी रूसी राज्य-मशीनरी से नहीं आया, जिसे – जैसाकि मैंने अपनी डायरी के एक पूर्वगामी भाग में इंगित किया था – हमने ज़ारशाही से लिया था और उस पर हलका-सा सोवियत पुचारा फेर दिया था?

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह क़दम उस समय तक नहीं उठाया जाना चाहिए था कि जब तक हम दृढ़तापूर्वक यह न कह सकते कि यह मशीनरी हमारी अपनी मशीनरी है। परंतु अब हमें ईमानदारी के साथ इससे विपरीत बात स्वीकार कर लेनी चाहिए – जिस मशीनरी को हम अपनी कहते हैं, वह वस्तुतः हमारे लिए पूर्णतः परायी है, वह बुर्जुआ और ज़ारशाही घालमेल है, जिससे पिछले पांच वर्षों में, बिना अन्य देशों की सहायता के, मुक्ति पाना किसी भी प्रकार संभव न था, क्यों-कि हम ज़्यादातर युद्ध-संचालन में और दुर्भिक्ष के ख़िलाफ़ मोरचा लेने में "व्यस्त" रहे हैं।

ऐसी परिस्थितियों में यह बिलकुल स्वाभाविक है कि "संघ में से निकल जाने की स्वतंत्रता", जिसके आधार पर हम अपने को उचित ठहराते हैं, महज़ काग़ज़ का पुरज़ा बनकर रह जायेगी, जिसमें यह शक्ति न होगी कि वह ग़ैर-रूसियों की उस वास्तविक रूसी आदमी का, महत रूसी अंधराष्ट्रवादी के आक्रमण से रक्षा कर सके, जो सारतः दुष्ट भी है और हिंसा का पुजारी भी, जैसाकि ठेठ रूसी नौकरशाह होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सोवियत और सोवियतकृत मज़दूरों का अत्यल्प प्रतिशत अंधराष्ट्रवादी महत रूसियों की उस कमीनी भीड़ में दूध में मक्खी की तरह डूब जायेगा।

इस क़दम के पक्ष में कहा जाता है कि जातियों की भावना और जातियों की शिक्षा से प्रत्यक्षतः संबद्ध अलग स्वतंत्र जन-कमिसारियत स्थापित किये गये थे। परंतु फिर सवाल यह उठता है कि क्या ये जन-कमिसारियत बिलकुल स्वतंत्र बनाये जा सकते हैं? और दूसरा सवाल यह कि क्या हमने असली रूसी देर्जिमोर्दा[105] से ग़ैर-रूसी जातियों की रक्षा करने का काफ़ी ध्यान रखा था? मैं समझता हूं कि हमने ये क़दम नहीं उठाये, यद्यपि हम ऐसा कर सकते थे और हमें करना भी चाहिए था।

मेरा ख़याल है कि स्तालिन की जल्दबाज़ी और प्रशासकीय उत्साह,

और कुख्यात "सामाजिक-राष्ट्रवाद" के प्रति उनका द्वेषभाव बड़ा घातक सिद्ध हुआ। राजनीति में द्वेष की भूमिका सामान्यतः निकृष्टतम होती है।

मुझे यह भी डर है कि साथी द्ज़ेर्जीन्स्की ने, जो उन "सामाजिक-राष्टवादियों" के "अपराधों" की जांच करने के लिए काकेशिया गये थे, वहां अपनी असली रूसी प्रवृत्ति का परिचय दिया (यह सर्वविदित है कि दूसरी जातियों के वे लोग, जिनका रूसीकरण हो गया है, इस प्रवृत्ति के प्रदर्शन में हद से गुज़र जाते हैं) और उनके सारे आयोग की निष्पक्षता का एक ख़ासा अच्छा नमूना ओर्जोनिकीद्ज़े का "दुर्व्यवहार" है। मैं समझता हूं कि कोई भी उकसावा अथवा बेइज़्ज़ती तक रूसियों के इसी तरह के दुर्व्यवहार को उचित नहीं ठहरा सकती। साथी द्ज़ेर्जीन्स्की ने इसके प्रति लापरवाही दिखलाकर अक्षम्य अपराध किया है।

ओर्जोनिकीद्ज़े काकेशिया के सभी नागरिकों के लिए सत्ता के प्रतीक थे। ओर्जोनिकीद्ज़े को खीझ दिखाने का कोई अधिकार न था, जिसका ज़िक्र ख़ुद उन्होंने और द्ज़ेर्जीन्स्की ने किया है। इसके विपरीत ओर्जोनिकीद्ज़े को ऐसा संयमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए था, जिसकी अपेक्षा किसी साधारण नागरिक से नहीं की जा सकती, और उस व्यक्ति से तो और भी नहीं की जा सकती, जिस पर "राजनीतिक" अपराध का अभियोग लगाया गया हो। और सच बात तो यह है कि सामाजिक-राष्ट्रवादी वे नागरिक थे, जिन पर राजनीतिक अपराध का अभियोग लगाया गया था और यह अभियोजन इस प्रकार का था कि अन्यथा कहा भी नहीं जा सकता।

यहां हमारे सामने सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण प्रश्न आता है, वह यह कि अंतर्राष्ट्रीयतावाद को किस प्रकार समझना चाहिए? *

लेनिन

३०. १२. १९२२
म० व० द्वारा लिखा गया।

* इसके बाद स्टेनोग्राफ़र के नोटों में यह अंश कटा हुआ है: "मेरा ख़याल है कि हमारे साथियों ने इस महत्वपूर्ण सैद्धांतिक प्रश्न का पर्याप्त अध्ययन नहीं किया है।" –सं०

टिप्पणियां क्रमशः,
३१ दिसंबर, १९२२

जातियों या "स्वायत्तीकरण" का प्रश्न

जातीय प्रश्न पर अपनी रचनाओं में पहले ही यह लिख चुका हूं कि सामान्यतया राष्ट्रवाद के सवाल को अमूर्त रूप में पेश करने से कोई फ़ायदा नहीं है। उत्पीड़क जाति और उत्पीड़ित जाति के राष्ट्रवाद, बड़ी जाति और छोटी जाति के राष्ट्रवाद में अंतर अवश्य किया जाना चाहिए।

जहां तक दूसरी क़िस्म के राष्ट्रवाद का संबंध है, हम लोग, यानी एक बड़ी जाति के राष्ट्रवादी, ऐतिहासिक व्यवहार में प्रायः सदा ही असंख्य हिंसाओं के अपराधी रहे हैं, इसके अतिरिक्त अनजाने में हम असंख्य हिंसाएं और अपमान किया करते हैं। ग़ैर-रूसियों के प्रति किस प्रकार व्यवहार किया जा रहा है, इस संबंध में मेरे वोल्गा संस्मरणों की याद करना ही काफ़ी है: किस तरह पोल जाति के लोगों को "पोल्याचिश्का" के अलावा अन्य किसी नाम से संबोधित नहीं किया जाता, किस तरह तातारों का "राजा साहब" कहकर मज़ाक़ उड़ाया जाता है, किस तरह उक्रइनियों को हमेशा "ख़ोख़ोल" और जार्जिया तथा काकेशिया की दूसरी जातियों को "कप्काज़ियाई" ही कहा जाता है।

यही कारण है कि उत्पीड़क अथवा जैसे कि उन्हें कहा जाता है, "महा" जातियों (यद्यपि वे महा हैं सिर्फ़ अपनी हिंसा में, महा हैं सिर्फ़ महा देर्जिमोर्दा के रूप में) का अंतर्राष्ट्रीयतावाद न सिर्फ़ जातियों की औपचारिक समानता का पालन करने तक ही, अपितु उस असमानता का भी पालन करने में है, जिससे उत्पीड़क बड़ी जाति द्वारा वास्तविक जीवन में मिलनेवाली असमानता की क्षतिपूर्ति की जा सके। जिसने यह बात नहीं समझी है, उसने जातीय प्रश्न के वास्तविक सर्वहारा दृष्टिकोण को नहीं समझा है और वह अभी तक तत्वतः अपने दृष्टिकोण में निम्न-बुर्जुआ है और इसलिए वह निश्चय ही बार-बार बुर्जुआ दृष्टिकोण अपनाता रहेगा।

सर्वहारा के लिए महत्वपूर्ण क्या है? उसके लिए यह सिर्फ़ महत्वपूर्ण ही नहीं, अपितु अपरिहार्य रूप से आवश्यक भी है कि उसे सर्वहारा वर्ग संघर्ष में ग़ैर-रूसी लोगों का पूरा-पूरा विश्वास प्राप्त हो। यह

सुनिश्चित करने के लिए आवश्यकता किस बात की है? सिर्फ़ औपचारिक समानता की ही तो नहीं। इसके लिए यह ज़रूरी है कि ग़ैर-रूसियों पर विगत काल में "अभिभावी" जाति की सरकार द्वारा जो संदेह और अविश्वास किया जाता था तथा उनके साथ जो अपमानजनक हरकतें की जाती थीं, उनके लिए किसी न किसी प्रकार, अपने सदाचरण द्वारा अथवा रिआयतें देकर, उनकी क्षतिपूर्ति की जाये।

मेरा ख़याल है कि यह बात अधिक विस्तार के साथ बोल्शेविकों को, कम्युनिस्टों को समझाने की ज़रूरत नहीं है। और मेरा यह भी ख़याल है कि मौजूदा मामला, जहां तक जार्जियाई जाति का संबंध है, एक ऐसा मिसाली मामला है, जिसमें सच्चा सर्वहारा रुख़ अपनाने के वास्ते हमारे लिए ज़रूरी है कि हम सतर्कता और सावधानी बरतें और रिआयत देने के लिए तैयार हों। वह जार्जियाई, जो मामले के इस पहलू की उपेक्षा करता है, जो लापरवाही के साथ "सामाजिक-राष्ट्रवाद" का दोषारोपण करता है (जबकि वह स्वयं न केवल एक वास्तविक और असल "सामाजिक-राष्ट्रवादी" है, बल्कि एक भ्रष्ट महत रूसी देर्जिमोर्दा भी है), तत्वतः सर्वहारा वर्ग की एकजुटता के हितों का अतिक्रमण करता है, क्योंकि सर्वहारा वर्ग की एकजुटता का विकास करने और उसे सशक्त बनाने में राष्ट्रीय अन्याय से बढ़कर अवरोधक कोई चीज़ नहीं है। जिन जातियों की राष्ट्रीय भावना को ठेस पहुंची है, वे सबसे अधिक समानता की भावना तथा इस भावना के अतिक्रमण को महसूस करती हैं, भले यह अतिक्रमण उनके सर्वहारा साथियों ने लापरवाही या मज़ाक़ में किया हो। इसीलिए इस मामले में यह बेहतर है कि अल्पसंख्यक जातियों के साथ नम्रता और उदारता का व्यवहार आवश्यकता से अधिक किया जाये, न कि आवश्यकता से कम। यही कारण है कि इस मामले में सर्वहारा की एकजुटता के और फलतः सर्वहारा वर्ग संघर्ष के मूलभूत हितों की दृष्टि से यह अपेक्षित है कि हम जातीय प्रश्न पर कोई औपचारिक रुख़ न अख़्तियार करें, परंतु हमेशा इस बात को ध्यान में रखें कि उत्पीड़ित (अथवा छोटी) जाति के सर्वहारा का उत्पीड़क (अथवा बड़ी) जाति के प्रति क्या रुख़ है।

लेनिन

३१. १२. १६२२
म० व० द्वारा लिखा गया।

टिप्पणियां – उत्तर भाग,
३१ दिसंबर, १६२२

वर्तमान परिस्थिति में क्या व्यावहारिक क़दम उठाये जाने चाहिए?

पहले, हमारे लिए ज़रूरी है कि हम समाजवादी जनतंत्रों के संघ को क़ायम रखें और उसे सशक्त बनायें। इसके बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता। यह क़दम हमारे लिए भी उतना ही ज़रूरी है, जितना कि वह विश्व बुर्जुआज़ी के ख़िलाफ़ संघर्ष और बुर्जुआ कुचक्रों से अपनी रक्षा करने के निमित्त विश्व कम्युनिस्ट सर्वहारा के लिए ज़रूरी है।

दूसरे, जहां तक राजनयिक मशीनरी का संबंध है, समाजवादी जनतंत्रों के संघ को अवश्य क़ायम रखा जाना चाहिए। प्रसंगतः यह मशीनरी हमारी राज्य-मशीनरी का एक असाधारण अंग है। पुरानी ज़ारशाही मशीनरी से हमने एक भी प्रभावशाली व्यक्ति को इसमें नहीं आने दिया है। इसके जिन विभागों को कोई अधिकार प्राप्त है, उन सभी में सभी लोग कम्युनिस्ट हैं। यही कारण है कि इस मशीनरी ने (और यह बात निर्भयतापूर्वक कही जा सकती है) एक ऐसी विश्वस्त कम्युनिस्ट मशीनरी का नाम अर्जित कर लिया है, जिसमें से पुराने ज़ारशाही, बुर्जुआ और निम्न-बुर्जुआ तत्वों को उसके मुक़ाबले कहीं ज़्यादा हद तक निकाल दिया गया है, जिससे अन्य जन-कमिसारियतों में हमें काम चलाना पड़ा है।

तीसरे, साथी ओर्जोनिकीद्ज़े को ज़रूर मिसाली सज़ा मिलनी चाहिए (मुझे ऐसा कहते हुए इसलिए और भी अफ़सोस होता है कि मैं उनका निजी दोस्त हूं और उनके साथ विदेश में काम कर चुका हूं) और उस सामग्री की, जिसे द्ज़ेर्जीन्स्की के आयोग ने एकत्र किया है, जांच-पड़ताल पूरी की जानी चाहिए, अथवा नये सिरे से जांच की जानी चाहिए, ताकि उसमें पायी जानेवाली असंख्य ग़लतियां अथवा पक्षपातपूर्ण विचार – जो उस सामग्री में निस्संदेह हैं – ठीक किये जा सकें। इस यथार्थतः महत रूसी राष्ट्रवादी मुहिम की राजनीतिक ज़िम्मेदारी, निश्चय ही, स्तालिन और द्ज़ेर्जीन्स्की पर रखी जानी चाहिए।

चौथे, हमारे संघ के ग़ैर-रूसी जनतंत्रों में जातीय भाषा के प्रयोग के संबंध में सख़्त से सख़्त नियम लागू किये जाने चाहिए और इन नियमों की जांच ख़ासी सावधानी के साथ की जानी चाहिए। हमारी वर्त-

मान मशीनरी जैसी है, उसे देखते हुए इसमें कोई संदेह नहीं है कि रेलवे सेवा, वित्त सेवा, आदि, आदि में एकता के बहाने असली रूसी प्रवृत्ति की ज़्यादतियां अनिवार्य हैं। इन ज़्यादतियों के विरुद्ध मोरचा लेने के लिए विशेष दक्षता की ज़रूरत है। कहने की ज़रूरत नहीं कि उन लोगों का, जो इस संघर्ष को चलायेंगे, विशेष रूप से ईमानदार होना आवश्यक है। हमें एक सविस्तार नियमावली की ज़रूरत होगी और वह संबद्ध जनतंत्र में रहनेवाली जाति के लोगों द्वारा ही कामयाबी के साथ बनायी जा सकती है। और फिर पहले से इस बात का निश्चय नहीं हो सकता कि इस कार्य के फलस्वरूप हम सोवियतों की अपनी अगली कांग्रेस में एक क़दम पीछे नहीं जायेंगे, अर्थात हम सैनिक तथा राजनयिक मामलों के लिए ही सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ को बनाये रखेंगे और अन्य सभी मामलों में अलग-अलग जन-कमिसारियतों की पूर्ण स्वाधीनता को पुनःस्थापित कर देंगे।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि जन-कमिसारियतों के विकेंद्रीकरण की और जहां तक मास्को तथा दूसरे केंद्रों का संबंध है, उनके कामों में समन्वय के अभाव की पूर्ति बहुत हद तक पार्टी की साख से हो सकती है, बशर्ते कि उसका इस्तेमाल पर्याप्त बुद्धिमत्ता और निष्पक्षता के साथ किया जाये। जातीय मशीनरियों की रूसी मशीनरी के साथ एकरूपता न होने के कारण हमारे राज्य को जो नुक़सान हो सकता है, वह उस नुक़सान की तुलना में बहुत ही कम है, जो न सिर्फ़ हमें, अपितु समस्त इंटरनेशनल को, एशिया के उन करोड़ों लोगों को पहुंचेगा, जिन्हें निकट भविष्य में ऐतिहासिक रंगमंच पर हमारा अनुसरण करना है। यह एक अक्षम्य अवसरवादिता होगी कि यदि पूर्व के ऐतिहासिक रंगमंच पर आने के कुछ ही पहले, जब वह जाग्रत हो ही रहा है, हम ख़ुद अपनी ही ग़ैर-रूसी जातियों के प्रति, भले ही छोटी-सी रुक्षता और अन्याय का व्यवहार करके, अपनी प्रतिष्ठा को उनकी नज़रों में गिरा दें। पूंजीवादी दुनिया की रक्षा में रत पश्चिम के साम्राज्यवादियों के ख़िलाफ़ मोरचा लेने की ज़रूरत एक बात है। इसके बारे में कोई भी शक नहीं हो सकता और मेरे लिए यह कहना अनावश्यक है कि मैं इसका बिला शर्त अनुमोदन करता हूं। परंतु अगर हम ख़ुद ही पथभ्रष्ट हो जायें और उत्पीड़ित जातियों के प्रति साम्राज्यवादी रुख़ अपनायें, भले ही वह छोटी-छोटी बातों में ही क्यों न हो, और इस प्रकार अपनी

समस्त सैद्धांतिक निष्ठा का, साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष के अपने सिद्धांतनिष्ठ समर्थन का तलोच्छेदन करें, तो यह दूसरी ही बात होगी। लेकिन विश्व इतिहास में आनेवाला कल ऐसा दिन होगा कि जब साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीड़ित जातियां आख़िर जाग्रत हो जायेंगी, और उनका निर्णायक, दीर्घकालीन तथा कठोर स्वतंत्रता-संघर्ष शुरू हो जायेगा।

लेनिन

३१. १२. १९२२
म० व० द्वारा लिखा गया।

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
पांचवां रूसी संस्करण,
खंड ४५, पृ० ३५६–३६२

टिप्पणियां

[1] **'विज्ञप्ति'** (इज़्वेश्चेनिये) – 'पार्टी-कार्यकर्ताओं के साथ रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केंद्रीय समिति के १६१३ के ग्रीष्म सम्मेलन की विज्ञप्ति तथा प्रस्ताव' नामक पुस्तिका का संक्षिप्त शीर्षक। इस पुस्तिका को केंद्रीय समिति ने १६१३ में प्रकाशित किया था। – ७

[2] अभिप्राय जो० वि० स्तालिन के लेख **'मार्क्सवाद और जातियों का प्रश्न'** से है, जो १६१२ के अंत तथा १६१३ के आरंभ में लिखा गया था और 'जातियों का प्रश्न तथा सामाजिक-जनवाद' शीर्षक से 'प्रोस्वेश्चेनिये' (ज्ञानोद्दीप्ति) नामक पत्रिका में १६१३ के अंक ३–५ में प्रकाशित हुआ था। – ७

[3] **"अर्थवाद"** – १६वीं शताब्दी के अंत और २०वीं शताब्दी के आरंभ में रूसी सामाजिक-जनवाद की एक अवसरवादी प्रवृत्ति। "अर्थवादी" मज़दूर वर्ग के कार्यभार को ऊंचे वेतनों और काम की बेहतर हालतों, इत्यादि की मांग तक ही सीमित करते थे और जोर देते थे कि राजनीतिक संघर्ष उदार बुर्जुआज़ी का काम है। यह मानते हुए कि मज़दूर आंदोलन स्वतःप्रवृत्त होना चाहिए, उन्होंने मज़दूर वर्ग की पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका और क्रांतिकारी सिद्धांत का महत्व अस्वीकार किया। व्ला० इ० लेनिन ने 'क्या करें?' शीर्षक पुस्तक में "अर्थवाद" की निर्मम आलोचना की। – ८

[4] **"क़ानूनी मार्क्सवादी"** – वे बुर्जुआ बुद्धिजीवी, जो मार्क्सवाद का बाना ओढ़कर क़ानूनी पत्र-पत्रिकाओं में, अर्थात ज़ारशाही सेंसर जिन्हें प्रकाशित होने देता था, अपने विचारों का प्रकाशन करते थे। उन्होंने मार्क्सवाद तथा मज़दूर आंदोलन को बुर्जुआज़ी की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने की कोशिश की। – ८

[5] **मेंशेविज़्म** – रूसी सामाजिक-जनवाद के अंदर एक निम्न-बुर्जुआ प्रवृत्ति। मेंशेविक लोग मज़दूर वर्ग पर बुर्जुआज़ी के प्रभाव के वाहक थे। उन्हें यह नाम अगस्त, १६०३ में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस में मिला – कांग्रेस के अंत में पार्टी के नेतृत्वकारी निकायों के लिए जो चुनाव हुए, उनमें अवसरवादी सामाजिक जनवादियों को अल्पमत (मेंशिन्स्त्वो) प्राप्त हुआ, जिससे वे मेंशेविक कहलाये और लेनिन के नेतृत्व में क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों को बहुमत (बोल्शिन्स्त्वो) प्राप्त हुआ, जिसके कारण उन्हें बोल्शेविक कहा गया। मेंशेविक सर्वहारा तथा बुर्जुआज़ी के बीच समझौता कराने की कोशिश करते थे और मज़दूर आंदोलन के अंदर अवसरवादी नीति का अनुसरण करते थे। १६१७ में फ़रवरी की बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति के बाद रूस में दोहरी सत्ता स्थापित हुई, जिसमें दो अधिनायकत्वों का अंतर्ग्रंथन था – बुर्जुआ अस्थायी सरकार की शक्ल में बुर्जुआज़ी का अधिनायकत्व तथा सोवियतों की शक्ल में सर्वहारा तथा किसानों का अधिनायकत्व। मेंशेविकों तथा समाजवादी-क्रांतिकारियों ने अस्थायी सरकार में भाग लिया, उसकी साम्राज्यवादी नीति का समर्थन किया और विकसित होती सर्वहारा क्रांति के विरुद्ध संघर्ष किया। सोवियतों के अंदर भी मेंशेविकों ने इसी नीति – अस्थायी सरकार का समर्थन करने तथा जनसाधारण को क्रांतिकारी आंदोलन से दूर करने की नीति – का अनुसरण किया।

अक्तूबर क्रांति के बाद मेंशेविकों की पार्टी खुल्लमखुल्ला प्रतिक्रांतिकारी पार्टी बन गयी – ये लोग सोवियत सत्ता को उलटने के उद्देश्य से षड्यंत्रों तथा विद्रोहों का संगठन करने और उनमें भाग लेने लगे। – ८

[6] **विसर्जनवादी** – १६०५–१६०७ की रूसी क्रांति की पराजय के बाद मेंशेविकों में पैदा हुई एक धारा के समर्थक।

विसर्जनवादियों ने मांग की कि मज़दूर वर्ग की ग़ैर-क़ानूनी क्रांतिकारी पार्टी भंग कर दी जाये। वे मज़दूरों से ज़ारशाही के ख़िलाफ़ अपने क्रांतिकारी संघर्ष को बंद कर देने का तक़ाज़ा करते थे। उनका इरादा एक ग़ैर-पार्टी "मज़दूर कांग्रेस" बुलाने और उसमें एक अवसरवादी "व्यापक मज़दूर पार्टी" क़ायम करने का था, एक ऐसी पार्टी, जो क्रांतिकारी नारों का परित्याग कर देती और अपने को केवल ज़ारशाही सरकार द्वारा अनुमेय क़ानूनी कार्रवाइयों तक सीमित रखती। लेनिन और दूसरे बोल्शेविकों ने विसर्जनवादियों का क्रांति के साथ ग़द्दारी करनेवालों के रूप में लगातार परदाफ़ाश किया। मज़दूर जनसाधारण के बीच विसर्जनवादियों को कोई सफलता नहीं मिली। जनवरी, १६१२ में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के प्राग सम्मेलन ने विसर्जनवादियों को पार्टी से निकाल बाहर किया। – ८

[7] **'ईस्क्रा'** (चिनगारी) – पहला ग़ैर-क़ानूनी अखिल रूसी मार्क्सवादी समाचारपत्र, जिसे लेनिन ने १६०० में स्थापित किया था। इस पत्र ने मज़दूर वर्ग की क्रांतिकारी मार्क्सवादी पार्टी की स्थापना में महान भूमिका अदा की। 'ईस्क्रा' का प्रथम अंक लीपज़िग से प्रकाशित हुआ था; बाद के अंक म्यूनिख से निकले। फिर जुलाई, १६०२ से यह पत्र लंदन से निकलने लग गया और १६०३ के वसंत से जिनेवा से। लेनिन और उनके समर्थकों ने अर्थवादियों के ख़िलाफ़, अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन में अवसरवाद की प्रत्येक अभिव्यक्ति के ख़िलाफ़ तथा रूस और पश्चिम यूरोप के सामाजिक-जनवादी आंदोलन के अंदर सुधारवादियों के ख़िलाफ़ क्रांतिकारी मार्क्सवादी संघर्ष के हितार्थ 'ईस्क्रा' के स्तंभों का उपयोग किया। लेनिन की पेशक़दमी पर और सीधे-सीधे उनकी शिरकत से, 'ईस्क्रा' के संपादक-मंडल ने पार्टी के लिए कार्यक्रम का मसौदा तैयार किया और रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस का आयोजन किया। यह कांग्रेस जुलाई – अगस्त, १६०३ में हुई। कांग्रेस बुलाये जाने के समय तक रूस के अधिकांश स्थानीय सामाजिक-जनवादी संगठन 'ईस्क्रा' का समर्थन करते थे, उसकी कार्यनीति, कार्यक्रम और संगठन संबंधी योजना का अनुमोदन करते थे और उसे अपने

नेतृत्वकारी पत्र के रूप में ग्रहण करते थे। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस ने एक विशेष निर्णय द्वारा पार्टी के लिए संघर्ष में 'ईस्क्रा' की असाधारण भूमिका को लक्षित करते हुए उसे पार्टी का केंद्रीय मुखपत्र घोषित किया। दूसरी कांग्रेस के बाद मेंशेविकों ने प्लेख़ानोव की मदद से 'ईस्क्रा' पर क़ब्ज़ा कर लिया और उसके ५२वें अंक से उसे अपने गुट के मुखपत्र में बदल दिया। तब से अवसरवादी मेंशेविक पत्र को पुरानी, लेनिनी बोल्शेविक 'ईस्क्रा' से पृथक करने के लिए उसे नयी 'ईस्क्रा' कहने का दस्तूर बन गया। – ८

[8] **बुंद** (लिथुआनिया, पोलैंड और रूस का यहूदी मज़दूर महासंघ) की स्थापना विल्नो में १८६७ में आयोजित यहूदी सामाजिक-जनवादी दलों की संस्थापना कांग्रेस द्वारा की गयी थी। यह मुख्यतया रूस के पश्चिमी प्रदेशों के अर्धसर्वहारा यहूदी कारीगरों का संगठन था। बुंद ने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की पहली कांग्रेस (१८६८) के बाद पार्टी में एक ऐसे "स्वायत्त संगठन" के रूप में प्रवेश किया, जो यहूदी सर्वहारा संबंधी प्रश्नों के विषय में ही स्वतंत्र था।

बुंद ने रूस के मज़दूर आंदोलन में राष्ट्रवाद तथा पार्थक्यवाद को प्रविष्ट किया।

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (१६०३) ने जब बुंद की यह मांग ठुकरा दी कि उसको यहूदी सर्वहारा का एकमात्र प्रतिनिधि माना जाये, तब बुंद पार्टी से अलग हो गया। १६०६ में चौथी (एकता) कांग्रेस के एक प्रस्ताव के आधार पर बुंद ने फिर से रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी में प्रवेश किया।

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के अंदर रहते हुए बुंदपंथी पार्टी के अवसरवादी ("अर्थवादी", मेंशेविक, विसर्जनवादी) पक्ष का समर्थन और बोल्शेविकों और बोल्शेविज़्म के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। बुंद ने पार्टी की जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की कार्यक्रम संबंधी मांग के मुक़ाबले में सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की मांग पेश की। स्तोलीपिन प्रतिक्रिया (१६०७-१६१०) और

क्रांति के पुनरुत्थान के काल में उसने विसर्जनवादी रुख़ अपनाया और पार्टीविरोधी अगस्त गुट के निर्माण में सक्रिय भाग लिया। पहले विश्वयुद्ध (१९१४-१९१८) के दौरान उसने सामाजिक-अंध-राष्ट्रवादी रुख़ अपनाया। १९१७ में उसने प्रतिक्रांतिकारी अस्थायी सरकार का समर्थन किया और महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के शत्रुओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर क्रांति के विरुद्ध संघर्ष किया। विदेशी सैनिक हस्तक्षेप और गृहयुद्ध के काल में बुंद के नेताओं ने प्रतिक्रांतिकारी शक्तियों का साथ दिया। उधर बुंद के साधारण सदस्यों के बीच सोवियत सत्ता के साथ सहयोग करने के पक्ष में परिवर्तन आ रहा था। मार्च, १९२१ में बुंद ने आत्म-विसर्जन का निर्णय कर लिया। – ८

[9] **कैडेट** – रूस में उदारतावादी, राजतंत्रवादी बुर्जुआज़ी की प्रमुख पार्टी, सांविधानिक-जनवादी पार्टी, के सदस्य। अक्तूबर, १९०५ में स्थापित इस पार्टी के सदस्यों में अधिकांश उदार पूंजीपति, ज़मींदार तथा बुर्जुआ बुद्धिजीवी थे। बाद में कैडेट साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग की पार्टी बन गये। वे अपने को जन-स्वातंत्र्य की पार्टी कहते थे, परंतु व्यवहार में वे ज़ारशाही को सांविधानिक राजतंत्र के रूप में क़ायम रखने की ग़रज़ से निरंकुश सरकार के साथ सौदेबाज़ी करने की कोशिश करते थे। साम्राज्यवादी युद्ध (१९१४–१९१८) के दौरान पूरे वक़्त उन्होंने "विजयपर्यंत युद्ध" चलाने की पैरवी की। फ़रवरी क्रांति के पश्चात पेत्रोग्राद सोवियत के समाजवादी-क्रांतिकारी तथा मेंशेविक नेताओं के साथ साज़िश करके उन्होंने अस्थायी सरकार में अपनी प्रमुखता स्थापित कर ली और जन-विरोधी, प्रतिक्रांतिकारी नीति चलायी। महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद कैडेट सोवियत सत्ता के कट्टर दुश्मन बन गये और उन्होंने साम्राज्यवादियों की सशस्त्र प्रतिक्रांतिकारी कार्रवाइयों तथा हस्तक्षेपकारियों के अभियानों में भाग लिया। – ९

[10] **बर्नस्टीनवाद** – जर्मन तथा अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवादी आंदोलन की एक मार्क्सवादविरोधी अवसरवादी प्रवृत्ति, जो १९वीं सदी के अंत में उत्पन्न हुई और जिसे जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी की दक्षिणपंथी अवसरवादी प्रवृत्तियों का खुल्लमखुल्ला प्रतिनिधित्व

करनेवाले नेता एडुआर्ड बर्नस्टीन के नाम पर बर्नस्टीनवाद कहा गया।

१८९६–१८९८ में बर्नस्टीन ने जर्मन सामाजिक-जनवाद के सैद्धांतिक मुखपत्र *Die Neue Zeit* (नवयुग) के लिए 'समाजवाद की समस्याएं' नाम से एक लेखमाला लिखी। इस लेखमाला में उन्होंने "आलोचना की स्वतंत्रता" के नाम पर क्रांतिकारी मार्क्सवाद के दार्शनिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आधार-सिद्धांतों को संशोधित करने का (जिससे "संशोधनवाद" शब्द का चलन हुआ) और उनके स्थान पर वर्ग विरोधों के समाधान तथा वर्ग सहयोग के बुर्जुआ सिद्धांतों को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने मज़दूर वर्ग के दरिद्रीकरण, वर्ग विरोधों की वृद्धि, संकटों, पूंजीवाद के अनिवार्य विनाश, समाजवादी क्रांति तथा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के विषय में मार्क्स के मत पर प्रहार किया और एक सामाजिक-सुधारवादी कार्यक्रम पेश किया, जिसका सार इस सूत्र में प्रकट होता है: "आंदोलन ही सब कुछ है, अंतिम लक्ष्य कुछ नहीं!" १८९९ में बर्नस्टीन के लेखों का एक संग्रह 'समाजवाद के पूर्वाधार और सामाजिक-जनवाद के कार्यभार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के दक्षिणपंथियों ने तथा रूसी अवसरवादियों समेत दूसरे इंटरनेशनल की अन्य पार्टियों के अवसरवादियों ने इस पुस्तक का समर्थन किया। रूस में बर्नस्टीन के समर्थकों में क़ानूनी मार्क्सवादियों, अर्थवादियों, बुंदपंथियों और मेंशेविकों का नाम लिया जा सकता है।

व्ला० इ० लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक पार्टी ने बर्नस्टीनवाद तथा रूस में बर्नस्टीन के अनुयायियों के खिलाफ़ दृढ़ तथा सुसंगत संघर्ष चलाया। – १०

[11] **यमदूत सभा** – क्रांतिकारी आंदोलन का सामना करने के लिए ज़ारशाही पुलिस द्वारा स्थापित राजतंत्रवादी गुंडा गिरोह। यमदूतसभाई क्रांतिकारियों की हत्याएं करते थे, प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को तंग करते थे और यहूदियों की मारकाट तथा लूट-खसोट के संगठित अभियान चलाते थे। – १३

[12] **'ज़ार्या'** (प्रभात) – 'ईस्क्रा' के संपादकमंडल द्वारा स्टुटगार्ट से १९०१–१९०२ में प्रकाशित मार्क्सवादी वैज्ञानिक तथा राजनीतिक पत्रिका। कुल मिलाकर इसके चार अंक (तीन जिल्दों में) प्रकाशित हुए: पहला अंक अप्रैल, १९०१ में, दूसरा और तीसरा अंक दिसंबर, १९०१ में और चौथा अंक अगस्त, १९०२ में।

'ज़ार्या' अंतर्राष्ट्रीय तथा रूसी संशोधनवाद की आलोचना और मार्क्सवाद के आधारभूत सिद्धांतों का समर्थन करती रही। – १३

[13] **प्रगतिवादी** – रूसी उदार-राजतंत्रवादी बुर्जुआज़ी का एक समूह, जिसने राजकीय दूमा के चुनावों में और दूमा के अंदर भी, बुर्जुआ तथा सामंती पार्टियों और दलों के विभिन्न तत्वों को "निर्दलीय भावना" के नाम पर एकजुट करने की कोशिश की।

नवंबर, १९१२ में प्रगतिवादियों ने स्वयं अपनी स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी स्थापित की। जैसा लेनिन ने कहा था: "सदस्यता तथा विचारधारा, दोनों ही दृष्टियों से प्रगतिवादी **अक्तूबरवादियों तथा कैडेटों की दोग़ली संतान थे।"**

पहले विश्वयुद्ध के दौरान प्रगतिवादियों की सरगरमियां बढ़ गयीं। उन्होंने सैनिक नेतृत्व को बदलने, मोरचे की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उद्योग की पूरी शक्ति लगा देने और एक ऐसी "उत्तरदायी सरकार" क़ायम करने की मांग की, जिसमें रूसी बुर्जुआज़ी के प्रतिनिधि शामिल हों। फ़रवरी, १९१७ की बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति के बाद कई प्रगतिवादी नेता बुर्जुआ अस्थायी सरकार में शामिल हो गये। महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद प्रगतिवादी पार्टी ने सोवियत सत्ता के ख़िलाफ़ सक्रिय संघर्ष किया। – १४

[14] **'जातीय प्रश्न पर आलोचनात्मक टीकाएं'** नामक लेख अक्तूबर तथा दिसंबर, १९१३ के बीच लिखा गया था, और उसी वर्ष बोल्शेविक क़ानूनी पत्रिका, 'प्रोस्वेश्चेनिये' के अंक १०-११ तथा १२ में प्रकाशित हुआ था।

यह लेख लिखने से पहले, १९१३ की गरमियों में लेनिन ने स्विट्ज़रलैंड के कई शहरों – ज़्यूरिच, जिनेवा, लोज़ान तथा बर्न – में जातीय प्रश्न पर व्याख्यान दिये थे।

१९१३ के शरद में लेनिन ने पार्टी-कार्यकर्ताओं के साथ रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केंद्रीय समिति के अगस्त (ग्रीष्म) सम्मेलन में जातीय समस्या के बारे में एक रिपोर्ट पेश की। सम्मेलन ने लेनिन के भाषण के पश्चात उनके द्वारा सूत्रबद्ध एक प्रस्ताव स्वीकार किया। सम्मेलन के बाद लेनिन ने यह लेख लिखने का काम शुरू किया। – १६

[15] **'सेवेरनाया प्राव्दा'** ('उत्तरी प्राव्दा') – बोल्शेविकों के क़ानूनी दैनिक समाचारपत्र 'प्राव्दा' का एक नाम; १ अगस्त से लेकर ७ सितंबर तक पत्र इसी नाम से निकलता रहा था (देखिये ४५वीं टिप्पणी)। – १६

[16] **'त्साइत'** (समय) – एक साप्ताहिक, जो बुंद का मुखपत्र था। यह साप्ताहिक पीटर्सबर्ग से २० दिसंबर, १९१२ (२ जनवरी, १९१३) से ५(१८) मई, १९१४ तक निकलता रहा। – १६

[17] **'द्ज्विन'** (घंटा) – उक्रइनी भाषा में प्रकाशित मेंशेविक प्रवृत्ति की एक क़ानूनी राष्ट्रवादी मासिक पत्रिका, जिसका प्रकाशन कीयेव में जनवरी, १९१३ से लेकर १९१४ के मध्य तक होता रहा। – १६

[18] **'रूस्स्कोये स्लोवो'** (रूसी शब्द) – एक बुर्जुआ-उदारतावादी दैनिक, जो १८९५ में मास्को से निकलना शुरू हुआ। नवंबर, १९१८ में उसे बंद कर दिया गया। – १७

[19] **जेम्सत्वो** – १८६४ में ज़ारशाही रूस की केंद्रीय गुबेर्नियाओं में रईसों के नेतृत्व में स्थापित स्थानीय स्वशासन-संस्थाएं। जेम्सत्वो के अधिकार शुद्ध स्थानीय आर्थिक मामलों (अस्पतालों तथा सड़कों का निर्माण, सांख्यिकी, बीमा, इत्यादि) तक सीमित थे। इनकी गतिविधि पर प्रादेशिक गवर्नरों तथा गृह मंत्रालय का नियंत्रण था, जो इनके नागवार फ़ैसलों को रद्द कर सकते थे। – २०

[20] **"परिरुद्ध बस्तियां"** – ज़ारशाही रूस के वे इलाक़े, जिनमें यहूदियों को स्थायी रूप से रहने की इजाज़त थी। – २७

[21] "**संख्या-उपबंध**" – ज़ारशाही रूस में राजकीय सेवा में तथा राजकीय माध्यमिक स्कूलों और कालेजों में यहूदियों को सीमित संख्या में ही लिया जाता था। – २७

[22] इशारा आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी की ब्रून (आस्ट्रिया) में (२४ से २६ सितंबर, १८६६) आयोजित उस कांग्रेस की ओर है, जिसकी कार्यसूची में जातियों के प्रश्न का मुख्य स्थान था। इस कांग्रेस में दो प्रस्ताव रखे गये, जिनमें दो भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किये गये थे। पहला प्रस्ताव पार्टी की केंद्रीय समिति ने रखा था; इसमें जातियों की प्रादेशिक स्वायत्तता का समर्थन किया गया था। दूसरा प्रस्ताव दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादी पार्टी की समिति ने पेश किया था; इसमें राज्यक्षेत्रातीत सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की हिमायत की गयी थी।

कांग्रेस ने सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता के कार्यक्रम को सर्व-सम्मति से अस्वीकार कर दिया और एक समझौतावादी प्रस्ताव पास किया, जिसमें आस्ट्रियाई राज्य की सीमा के अंदर जातीय स्वायत्तता को स्वीकार किया गया था। – ३५

[23] '**सेरप**' (**य० स० म० पा०** – यहूदी समाजवादी मज़दूर पार्टी) – १६०६ में स्थापित एक निम्न-बुर्जुआ राष्ट्रवादी संगठन। इस पार्टी के कार्यक्रम का आधार यहूदियों के लिए जातीय स्वायत्तता था, अर्थात राज्यक्षेत्रातीत यहूदी संसदों की स्थापना, जिन्हें रूस में यहूदियों के राजनीतिक संगठन संबंधी प्रश्नों का निबटारा करने का अधिकार प्राप्त हो। राजनीति में यह पार्टी समाजवादी-क्रांति-कारियों (२५वीं टिप्पणी) के निकट थी और उसने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के ख़िलाफ़ संघर्ष में उनका साथ दिया। – ३५

[24] **बेइलिस का मुक़दमा** – १६१३ में कीयेव में ज़ारशाही सरकार द्वारा खड़ा किया गया एक झूठा मुक़दमा। बेइलिस नामक एक यहूदी पर यह झूठा आरोप लगाया गया कि उसने एक ईसाई लड़के युश्ची-न्स्की को तांत्रिक सिद्धि के लिए मार डाला है (वास्तव में यह हत्या यमदूतसभाइयों ने की थी)। यह मुक़दमा खड़ा कर ज़ारशाही

सरकार ने देश के बढ़ते और शक्तिशाली होते हुए क्रांतिकारी आंदोलन की ओर से जनसाधारण का ध्यान हटाने के प्रयोजन से यहूदीविरोधी भावनाओं को भड़काने तथा यहूदीविरोधी दंगे और हत्याकांड संगठित करने की कोशिश की। इस मुक़दमे से लोगों में ज़बरदस्त गुस्सा भड़क उठा; कई शहरों में मज़दूरों ने प्रतिवादस्वरूप प्रदर्शन किये। अदालत ने बेइलिस को निर्दोष ठहराया। – ३७

[25] **समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी** – निम्न-बुर्जुआ जनवादियों की एक पार्टी, जिसकी स्थापना १६०१ के अंत तथा १६०२ के आरंभ में की गयी थी। समाजवादी-क्रांतिकारियों ने निजी भूस्वामित्व के उन्मूलन की मांग की और "ज़मीन के समान उपयोग" का नारा उठाया। निरंकुश शासन के विरुद्ध अपने संघर्ष में उन्होंने व्यक्तिगत आतंकवाद की कार्यनीति अपनायी। १६०५–१६०७ की क्रांति की पराजय के बाद अधिकांश समाजवादी-क्रांतिकारियों और उनके नेताओं ने बुर्जुआ उदारतावाद का दृष्टिकोण अपनाया। फ़रवरी, १६१७ में बुर्जुआ-जनतांत्रिक क्रांति की विजय के बाद समाजवादी-क्रांतिकारी नेता बुर्जुआ अस्थायी सरकार में शामिल हो गये, जहां रहकर उन्होंने किसान आंदोलन के दमन की नीति का अनुसरण किया और समाजवादी क्रांति की तैयारी में लगे हुए मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ पूंजीपति वर्ग के संघर्ष का पूरा-पूरा समर्थन किया। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद उन्होंने सोवियत जनता के ख़िलाफ़ बुर्जुआ तथा सामंती प्रतिक्रांतिकारियों के सशस्त्र संघर्ष में भाग लिया। – ३७

[26] **पो० स० पा०** – पोलिश समाजवादी पार्टी – १८६२ में स्थापित एक सुधारवादी राष्ट्रवादी पार्टी।

१६०६ में यह पार्टी वाम पक्ष और अंधराष्ट्रवादी दक्षिण पक्ष के बीच बंट गयी।

प्रथम विश्वयुद्ध के काल में पो० स० पार्टी के अधिकांश वाम-पंथियों ने अंतर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण ग्रहण किया और दिसंबर, १६१८ में उन्होंने पोलिश सामाजिक-जनवादी पार्टी के साथ संयुक्त होकर पोलैंड की कम्युनिस्ट मज़दूर पार्टी की स्थापना की (१६२५

तक पोलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी का यही नाम बना रहा)।

पो० स० पार्टी के दक्षिणपंथियों ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अपनी अंधराष्ट्रवादी नीति जारी रखी; उन्होंने गैलीशिया में उन पोलिश टुकड़ियों को संगठित किया, जिन्होंने आस्ट्रियाई-जर्मन साम्राज्यवाद की ओर से लड़ाई में हिस्सा लिया – ३७

[27] **'लूच'** (किरण) – एक क़ानूनी दैनिक समाचारपत्र, जिसे मेंशेविक विसर्जनवादियों ने पीटर्सबर्ग से सितंबर, १९१२ से जुलाई, १९१३ तक प्रकाशित किया। यह "बुर्जुआज़ी के बीच धनी मित्रों के पैसे" (लेनिन के शब्द) से चलता था। – ३८

[28] **'प्रोस्वेश्चेनिये'** (ज्ञानोद्दीप्ति) – बोल्शेविक सैद्धांतिक मासिक पत्रिका, जो पीटर्सबर्ग से १ दिसंबर, १९११ जून, १९१४ तक बाज़ाब्ता निकलती रही। प्रथम विश्वयुद्ध के ठीक पहले उसे सरकारी आज्ञा से बंद कर दिया गया। १९१७ के शरद में 'प्रोस्वेश्चेनिये' का प्रकाशन फिर से शुरू किया गया, लेकिन उसके केवल दो अंक एक ही जिल्द में निकले। – ३८

[29] **बर्नस्टीनवाद** – देखिये टिप्पणी १०। – ३८

[30] लेनिन का इशारा जो० वि० स्तालिन के लेख **'मार्क्सवाद और जातियों का प्रश्न'** की ओर है, जो बोल्शेविक पार्टी की क़ानूनी पत्रिका, 'प्रोस्वेश्चेनिये' के १९१३ के अंक ३–४ तथा ५ में 'जातियों का प्रश्न तथा सामाजिक-जनवाद' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इस लेख के चौथे भाग में आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी की ब्रून कांग्रेस द्वारा स्वीकृत जातीय कार्यक्रम का मूलपाठ दिया हुआ है। – ३९

[31] **'नोवाया राबोचाया गाज़ेता'** (नया मज़दूर अख़बार) – मेंशेविक विसर्जनवादियों द्वारा प्रकाशित एक वैध दैनिक समाचारपत्र, जो पीटर्सबर्ग से 'जिवाया जीज़्न' की जगह ८(२१) अगस्त, १९१३ से २३ जनवरी (५ फ़रवरी), १९१४ तक निकलता रहा। लेनिन

अकसर इस अख़बार का ज़िक्र करते हुए उसे "नया विसर्जनवादी अख़बार" कहा करते थे। – ४०

[32] लेनिन ने अपनी तथ्य-सामग्री एक सांख्यिकी गुटका से ली है। देखिये 'साम्राज्य के प्राथमिक स्कूलों की एक-दिवसीय गणना, १८ जनवरी, १९११ को संपन्न, खंड १, भाग २, पीटर्सबर्ग शिक्षा-क्षेत्र। गुबेर्नियाएं: अर्खांगेल्स्क, वोलोग्दा, नोवगोरोद, ओलोनेत्स, प्स्कोव तथा पीटर्सबर्ग'; पीटर्सबर्ग, १९१२, पृ० ७२। – ४४

[33] *Przegląd Socjaldemokratyczny* (सामाजिक-जनवादी समीक्षा) – क्रैको से १९०२ से १९०४ तक और फिर १९०८ से १९१० तक, पोलिश सामाजिक-जनवादियों द्वारा रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के घनिष्ठ सहयोग से प्रकाशित पत्रिका। – ४८

[34] **'वेस्तनिक येव्रोपी'** (यूरोपीय अग्रदूत) – पीटर्सबर्ग से १८६६ से १९१८ के वसंत तक निकलनेवाली उदार-बुर्जुआ प्रवृत्ति की एक ऐतिहासिक-राजनीतिक तथा साहित्यिक मासिक पत्रिका। इसने क्रांतिकारी मार्क्सवादियों के ख़िलाफ़ बाक़ायदा प्रचार किया। – ५१

[35] **१९०३ का कार्यक्रम** – रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का वह कार्यक्रम, जिसे १९०३ में पार्टी की दूसरी कांग्रेस में स्वीकृत किया गया था। – ५५

[36] *Die Neue Zeit* (नवयुग) – जर्मनी की एक सामाजिक-जनवादी सैद्धांतिक पत्रिका, जो १८८३ से १९२३ तक स्टुटगार्ट से निकलती रही। कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स के कई लेख पहले-पहल इसी पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। एंगेल्स पत्रिका के संपादकों को अकसर सलाह-मशविरा देते और मार्क्सवाद से उनके विचलनों के लिए उनकी कठोर आलोचना करते थे। एंगेल्स की मृत्यु के बाद, १८९०–१९०० के दशक के अंतिम वर्षों में इस पत्रिका में नियमित रूप से संशोधनवादी लेखों का प्रकाशन आरंभ हुआ। साम्राज्यवादी विश्वयुद्ध (१९१४–१९१८) के दौरान पत्रिका ने मध्यमार्गी रुख़ अपनाया और सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों का समर्थन किया। – ५६

[37] 'नाऊचनाया मीस्ल' (वैज्ञानिक चिंतन) – रीगा से १६०८ में प्रकाशित एक मेंशेविक पत्रिका। – ५७

[38] देखिये कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खंड १, मास्को १६७६, पृ० ८५७। – ५६

[39] 'रूस्काया मीस्ल' (रूसी चिंतन) – एक उदार-नरोदवादी साहित्यिक-राजनीतिक मासिक पत्रिका, जो मास्को से १८८० से १६१८ तक निकलती रही। १६०५ की क्रांति के पश्चात वह कैडेट पार्टी के दक्षिण पक्ष का मुखपत्र बन गयी। उसके अस्तित्व के इस काल में, लेनिन ने उसे "यमदूतसभाई चिंतन" का लक़ब दिया था। पत्रिका १६१८ के मध्य में बंद कर दी गयी। – ६६

[40] **तीसरा जून** – ३(१६) जून, १६०७ का सत्ता-उलटाव, जब सरकार ने दूसरी राजकीय दूमा को भंग कर दिया और दूमा के चुनाव-क़ानून को बदल दिया। नये चुनाव-क़ानून के अंतर्गत ज़मींदारों, व्यापारियों तथा उद्योगपतियों के प्रतिनिधित्व को बहुत अधिक बढ़ा दिया गया और किसान तथा मज़दूर प्रतिनिधियों की संख्या, जो पहले ही न्यून थी, और भी घटा दी गयी। इस क़ानून ने एशियाई रूस के अधिकांश निवासियों को मताधिकार से वंचित कर दिया तथा पोलैंड और काकेशिया के प्रतिनिधियों की संख्या आधी कर दी। इस क़ानून के तहत नवंबर, १६०७ में बुलायी गयी तीसरी दूमा अपने संघटन की दृष्टि से यमदूतसभाई-कैडेटी दूमा थी।

तीसरे जून के सत्ता-उलटाव को ही स्तोलीपिन-प्रतिक्रिया, जिसे "तीसरे जून की शासन-व्यवस्था" भी कहते हैं, के काल का आरंभ माना जाता है। – ७६

[41] **अक्तूबरवादी अथवा 'सत्रह अक्तूबर संघ'** – बड़े व्यापारियों, औद्योगिक पूंजीपतियों तथा अपनी ज़मीदारियों को पूंजीवादी पद्धति पर चलानेवाले ज़मींदारों की एक प्रतिक्रांतिकारी पार्टी, जिसकी स्थापना नवंबर, १६०५ में, १७ अक्तूबर के ज़ारशाही घोषणापत्र के प्रकाशन के बाद, की गयी थी। अक्तूबरवादी ज़ारशाही सरकार की गृह तथा विदेश नीति का पूर्ण समर्थन करते थे। उनके नेता बड़े उद्योगपति अ० इ० गुचकोव और बड़ी ज़मींदारियों के मालिक म० व० रोद्ज़्यान्को थे। – ७६

[42] देखिये टिप्पणी १३। – ७६

[43] देखिये टिप्पणी ६। – ७६

[44] 'रेच' (वाणी) – कैडेट पार्टी का केंद्रीय मुखपत्र, जो २३ फ़रवरी (८ मार्च), १६०६ से पीटर्सबर्ग से एक दैनिक के रूप में निकलना शुरू हुआ। २६ अक्तूबर (८ नवंबर), १६१७ को पेत्रोग्राद सोवियत की सैनिक क्रांतिकारी समिति द्वारा बंद कर दिये जाने पर भी वह भिन्न नामों से अगस्त, १६१८ तक निकलता रहा। – ७६

[45] 'प्राव्दा' (सत्य) – २२ अप्रैल (५ मई), १६१२ से पीटर्सबर्ग से प्रकाशित होनेवाला बोल्शेविक पार्टी का वैध दैनिक समाचारपत्र। 'प्राव्दा' जनसाधारण के लिए मज़दूरों का अख़बार था और मज़दूरों के चंदे से ही चलता था। उसकी औसत बिक्री ४०,००० प्रतियां थी, परंतु किसी-किसी महीने में एक-एक दिन में उसकी ६०,००० प्रतियां तक बिक जाती थीं। लेनिन, जो उस समय विदेश में थे, पत्र का वहीं से पथप्रदर्शन करते थे, उसके लिए प्रायः नित्य ही लिखते थे, उसके संपादकमंडल को हिदायतें भेजते थे और उन्होंने पार्टी की श्रेष्ठतम साहित्यिक प्रतिभाओं को उसके लिए जुटाया। लेनिन के लगभग २७० लेख 'प्राव्दा' में प्रकाशित हुए।

'प्राव्दा' को लगातार पुलिस के दमन को झेलना पड़ता था। सरकार ने आठ बार उसके प्रकाशन को बंद किया, लेकिन फिर भी वह भिन्न-भिन्न नामों से निकलता रहा। ये नाम हैं: 'राबोचाया प्राव्दा', 'सेवेरनाया प्राव्दा,' 'प्राव्दा त्रुदा', 'ज़ा प्राव्दु' 'प्रोलेतार्स्काया प्राव्दा', 'पुत प्राव्दी', 'राबोची', 'त्रुदोवाया प्राव्दा'। प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने के ठीक पहले, ८(२१) जुलाई, १६१४ को सरकार ने इसके प्रकाशन को निषिद्ध कर दिया और १६१७ में फ़रवरी क्रांति के बाद ही उसका प्रकाशन फिर से शुरू किया जा सका।

५(१८) मार्च, १६१७ से 'प्राव्दा' रूसी सामाजिक-जनवादी

मजदूर पार्टी के मुखपत्र के रूप में निकलने लग गया। ५(१८) अप्रैल को स्वदेश लौटने पर लेनिन 'प्राव्दा' के संपादकमंडल में शामिल हो गये और उन्होंने उसका नेतृत्व ग्रहण कर लिया। जुलाई और अक्तूबर, १९१७ के बीच अस्थायी सरकार ने 'प्राव्दा' पर बार-बार रोक लगायी और उसे नाम बदल-बदलकर निकलना पड़ा। वह 'लिस्तोक प्राव्दी', 'प्रोलेतारी', 'राबोची', 'राबोची पुत' नामों से निकला। २७ अक्तूबर (९ नवंबर), १९१७ से यह पत्र अपने पुराने 'प्राव्दा' नाम से निकल रहा है। – ७९

46 इशारा **दूसरी अखिल उक्रइनी विद्यार्थी कांग्रेस** की तरफ़ है, जो ल्वोव नगर में १९१३ में १९ जून से २२ जून (२–५ जुलाई) तक हुई। यह कांग्रेस जाने-माने उक्रइनी लेखक, वैज्ञानिक, सार्वजनिक नेता तथा क्रांतिकारी-जनवादी इवान फ़्रान्को के सम्मान समारोह के अवसर पर बुलायी गयी थी। कांग्रेस के प्रतिनिधियों में रूस के उक्रइनी छात्रों के भी प्रतिनिधि थे। उक्रइनी सामाजिक-जनवादी दोन्त्सोव ने "स्वतंत्र" उक्रइना के नारे की हिमायत करते हुए 'उक्रइना के युवाजन और जातियों की मौजूदा स्थिति' पर एक रिपोर्ट पेश की। – ७९

47 **'श्ल्याखी'** (रास्ते) – उक्रइनी छात्र संघ का राष्ट्रवादी प्रवृत्ति का मुखपत्र, जो अप्रैल, १९१३ से मार्च, १९१४ तक ल्वोव से प्रकाशित होता रहा। – ८०

48 **'नोवोये व्रेम्या'** (नवयुग) – एक दैनिक समाचारपत्र, जो पीटर्स-बर्ग से १८६८ से अक्तूबर, १९१७ तक निकलता रहा। शुरू-शुरू में वह एक नरम उदारवादी पत्र था, परंतु १८७६ के बाद वह प्रतिक्रियावादी अभिजात वर्ग तथा सरकारी नौकरशाहों का मुखपत्र बन गया। उसने न केवल क्रांतिकारी आंदोलन के खिलाफ़, बल्कि बुर्जुआ-उदारवादी आंदोलन के खिलाफ़ भी संघर्ष चलाया। १९०५ में उसने एक यमदूतमभाई मुखपत्र का रूप ग्रहण कर लिया। लेनिन 'नोवोये व्रेम्या' को ज़मीरफ़रोश अखबार की एक मिसाल के रूप में पेश करते थे।

'ज़ेमश्चिना' – पीटर्सबर्ग से जून, १९०९ से फ़रवरी, १९१७ तक निकलनेवाला एक यमदूतमभाई दैनिक, राजकीय दूमा के घोर दक्षिणपंथी सदस्यों का मुखपत्र। – ८२

49 **"पकड़ लो और छोड़ो मत"** – ग्लेब उसपेन्स्की की कृति 'संतरी की कालकोठरी' से उद्धृत एक पद, जो पुलिस की मनमानी को व्यंजित करता है। – ८३

50 **'कीयेवस्काया मीस्ल'** (कीयेव का विचार) – एक उदार-बुर्जुआ दैनिक, जो १९०६ से १९१८ तक कीयेव से निकलता रहा। – ८४

51 अ० स० ग्रिबोयेदोव के प्रहसन 'बढ़िया दिमाग़, भारी मुसीबत' से लिया गया एक फ़िक़रा। – ८८

52 *Naprzód* (**'नाप्शूद'**)(आगे बढ़ो) – क्रैको से निकलनेवाला गैली-शिया तथा साइलेशिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी का केंद्रीय मुखपत्र; १८९२ से प्रकाशित यह पत्र निम्न-बुर्जुआ विचारधारा का प्रतिपादक था। – ९०

53 यहां इशारा १८६१ में रूस में भूदासता के उन्मूलन की ओर है। – १००

54 लेनिन का अभिप्राय पोलिश जनता के ज़ारशाही निरंकुश शासन के खिलाफ़ १८६३–१८६४ में फूटनेवाले राष्ट्रीय मुक्ति के लिए विद्रोह से है।

रूसी क्रांतिकारी-जनवादियों की विद्रोहियों के साथ गहरी सहानुभूति थी। 'ज़ेम्ल्या इ वोल्या' (भूमि तथा स्वतंत्रता) नामक गुप्त समाज के सदस्यों ने उनकी यथासंभव सब तरह से सहायता करने की कोशिश की। विख्यात रूसी क्रांतिकारी जनवादी नेता नि० ग० चेर्निशेव्स्की का इस समाज से गहरा संबंध था। समाज की केंद्रीय समिति ने 'रूसी अफ़सरों और सिपाहियों के नाम' एक अपील जारी की और उसे विद्रोह को कुचलने के लिए भेजी जाने-वाली सैनिक टुकड़ियों में बंटवाया। अ० इ० हर्जेन और न० प० ओगार्योव ने 'घंटा' नामक पत्रिका में पोलिश विद्रोहियों के संघर्ष

के बारे में कई लेख प्रकाशित किये और उनकी धन, आदि से भी मदद की।

लेकिन लाल पार्टी (छोटे पोलिश ज़मीदारों की पार्टी) ने क्रांतिकारी पेशक़दमी का मौक़ा हाथ से निकल जाने दिया और इस पार्टी के ढुलमुलपन की वजह से विद्रोह की बागडोर सफ़ेद पार्टी (बड़े ज़मीदारों और पूंजीपतियों की पार्टी) के हाथों में आ गयी, जिन्होंने विद्रोहियों के साथ ग़द्दारी की। १८६४ की गरमियों तक ज़ारशाही सैनिकों ने विद्रोह को कुचल दिया।

मार्क्स और एंगेल्स इस विद्रोह को प्रगतिशील समझते थे और उन्होंने उसे गहरी सहानुभूति की दृष्टि से देखा। उन्होंने पोलिश जनता के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में उसकी विजय की कामना की। लंदन में जर्मन प्रवासियों की ओर से मार्क्स ने पोल लोगों की सहायता के लिए एक अपील निकाली थी। – १००

[55] लेनिन का इशारा वि० लीब्कनेख़्त द्वारा मार्क्स के संस्मरण की ओर है। – १०३

[56] देखिये एंगेल्स के नाम मार्क्स का पत्र, ५ जुलाई, १८७०। – १०३

[57] **फ़ेनियनवाद; फ़ेनी** – आयरिश गुप्त क्रांतिकारी संगठन के सदस्य, जिन्होंने १८६७ में अपने देश में अंग्रेज़ी अधिकार को मिटाने के लिए विद्रोह किया। – १०५

[58] *The Times* — लंदन में १७८५ में स्थापित दैनिक समाचारपत्र। ब्रिटिश बुर्जुआज़ी का एक बड़ा अनुदार समाचारपत्र। – १०५

[59] देखिये एंगेल्स के नाम मार्क्स का पत्र, १७ दिसंबर, १८६७। – १०६

[60] **अल्सटर** – आयरलैंड का उत्तर-पूर्वी हिस्सा, जहां की आबादी मुख्यतया अंग्रेज़ों की है। – ११०

[61] १९०२ में 'ज़ार्या' के अंक ४ में प्रकाशित प्लेख़ानोव के लेख, 'रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी के लिए कार्यक्रम का मसौदा' से उद्धृत। – ११२

[62] 'बोर्बा' (संघर्ष) – त्रोत्स्की की पत्रिका, जो पीटर्सबर्ग से फ़रवरी से जुलाई १९१४ तक निकली। "गुटबंदी से दूर रहने" का ढोंग रचते हुए त्रोत्स्की ने इस पत्रिका के स्तंभों में लेनिन तथा बोल्शेविक पार्टी के ख़िलाफ़ प्रचार-अभियान चलाया। – ११७

[63] मि० ये० साल्तिकोव-श्चेद्रीन के लेख-संग्रह 'विदेश में' से उद्धृत एक फ़िक़रा। – ११९

[64] **बूर्सा के विद्यार्थी** – उन धार्मिक स्कूलों (बूर्सा) के विद्यार्थी, जिनका जीवन रूसी लेखक न० ग० पोम्यालोव्स्की ने अपनी 'बूर्सा की कहानियों' में चित्रित किया है। – ११९

[65] ये शब्द सेवास्तोपोल के सिपाहियों के एक गीत से लिये गये हैं, जिसका संबंध क्रीमियाई युद्ध के दौरान ४ अगस्त, १८५५ को चोर्नाया नदी के तट पर हुई एक लड़ाई से है। गीत के रचयिता लेव तोलस्तोय थे। – १२२

[66] **जन-समाजवादी** – निम्न-बुर्जुआ श्रमिक जन-समाजवादी पार्टी के सदस्य। यह पार्टी समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी से अलग हुए दक्षिणपंथियों को लेकर १९०६ में गठित की गयी थी। जन-समाजवादी कैडेटों के साथ संयुक्त मोरचा बनाने के पक्ष में थे। लेनिन उन्हें कैडेटों और समाजवादी-क्रांतिकारियों के बीच थाली के बैंगन की तरह लुढ़कते रहनेवाले "सामाजिक-कैडेट", "कूपमंडूक अवसरवादी", "समाजवादी-क्रांतिकारी मेंशेविक" कहते थे। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि यह पार्टी "कैडेटों से लगभग अभिन्न है, क्योंकि वह अपने कार्यक्रम से गणतंत्र तथा समस्त भूमि के राष्ट्रीयकरण के लिए मांग, दोनों को ख़ारिज कर देती है"। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जन-समाजवादियों ने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद उन्होंने सोवियत सरकार के ख़िलाफ़ प्रतिक्रांतिकारी षड्यंत्रों तथा सशस्त्र संघर्षों में हिस्सा लिया। विदेशी

सैनिक हस्तक्षेप तथा गृहयुद्ध के काल में इस पार्टी का अस्तित्व समाप्त हो गया। – १२५

[67] **'रूस्स्कोये बोगात्सत्वो'** (रूसी संपदा) – एक मासिक पत्रिका, जो पीटर्सबर्ग से १८७६ से १९१८ के मध्य तक निकलती रही। १९वी शताब्दी के अंतिम दशक के आरंभ में यह पत्रिका उदार नरोदवादियों का मुखपत्र बन गयी। १९०६ में वह वास्तव में अर्ध-कैडेटी जन-समाजवादी पार्टी का मुखपत्र बन गयी। – १२५

[68] **संयुक्त अभिजात परिषद** – मई, १९०६ में स्थापित ज़मींदारों का प्रतिक्रांतिकारी संगठन, जिसका सरकारी नीति पर काफ़ी असर था। परिषद का लक्ष्य स्वेच्छाचारी शासन की निरंकुश सत्ता को बनाये रखना और ज़मींदारों की आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करना था। उसके बहुतेरे सदस्य राज्य-परिषद में तथा यमदूतमभाई संगठनों के नेतृत्वकारी केंद्रीय निकायों में शामिल थे। परिषद अक्तूबर १९१७ तक बनी रही। – १२६

[69] **दिसंबरवादी** – अभिजातवर्गीय रूसी क्रांतिकारी, जो सामंतशाही और स्वेच्छाचारी शासन के विरोधी थे। उनके विद्रोह का आरंभ १४ दिसंबर, १८२५ को होना था, इसी से वे दिसंबरवादी कहलाये। – १२६

[70] **राज़्नोचीन्त्सी** – रूसी समाज के शिक्षित प्रतिनिधि, जो अभिजात वर्ग से नहीं, बल्कि निम्न-बुर्जुआज़ी, पादरियों, व्यापारियों और किसानों के बीच से आये थे। – १२६

[71] यह उद्धरण चेर्नीशेव्स्की के उपन्यास 'प्रस्तावना' से लिया गया है। – १२६

[72] देखिये कार्ल मार्क्स, 'गुप्त सूचना' और फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'प्रवासी साहित्य', अध्याय १, पोलिश घोषणा। – १३०

[73] **ड्राइफ़स का मुक़दमा** – फ़्रांसीसी सैन्यवादियों के बीच प्रतिक्रियावादी राजतंत्रवादी हलक़ों द्वारा जनरल स्टाफ़ के यहूदी अफ़सर ड्राइफ़स के ख़िलाफ़ खड़ा किया गया एक उत्तेजक मुक़दमा। ड्राइफ़स पर जासूसी तथा राजद्रोह का झूठा आरोप लगाया गया। सैनिक न्यायालय ने उन्हें आजीवन कारावास का दंड दिया। फ़्रांस में ड्राइफ़स के मुक़दमे की नज़रसानी के पक्ष में एक सार्वजनिक आंदोलन छिड़ गया और उसने गणतंत्रवादियों तथा राजतंत्रवादियों के बीच भीषण संघर्ष का रूप धारण कर लिया। इस आंदोलन के फलस्वरूप अंततः ड्राइफ़स को १८९९ में क्षमादान देकर रिहा कर दिया गया और १९०६ में उन्हें इल्ज़ाम से बरी करके फ़ौज में बहाल कर दिया गया।

लेनिन ने कहा है कि ड्राइफ़स का मुक़दमा "प्रतिक्रियावादी सैन्यवादियों की हज़ारों फ़रेबी कार्रवाइयों की एक मिसाल है"। – १३७

[74] **ज़ेबर्न-कांड** – नवंबर, १९१३ में हुई अल्सास प्रदेश के ज़ेबर्न नगर की एक घटना, जिसका संबंध अल्सासियों के प्रति एक प्रशाई अफ़सर के पाशविक व्यवहार से है। इसका परिणाम यह हुआ कि स्थानीय लोगों में, मुख्यतः फ़्रांसीसी लोगों में, प्रशाई सैन्यवादियों के ख़िलाफ़ गुस्सा भड़क उठा। – १३७

[75] देखिये एंगेल्स के नाम मार्क्स का पत्र, ३० नवंबर, १८६७। – १३८

[76] लेनिन ने रेनर तथा बावेर के "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" के प्रतिक्रियावादी विचार की कड़ी आलोचना की थी। देखिये, उनका लेख 'जातीय प्रश्न पर आलोचनात्मक टीकाएं' (प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १६ – ५३)। – १३८

[77] देखिये कार्ल मार्क्स, 'गुप्त सूचना' और फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'प्रवासी साहित्य', अध्याय १, पोलिश घोषणा। – १४१

[78] देखिये एंगेल्स के नाम मार्क्स का पत्र, २ नवंबर, १८६७। – १४२

[79] *Die Glocke* (घंटा) – जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के सदस्य, सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी पार्वुस (गेल्फ़ांद) द्वारा १९१५ से १९२५ तक पहले म्यूनिख़ से और फिर बर्लिन से प्रकाशित एक पत्रिका। – १४२

[80] देखिये फ़्रे० एंगेल्स, 'जनतांत्रिक सर्वस्लाववाद'। लेनिन ने *Aus dem Literarischen Nachlass von Karl Marx, Friedrich Engels und Ferdinand Lassalle* (hrsg. von Franz Mehring, Stuttgart, 1902, Bd. III, S. 246—264) शीर्षक पुस्तक का इस्तेमाल किया, जिसमें उपरोक्त लेख के लेखक का नाम नहीं दिया गया है। – १४२

[81] **फ़ेबियन** – ब्रिटिश सुधारवादी संगठन, फ़ेबियन सोसाइटी, के सदस्य। स्थापना काल: १८८४। रोमन सेनापति फ़ेबियस मक्सीमस (तीसरी सदी, ईसा पूर्व) के नाम पर, जिसे कनक्टेटर ("खींचनेवाला") कहा जाता था, इस सोसाइटी को फ़ेबियन सोसायटी कहा गया। यह सेनापति अपने विलंबकारी दांव-पेंच और हानीबाल के विरुद्ध जंग में निर्णायक लड़ाइयों को टालने के लिए प्रसिद्ध था।

फ़ेबियन लोग सर्वहारा वर्ग संघर्ष और समाजवादी क्रांति की आवश्यकता से इन्कार करते थे। उनका मत था कि केवल छोटे-छोटे सुधारों और समाज के क्रमशः रूपांतरण द्वारा पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण संभव है। व्ला० इ० लेनिन ने फ़ेबियनों को "उग्र अवसरवाद की एक प्रवृत्ति" कहा था। १९०० में फ़ेबियन सोसाइटी लेबर पार्टी (मज़दूर दल) में शामिल हो गयी। "फ़ेबियन समाजवाद" लेबर विचारधारा के स्रोतों में से एक है।

पहले विश्वयुद्ध के दौरान (१९१४-१९१८) फ़ेबियन लोगों ने सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद की स्थिति अपनायी। – १४४

[82] लेनिन का अभिप्राय जातीय प्रश्न से संबंधित उस प्रस्ताव से है, जिसे उन्होंने सूत्रबद्ध किया था, और जिसे क्रैको नगर के निकट पोरोनिन नामक स्थान में हुए रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केंद्रीय समिति तथा पार्टी के प्रमुख कार्यकर्ताओं के सम्मेलन (२३–१ अक्तूबर, १९१३) में स्वीकृत किया गया था। गोपनीयता के विचार से सम्मेलन को "ग्रीष्म" अथवा "अगस्त" सम्मेलन हा गया था। – १४७

[83] **'नाशे देलो'** (हमारा ध्येय) – मेंशेविक-विसर्जनवादियों तथा सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों का केंद्रीय मुखपत्र। यह मासिक १९१५

में पेत्रोग्राद से 'नाशा ज़ार्या' नामक पत्रिका के स्थान पर निकाला गया था, जिसे अक्तूबर, १९१४ में बंद कर दिया गया था। कुल मिलाकर इसके ६ अंक निकले। – १४७

[84] **ज़िम्मरवाल्ड सम्मेलन** – ज़िम्मरवाल्ड (स्विट्ज़रलैंड) में हुआ अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन (५–८ सितंबर, १९१५), जहां क्रांतिकारी अंतर्राष्ट्रीयतावादियों, जिनके नेता लेनिन थे, और मध्यमार्गी बहुमत के बीच टक्कर हुई। लेनिन ने वामपंथी अंतर्राष्ट्रीयतावादियों को लेकर ज़िम्मरवाल्डी वामपक्ष की स्थापना की; इस सम्मेलन में केवल बोल्शेविक पार्टी ही ऐसी थी, जिसने युद्ध के ख़िलाफ़ सही और सुसंगत अंतर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण अपनाया।

सम्मेलन ने एक घोषणापत्र जारी किया, जिसमें विश्वयुद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध घोषित किया गया था, सम्मेलन में उन "समाजवादियों" के आचरण की निंदा की गयी, जिन्होंने युद्ध ऋणों के लिए वोट दिये थे और जो बुर्जुआ सरकारों में शामिल हुए थे। घोषणापत्र में यूरोप के मज़दूरों से अपील की गयी थी कि वे युद्ध के ख़िलाफ़ संघर्ष को तेज़ करें और बग़ैर समामेलनों और हरजानों के शांति के लिए चेष्टा करें।

सम्मेलन ने युद्ध-पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए एक प्रस्ताव स्वीकार किया और एक अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी आयोग की स्थापना की। – १४८

Vorbote (अग्रदूत) – १९१६ में बर्न से जर्मन में प्रकाशित ज़िम्मरवाल्डी वामपंथियों की सैद्धांतिक पत्रिका। इसके दो अंक निकले थे, अंक १ जनवरी, १९१६ में तथा अंक २ अप्रैल, १९१६ में। लेनिन के लेख 'अवसरवाद तथा दूसरे इंटरनेशनल का पतन' और 'समाजवादी क्रांति तथा जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार (स्थापनाएं)' इसी पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। देखिये, प्रस्तुत पुस्तक, पृ० १३४ – १५०)। – १५१

[86] **'सोत्सिआल-देमोक्रात'** (सामाजिक-जनवादी) – एक ग़ैर-क़ानूनी अख़बार, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का मुखपत्र, जो फ़रवरी,

१९०८ से जनवरी, १९१७ तक निकलता रहा। पहले इसे रूस से निकालने की कई बार कोशिश की गयी, लेकिन इसमें सफलता न मिलने के कारण उसे देश से बाहर (पेरिस, जेनोआ) से प्रकाशित किया गया। कुल मिलाकर इसके ५८ अंक निकले। दिसंबर, १९११ में 'सोत्सिआल-देमोक्रात' के संपादन का भार लेनिन ने संभाला। उसके लिए उन्होंने ८० से ज्यादा लेख लिखे।

प्रतिक्रिया के बोलबाले के भयानक दौर में और फिर क्रांतिकारी आंदोलन में नया उभार आने के दौर में भी 'सोत्सिआल-देमोक्रात' ने बोल्शेविक पार्टी के ग़ैर-क़ानूनी मार्क्सवादी पार्टी को क़ायम रखने, उसकी एकता तथा जनसाधारण के साथ उसके संपर्कों को दृढ़ करने के लिए विसर्जनवादियों, त्रोत्स्कीपंथियों और बहिष्कार-वादियों के ख़िलाफ़ चलाये जानेवाले संघर्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

पहले विश्वयुद्ध के दौरान अंतर्राष्ट्रीय अवसरवाद, राष्ट्रवाद तथा अंधराष्ट्रवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष में बोल्शेविक नारों का प्रचार करने, साम्राज्यवादी युद्ध तथा उस युद्ध के भड़कानेवालों के ख़िलाफ़, निरंकुश शासन तथा पूंजीवाद के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए मज़दूरों तथा किसानों को जाग्रत तथा सचेत करने के संघर्ष में 'सोत्सिआल-देमोक्रात' ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की। उसने क्रांतिकारी मज़दूर आंदोलन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश डाला, युद्ध के बारे में साम्राज्यवादियों के उद्देश्यों और सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों तथा मध्यमार्गियों की पाखंडपूर्ण कथनी और अवसरवादी करनी का परदा-फ़ाश किया और युद्ध-काल में सर्वहारा के क्रांतिकारी संघर्ष के एक-मात्र सही रास्ते का निर्देश किया।

युद्ध के फलस्वरूप रास्ते में आनेवाली अड़चनों पर क़ाबू पाते हुए 'सोत्सिआल-देमोक्रात' को दूसरे देशों में भी फैलाया गया।

पहले विश्वयुद्ध के दौरान इस समाचारपत्र की सेवाओं की लेनिन ने बहुत क़द्र की, और बाद में लिखा कि "जो भी वर्ग-चेतन मज़दूर अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी क्रांति के विचारों के विकास को और २५ अक्तूबर, १९१७ को उसकी पहली विजय के अर्थ को समझना चाहता है, वह इसमें प्रकाशित लेखों के अध्ययन के बिना काम नहीं चला सकता"। – १५१

[87] **'गाज़ेता रोबोत्निचा'** (*Gazeta Robotnicza* — मज़दूर अख़बार) – पोलैंड तथा लिथुआनिया के सामाजिक-जनवादियों की वार्सा समिति का ग़ैर-क़ानूनी मुखपत्र, जो मई से अक्तूबर, १९०६ तक निकलता रहा। कुछ मिलाकर इसके १४ अंक निकले, जिसके बाद उसका प्रकाशन बंद कर दिया गया। १९१२ में पोलिश सामाजिक-जनवादी पार्टी में फूट पड़ गयी और उसकी दो वार्सा समितियां क़ायम हो गयीं और 'गाज़ेता रोबोत्निचा' नाम से ही दो अख़बार निकलने लगे, जिनमें एक वार्सा में पार्टी के मुख्य बोर्ड के समर्थकों द्वारा जुलाई, १९११ से जुलाई, १९१३ तक निकाला जाता रहा और दूसरा क्रैको में स्थापित विरोधी वार्सा समिति द्वारा जुलाई, १९११ से फ़रवरी, १९१६ तक प्रकाशित होता रहा। लेनिन का अभिप्राय इस दूसरे अख़बार से है।

इस अख़बार ने ज़िम्मरवाल्डी वामपंथी दल का पक्ष लिया। यद्यपि उसने युद्ध के प्रश्न पर सुसंगत अंतर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण ग्रहण किया, अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों (जैसे मध्यमार्गियों से संगठना-त्मक संबंधविच्छेद, युद्ध के दौरान न्यूनतम कार्यक्रम की मांगों के प्रति रुख़) के बारे में वह मध्य पक्ष की ओर ढुलक पड़ा। जातियों के प्रश्न के मामले में उसने जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का विरोध किया।

यहां लेनिन द्वारा सूत्रबद्ध स्थापनाएं, 'समाजवादी क्रांति तथा जातियों का अधिकार', तथा 'गाज़ेता रोबोत्निचा' द्वारा सूत्रबद्ध स्थापनाएं, 'साम्राज्यवाद तथा जातीय उत्पीड़न के बारे में', दोनों ही अभिप्रेत हैं। दोनों ही *Vorbote* पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं, और उन्हें फिर 'स्बोर्निक सोत्सिआल-देमोक्राता' अंक १ (अक्तूबर, १९१६), में छापा गया, जिसमें लेनिन का लेख "आत्मनिर्णय संबंधी बहस के परिणाम" भी प्रकाशित हुआ था। – १५१

[88] पोलैंड की स्वाधीनता के बारे में इन तीन दृष्टिकोणों के मूल्यांकन के लिए देखिये लेनिनकृत 'जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार', प्रस्तुत पुस्तक में पृ० ५४ – १२७। – १५१

[89] १९०३ में, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस की तैयारी के दौरान और फिर कांग्रेस के अंदर, 'ईस्क्रा' के संपादक-

मंडल द्वारा सूत्रबद्ध रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम के मसौदे पर होनेवाली बहस के सिलसिले में जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार की मांग को लेकर बड़े ज़ोर का विवाद छिड़ गया। 'ईस्क्रा' में प्रकाशित अपने लेखों 'आर्मीनियाई सामाजिक-जनवादी संघ के घोषणापत्र के बारे में' और 'हमारे कार्यक्रम में जातियों के प्रश्न का स्थान' में लेनिन ने इस प्रश्न के प्रति मार्क्सवादियों, 'ईस्क्रा'-पंथियों के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया। कार्यक्रम के मसौदे के अनुच्छेद ९ में सूत्रबद्ध जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग को लेकर कांग्रेस के कार्यक्रम-आयोग में ज़ोरदार संघर्ष चला। पोलिश सामाजिक-जनवादियों का मत था कि यह मांग उठाना पोलिश राष्ट्रवादियों के हाथों में खेलना है और उन्होंने सुझाव दिया कि उसके स्थान पर सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की मांग रखी जाये। बुंदपंथियों ने भी कुछ ऐसा ही रुख अपनाया। उन्होंने उस समय आत्मनिर्णय के अधिकार का सीधे-सीधे विरोध तो नहीं किया, पर इसके लिए आग्रह किया कि अनुच्छेद ९ के पूरक के रूप में सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की मांग रखी जाये। इसके साथ ही उन्होंने संघीय सिद्धांत की हिमायत करते हुए पार्टी-संगठन में अंतर्राष्ट्रीयतावाद का विरोध किया। कांग्रेस ने पोलिश सामाजिक-जनवादियों के विचारों तथा बुंदपंथियों के राष्ट्रवादी दावों को ठुकरा दिया और जातियों के आत्मनिर्णय तथा पार्टी-संगठन में अंतर्राष्ट्रीयता के सिद्धांत संबंधी अनुच्छेद का अनुमोदन किया।

१९१३–१९१४ में, एक ओर, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के उभार तथा, दूसरी ओर, बड़ी जातियों के अंधराष्ट्रवाद तथा स्थानीय राष्ट्रवाद के ज़ोर पकड़ने के सिलसिले में जातीय प्रश्न संबंधी बहस फिर बड़े ज़ोर के साथ भड़क उठी। मेंशेविक-विसर्जनवादियों, बुंदपंथियों तथा उक्रइनी अवसरवादियों ने जातीय प्रश्न के बारे में मार्क्सवादी कार्यक्रम तथा इस कार्यक्रम में उठायी गयी जातियों के विलग होने समेत आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग पर हमला किया और उसके ख़िलाफ़ सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता की राष्ट्र-वादी मांग को पेश किया। रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग ने भी इस सवाल के बारे में ग़लत रुख अख़्तियार किया। अपने लेख 'जातीय प्रश्न तथा स्वायत्तता' (१९०८–१९०९) तथा अपनी दूसरी कृतियों में उन्होंने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम से जातियों के आत्मनिर्णय संबंधी अनुच्छेद को निकाल देने की ज़रूरत को साबित करने की कोशिश की। अपनी रचनाओं 'जातीय प्रश्न पर आलो-चनात्मक टीकाएं' और 'जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार' में लेनिन ने अवसरवादियों के राष्ट्रवादी विचारों तथा रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग की भ्रांत धारणाओं की आलोचना की। इन रचनाओं में लेनिन ने जातीय प्रश्न के बारे में मार्क्सवादी सिद्धांत को विकसित किया और बोल्शेविक पार्टी के जातीय कार्यक्रम तथा उसकी नीति की पुष्टि की (देखिये प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ १६–५३, ५४–१२७)।

लेनिन ने जब विश्वयुद्ध के वर्षों में जातीय प्रश्न के संबंध में "हमारी पार्टी के सदस्यों के बीच विचारों की अस्थिरता" की बात कही, तो उनका अभिप्राय १९१५ के वसंत में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की विदेशी शाखाओं के बर्न सम्मेलन में दिये गये बुख़ारिन के भाषण तथा 'जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के नारे के बारे में' बुख़ारिन, प्याताकोव और बोश की सम्मिलित स्थापनाओं (१९१५ की पतझड़) से था, जिनमें इन लोगों ने पार्टी-कार्यक्रम में जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग को अस्वीकार किया था। – १५२

[90] देखिये टिप्पणी ३। – १५४

[91] *Berner Tagwacht* (बर्न का प्रहरी) – दैनिक समाचारपत्र; स्विस सामाजिक-जनवादी पार्टी का मुखपत्र; १८९३ में बर्न में स्थापित। पहले विश्वयुद्ध के आरंभ में इसने कार्ल लीब्कनेख़्त, फ़्रांज़ मेहरिंग, आदि वामपंथी सामाजिक-जनवादियों के लेख प्रकाशित किये। १९१७ में इसने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों का खुल्लमखुल्ला समर्थन करना शुरू किया। – १६२

[92] देखिये टिप्पणी ८७। – १६३

[93] **'इंटरनेशनल' दल**, जो बाद में 'स्पार्टकस' लीग कहलाया, जर्मनी

के वामपंथी सामाजिक-जनवादियों – कार्ल लीब्कनेख़्त, रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग, फ़्रांज़ मेहरिंग, क्लारा ज़ेटकिन, इत्यादि – द्वारा प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ में स्थापित किया गया था। जर्मनी के मज़दूर आंदोलन के इतिहास में 'इंटरनेशनल' दल ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जनवरी, १९१६ में अखिल जर्मन वामपंथी सामाजिक-जनवादी सम्मेलन में इस दल ने अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवादी आंदोलन के कार्यभारों के बारे में रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग द्वारा सूत्रबद्ध स्थापनाओं को अंगीकार किया। 'इंटरनेशनल' दल ने जनसाधारण के बीच साम्राज्यवादी युद्ध के ख़िलाफ़ प्रचार चलाया और जर्मन साम्राज्यवाद की लुटेरी नीति तथा सामाजिक-जनवादी नेताओं की ग़द्दारी का परदाफ़ाश किया। परंतु दल सिद्धांत तथा नीति संबंधी अपनी बड़ी भूलों से छुटकारा न पा सका: उसने साम्राज्यवाद के युग में राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों की संभावना से इन्कार किया, क्रांतिकारी पार्टी की भूमिका को कम करके आंका, इत्यादि। १९१७ में 'इंटरनेशनल' दल अपनी संगठनात्मक स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखते हुए जर्मनी की मध्यमार्गी स्वतंत्र सामाजिक-जनवादी पार्टी में शामिल हो गया। नवंबर, १९१८ में जर्मनी में क्रांति होने के बाद दल ने 'स्वतंत्रों'' से संबंध-विच्छेद कर लिया, और उसी वर्ष दिसंबर में उसने जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। – १६५

94 देखिये फ़्रे॰ एंगेल्स, 'जनतांत्रिक सर्वस्लाववाद'। – १७५

95 देखिये कार्ल मार्क्स, 'गुप्त सूचना' और फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'प्रवासी साहित्य', अध्याय १, पोलिश घोषणा। – १७७

96 देखिये फ़्रे॰ एंगेल्स, 'मज़दूर वर्ग को पोलैंड से क्या मतलब है?'। – १७८

97 *Lichtstrahlen* (प्रकाश-किरण) – जू॰ बोरहार्ड्ट द्वारा संपादित एक मासिक पत्रिका, जो जर्मनी के वामपंथी सामाजिक-जनवादियों के एक दल का मुखपत्र थी और १९१३ और १९२१ के बीच बर्लिन से अनियमित रूप से निकलती रही। – १८७

98 इशारा रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग के लेख, **'जातीय प्रश्न तथा स्वायत्तता'** की ओर है, जो *Przegląd Socjaldemokratyczny* (सामाजिक-जनवादी समीक्षा) पत्रिका के १९०८ के अंक ६ – १० तथा १९०९ के अंक १२, १४ – १५ में प्रकाशित हुआ था। – १८७

99 **स्तोलीपिन मज़दूर पार्टी** – यह लक़ब मेंशेविक विसर्जनवादियों को दिया गया था, जिन्होंने अपने को स्तोलीपिन-प्रतिक्रिया काल में स्थापित शासन-व्यवस्था के अनुकूल बनाने की कोशिश की थी। पहली रूसी क्रांति (१९०५–१९०७) की पराजय के बाद उन्होंने अंततोगत्वा इस शासन को क़बूल कर लिया और रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम तथा कार्यनीति को तिलांजलि देकर एक क़ानूनी, नक़ली मज़दूर पार्टी की स्थापना के लिए ज़ारशाही सरकार की अनुमति पाने की कोशिश की। – १८८

100 **'नाशे स्लोवो'** (हमारा शब्द) – एक मेंशेविक दैनिक, जो 'गोलोस' (आवाज़) नामक समाचारपत्र के स्थान पर जनवरी, १९१५ से सितंबर, १९१६ तक पेरिस से प्रकाशित होता रहा। त्रोत्स्की उसके एक संपादक थे। – १९२

101 *Vorwärts* (आगे बढ़ो) – जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी का दैनिक केंद्रीय मुखपत्र। पार्टी की हाले कांग्रेस के निर्णय के फलस्वरूप १८९१ में यह *Berliner Volksblatt* (बर्लिन का जनसमाचारपत्र) के नये सिलसिले के रूप में *Vorwärts. Berliner Volksblatt* के नाम से प्रकाशित होने लगा। *Berliner Volksblatt* १८८४ से प्रकाशित हो रहा था। फ़्रे॰ एंगेल्स ने हर प्रकार के अवसरवाद का मुक़ाबला करने के लिए इस समाचारपत्र का उपयोग किया। फ़्रे॰ एंगेल्स की मृत्यु के बाद, १९वीं शताब्दी के अंतिम दशक के उत्तरार्ध से अख़बार में पार्टी के दक्षिण-पक्ष का ज़ोर बढ़ गया और उसमें अवसरवादियों के लेख नियमित रूप से प्रकाशित होने लगे।

पहले विश्वयुद्ध के दौरान (१९१४–१९१८) पत्र ने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी रुख़ अपना लिया और महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद *Vorwärts* सोवियतविरोधी प्रचार करने लगा। – १९४

[102] **'नाश गोलोस'** (हमारी आवाज) – क़ानूनी मेंशेविक समाचारपत्र; १९१५ – १९१६ में समारा से प्रकाशित होता रहा; सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी रुख अपनाया। – १९९

[103] **'जातियों या "स्वायत्तीकरण" का प्रश्न'** शीर्षक से प्रकाशित पत्र दिसंबर, १९२२ में लेनिन द्वारा बोलकर लिखवायी गयी टिप्पणियों – 'कांग्रेस के नाम पत्र' (जो 'लेनिन की वसीयत' के रूप में विख्यात है) और 'राजकीय योजना-आयोग को विधायी अधिकार दिये जाने के बारे में' – का ही सिलसिला है।

लेनिन जातीय नीति के सही कार्यान्वियन को और सोवियतों की कांग्रेस द्वारा स्वीकृत घोषणा तथा संधि के व्यवहार में परिपालन को असाधारण महत्व देते थे और उन्होंने ३० तथा ३१ दिसंबर को यह पत्र बोलकर लिखवाया था। अप्रैल, १९२३ में हुई रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की बारहवीं कांग्रेस के प्रतिनिधि-मंडलों के नेताओं की एक सभा में यह पत्र पढ़कर सुनाया गया। कांग्रेस ने लेनिन के पत्र के आधार पर जातीय प्रश्न पर प्रस्ताव स्वीकार किया।

"स्वायत्तीकरण" सोवियत जनतंत्रों को स्वायत्त इकाइयों के रूप में रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र में शामिल करके उन्हें एक सूत्र में बांधने के विचार का द्योतक है। यह विचार 'रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र तथा स्वाधीन जनतंत्र के बीच संबंधों के बारे में प्रस्ताव के मसौदे' का आधार था, जिसे जो० वि० स्तालिन ने प्रस्तावित किया था और जिसे कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति द्वारा रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी संघ तथा उक्रइनी सोवियत समाजवादी जनतंत्र, बेलोरूसी सोवियत समाजवादी जनतंत्र और पार-काकेशिया संघ के बीच आगे के संबंधों के प्रश्न की परीक्षा कर समिति के पूर्णाधिवेशन के सम्मुख उपस्थित करने के उद्देश्य से स्थापित आयोग द्वारा सितंबर, १९२२ में स्वीकार किया गया था। लेनिन ने पॉलिटब्यूरो के सदस्यों के नाम २७ सितंबर, १९२२ के अपने पत्र में इस मसौदे की कड़ी आलोचना की। उन्होंने समस्या का एक दूसरा समाधान प्रस्तावित किया, जो सिद्धांततः भिन्न था। यह समाधान था: रूसी संघ समेत सभी सोवियत जनतंत्रों का पूर्ण समानता के आधार पर एक नये राज्य-संगठन, सोवियत जनतंत्रों के संघ में, स्वैच्छिक एकीकरण। लेनिन ने लिखा था: "हम अपने को उक्रइनी सोवियत समाजवादी जनतंत्र तथा अन्य गणतंत्रों के बराबर मानते हैं और उनके साथ समानता के आधार पर एक नये समवाय में, एक नये संघ में प्रवेश करते हैं..." केंद्रीय समिति के आयोग ने प्रस्ताव के मसौदे को लेनिन के सुझावों के मुताबिक़ संशोधित किया। अक्तूबर, १९२२ में पार्टी की केंद्रीय समिति के पूर्णाधिवेशन ने इन सुझावों पर आधारित नये मसौदे को अनुमोदित किया। केंद्रीय समिति के निर्णय के आधार पर जनतंत्रों के संघ के लिए तैयारी का काम आगे बढ़ा। ३० दिसंबर, १९२२ को सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की सोवियतों की पहली कांग्रेस ने सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना का ऐतिहासिक निर्णय लिया। – २००

[104] रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केंद्रीय समिति के अक्तूबर तथा दिसंबर, १९२२ में हुए पूर्णाधिवेशन, जिनकी कार्यसूचियों में सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना का प्रश्न शामिल था। – २००

[105] **देर्जिमोर्दा** – गोगोल के प्रहसन 'इंसपैक्टर-जनरल' में एक पुलिसमैन का नाम, जो धृष्ट उत्पीड़क तथा अत्याचारी के चारित्रिक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होता है। – २०१

नाम-निर्देशिका

अ

आ

ए

ओ

क

कोल्युबाकिन, अलेक्सान्द्र मिखाइलोविच (१८६८–१९१५) – राजनीतिज्ञ, प्रमुख कैडेट। – ८४

कोसोव्स्की, व्ला० (लेविन्सन, म० य०) (१८७०–१९४१) – बुंद के एक नेता। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (१९०३) में बुंद की वैदेशिक समिति का प्रतिनिधित्व किया; 'ईस्क्रा'-विरोधी; कांग्रेस के बाद मेंशेविक। प्रतिक्रिया के वर्षों (१९०७–१९१०) में और क्रांतिकारी आंदोलन के पुनरुत्थान के समय मेंशेविकों और विसर्जनवादियों की पत्रिका 'नाशा जार्या' तथा 'लूच' समाचार-पत्रों में काम किया। पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १२७

कोस्त्रोव (जोर्दानिया, नोई निकोलायेविच) (१८७०–१९५३) – सामाजिक-जनवादी, काकेशियाई मेंशेविकों के एक नेता। प्रतिक्रिया के काल (१९०७–१९१०) में और क्रांतिकारी आंदोलन के पुनरुत्थान के दौरान विसर्जनवादियों के समर्थक। १९१४ में त्रोत्स्की की 'बोर्बा' पत्रिका के कार्यकर्ता; पहले विश्वयुद्ध के समय में – सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – ११४

क्रॉमवेल, ऑलिवर (१५९९–१६५८) – १७वीं शताब्दी की ब्रिटिश बुर्जुआ क्रांति के प्रमुख नेता; १६५३ से ब्रिटेन के लॉर्ड प्रोटेक्टर (शासनाध्यक्ष)। – १०६

क्रिस्टन, एटबिन (१८६७–१९५३) – स्लोवेनियाई राजनयिक, लेखक और पत्रकार। पहले विश्वयुद्ध से पहले स्लोवेनिया में सामाजिक-जनवादी आंदोलन के एक नेता। अनेक मज़दूर समाचारपत्रों में काम किया। – ९, ३९

क्रेस्तोवनिकोव, ग्रिगोरी अलेक्सांद्रोविच (जन्म १८५५) – बड़े रूसी उद्योगपति और दलाल; राजतंत्रवादी बुर्जुआजी की पार्टी – अक्तूबरवादी पार्टी – के एक नेता। – १२९

क्रोपोत्किन, प्योत्र अलेक्सेयेविच (१८४२–१९२१) – अराजकतावाद के एक प्रमुख नेता और सिद्धांतकार। पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १२८

ग

गरीबाल्दी, जुज़ेप्पे (१८०७–१८८२) – इटली के राष्ट्रनायक; इतालवी क्रांतिकारी-जनवादियों के एक अग्रणी नेता और प्रमुख सेनापति। १८४८–१८६७ में विदेशी गुलामी, सामंती एकतंत्र और धार्मिक प्रतिक्रिया के विरुद्ध इटली के जन-संघर्ष का नेतृत्व किया। – १०४, १४१

गांकेविच, निकोलाई (जन्म १८६९) – उक्रइनी (गैलीशियाई) सामाजिक-जनवादी पार्टी के एक संस्थापक और नेता, राष्ट्रवादी। – ७०

गुचकोव, अलेक्सांद्र इवानोविच (१८६२–१९३६) – बड़े रूसी पूंजीपति, अक्तूबरवादी पार्टी के एक संगठनकर्ता और नेता। – १२९

गोर्टर, हर्मन (१८६४–१९२७) – वामपंथी डच सामाजिक-जनवादी, पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीयतावादी, वामपंथी ज़िम्मरवाल्डवादियों के समर्थक। – १४३, १८६

गोल्दब्लात (मेदेम, व्लादीमिर दवीदोविच) (१८७९–१९२३) – बुंद के एक नेता। – ५०, ५१, ११५, ११६

ग्लैडस्टन, विलियम (१८०९–१८९८) – विख्यात ब्रिटिश राजनीतिज्ञ, लिबरल पार्टी (उदार दल) के नेता। कई मंत्रिमंडलों के सदस्य; १८६८–१८७४ और बाद के वर्षों में बार-बार प्रधानमंत्री। जनता के निम्न-बुर्जुआ अंशकों और मज़दूर वर्ग के उच्च स्तर को लिबरल पार्टी की ओर खींचने के लिए सामाजिक धोखाधड़ी और मामूली सुधारों का व्यापक उपयोग किया। औपनिवेशिक नीति चलायी। – १०७

ग्वोज़्देव, कुज़्मा अंतोनोविच (जन्म १८८३) – मेंशेविक; पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १५२, १८८

च

चेर्निशेव्स्की, निकोलाई गव्रीलोविच (१८२८–१८८९) – रूसी क्रांतिकारी-जनवादी और यूटोपियाई समाजवादी, वैज्ञानिक, लेखक,

साहित्य समीक्षक; १९वीं शताब्दी के सातवें दशक में रूस के क्रांतिकारी-जनवादी आंदोलन के विचारक और नेता तथा रूसी सामाजिक-जनवाद के महान पूर्ववर्ती। – ३१, १००

छ

छेईद्ज़े, निकोलाई सेम्योनोविच (१८६४–१९२६) – जार्जियाई सामाजिक-जनवादी, मेंशेविक। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में – सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १५२

ज

जार्ज पंचम (१८६५–१९३६) – ब्रिटिश सम्राट (१९१०–१९३६)। – १८३

ज़िनोव्येव, ग्रिगोरी येव्सेयेविच (१८८३–१९३६) – १९०१ से रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के सदस्य। १९०८ से अप्रैल, १९१७ तक प्रवास में रहे थे। अक्तूबर क्रांति के बाद पेत्रोग्राद सोवियत के अध्यक्ष, कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के पोलिटब्यूरो के सदस्य, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष। पार्टी की लेनिनवादी नीति का खुलकर विरोध किया। अक्तूबर क्रांति को सम्पन्न करने की तैयारी के समय हिचकिचाहट दिखायी और सशस्त्र विद्रोह का विरोध किया। १९२५ में "नये विरोध पक्ष" के एक संगठनकर्ता। १९२६ में त्रोत्स्की-ज़िनोव्येव पार्टीविरोधी पक्ष के एक नेता। नवंबर, १९२७ में गुटबंदी की गतिविधियों के कारण पार्टी से निकाल दिये गये। फिर दो बार पार्टी में शामिल तथा अलग किये गये। – २००

जूनियस – देखिये **लुक्ज़ेमबुर्ग, रोज़ा।**

ड

डेविड, एडुआर्ड (१८६३–१९३०) – जर्मन सामाजिक-जनवाद के दक्षिण पक्ष के एक नेता; संशोधनवादी; अर्थशास्त्री। जर्मन अवसर-

वादियों की *Sozialistische Monatshefte* पत्रिका के एक संस्थापक। १९०३ से जर्मन संसद के सदस्य। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १५२

त

तुगान-बारानोव्स्की, मिख़ाईल इवानोविच (१८६५–१९१९) – रूसी बुर्जुआ अर्थशास्त्री, "क़ानूनी मार्क्सवाद" के एक प्रतिनिधि। १९०५–१९०७ की क्रांति के समय कैडेट पार्टी के सदस्य। – ६, ३८

त्रुबेत्सकोई, येव्गेनी निकोलायेविच (१८६३–१९२०) – राजकुमार, रूसी बुर्जुआ उदारवाद के एक विचारधारानिरूपक, प्रत्ययवादी दार्शनिक। १९०५–१९०७ की पहली रूसी क्रांति का दमन करनेवालों में से एक; स्तोलीपिन व्यवस्था के एक संस्थापक। पहले विश्वयुद्ध के समय रूसी साम्राज्यवाद के एक विचारधारानिरूपक। – ६६

त्रोत्स्की (ब्रोनस्टीन), लेव दवीदोविच (१८७९–१९४०) – लेनिनवाद के घोरतम शत्रु। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस में अल्पमत के 'ईस्क्रा'-पंथी; मेंशेविक। कांग्रेस के बाद समाजवादी क्रांति के सिद्धांत और व्यवहार से संबंधित सभी प्रश्नों पर बोल्शेविकों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। प्रतिक्रिया के काल (१९०७–१९१०) में – विसर्जनवादी; पहले विश्वयुद्ध के दौरान मध्य-वादी रुख़ अपनाया; युद्ध, शांति और क्रांति के प्रश्नों पर लेनिन के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। अक्तूबर क्रांति की पूर्ववेला में बोल्शेविक पार्टी में प्रवेश किया, पर अपने फूटपरस्त क्रियाकलाप सक्रियतापूर्वक जारी रखे। १९१८ में ब्रेस्त शांति संधि का विरोध किया। १९२०–१९२१ में कम्युनिस्ट पार्टी ने त्रोत्स्कीवाद का परदाफ़ाश कर दिखा दिया कि यह पार्टी की निम्न-बुर्जुआ प्रवृत्ति है। पार्टी ने इस प्रवृत्ति को विचारधारात्मक और संगठनात्मक दोनों प्रकार से उखाड़ फेंक दिया। १९२७ में त्रोत्स्की को पार्टी से निकाल दिया गया। १९२९ में सोवियतविरोधी गतिविधियों के लिए देश से निष्कासित कर दिया गया और फिर सोवियत नागरिकता से वंचित कर दिया गया। – ११८, १४४, १९९

16*

द

दोन्त्सोव, द्मित्रो – उक्रइनी निम्न-बुर्जुआ सामाजिक-जनवादी पार्टी के सदस्य। पहले विश्वयुद्ध के दौरान 'उक्रइनी स्वतंत्रता संघ' के एक संस्थापक। इस राष्ट्रवादी संगठन ने आस्ट्रियाई राजतंत्र की सहायता से उक्रइना को रूस से अलग करने का काम हाथ में लिया था। – २७, ३०, ७६, ८०

दोल्गोरूकोव, पावेल द्मीत्रियेविच (१८६६ – १९३०) – राजकुमार, बड़े ज़मींदार; बुर्जुआ कैडेट पार्टी के एक संस्थापक। १९०५ – १९११ के दौरान कैडेट पार्टी की केंद्रीय समिति के प्रधान। – १२६

द्ज़ेर्जीन्स्की, फ़ेलिक्स एद्मुन्दोविच (१८७७ – १९२६) – कम्युनिस्ट पार्टी तथा सोवियत राज्य के प्रमुख नेता। – २००, २०१, २०२, २०५

द्रागोमानोव, मिख़ाईल पेत्रोविच (१८४१ – १८९५) – उक्रइनी पत्रकार और इतिहासकार; उक्रइनी राष्ट्रवादी-उदारवाद की विचारधारा के निरूपक। "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" का समर्थन किया। – ४७, १००

न

निकोलाई द्वितीय, रोमानोव (१८६८ – १९१८) – रूस के अंतिम सम्राट (१८९४ – १९१७)। – १३२, १८३

नेक्रासोव, निकोलाई विस्सारिओनोविच (जन्म १८७९) – कैडेट, तीसरी और चौथी राजकीय दूमाओं के सदस्य। – ८४

प

पार्वुस (गेल्फ़ांद, अ० ल०) (१८६९ – १९२४) – मेंशेविक, १९वीं सदी के अंतिम दशक और २०वीं सदी के शुरू में जर्मन और रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन के वामपंथी सदस्य। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (१९०३) के बाद – मेंशेविक। पहले विश्वयुद्ध के ज़माने में घोर सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। १९१५ से *Die Glocke* नामक पत्रिका के प्रकाशक। – १४४, १६८

पुरिश्केविच, व्लादीमिर मित्रोफ़ानोविच (१८७० – १९२०) – बड़े ज़मींदार, राजतंत्रवादी, प्रतिक्रियावादी-यमदूतसभाई। दूसरी, तीसरी और चौथी राजकीय दूमाओं के सदस्य। दूमा में यहूदीविरोधी भड़कावों के लिए कुख्यात। – १९, २४, २७, ३१, ३७, ८२, ८३, १२२-१२६, १३०-१३२

पेशेख़ोनोव, अलेक्सेई वसील्येविच (१८६७ – १९३३) – बुर्जुआ सार्वजनिक कार्यकर्ता और पत्रकार। १९०६ में निम्न-बुर्जुआ जन-समाजवादी पार्टी के एक नेता। – १४, १२५,

पोत्रेसोव, अलेक्सान्द्र निकोलायेविच (१८६९ – १९३४) – एक मेंशेविक नेता। प्रतिक्रिया के (१९०७–१९१०) और क्रांतिकारी आंदोलन के पुनरुत्थान के वर्षों में विसर्जनवादी विचारधारा के निरूपक; 'नाशा ज़ार्या' और दूसरे मेंशेविक-विसर्जनवादी पत्रों में मुख्य पदों पर काम दिया। पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १८८, १९८, १९९

पोम्यालोव्स्की, निकोलाई गेरासिमोविच (१८३५ – १८६३) – रूसी जनवादी लेखक। अपनी कृतियों में रूस की राजतंत्रीय नौकरशाही, हिंसा और अत्याचार का भंडाफोड़ किया। – ११९

प्रूदों, पियेर जोज़ेफ़ (१८०९–१८६५) – फ़्रांसीसी पत्रकार, अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री, निम्न-बुर्जुआज़ी विचारधारानिरूपक, अराजकतावाद के एक संस्थापक। बड़े पूंजीवादी स्वामित्व की निम्न-बुर्जुआ दृष्टिकोण से आलोचना करते हुए प्रूदों छोटे निजी स्वामित्व के चिरस्थायित्व का सपना देखते थे। प्रूदों ने सभी वर्ग विरोधों का स्रोत राज्य को ही समझा और उसके शांतिपूर्ण तरीक़ों से "नष्ट किये जाने" की कल्पना की। राजनीतिक संघर्ष को महत्वहीन समझा।

प्रूदों और उनके अनुयायियों के जातीय प्रश्न संबंधी विचार भी सिर से पैर तक ग़लत थे। यह मानते हुए कि "जातीयता" और "जाति" सिवाय "प्राचीन अंधविश्वास" के और कुछ नहीं हैं, प्रूदोंवादियों ने उत्पीड़ित जनता द्वारा चलाये जानेवाले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का विरोध किया।

मार्क्सकृत 'दर्शनशास्त्र की दरिद्रता' और अन्य रचनाओं में प्रूदों-

वाद के अवैज्ञानिक तथा प्रतिक्रियावादी सिद्धांत और राजनीतिक दृष्टिकोण की कठोर आलोचना की गयी है। – ३३, १०४, १०५

प्लेखानोव, गेओर्गी वलेंतीनोविच (१८५६ – १९१८) – रूसी और अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के प्रमुख नेता, रूस में मार्क्सवाद के प्रथम प्रचारक, रूस के पहले मार्क्सवादी संगठन, 'श्रम मुक्ति' दल के संस्थापक। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (१९०३) के बाद मेंशेविक। पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी स्थिति अपनायी। प्लेखानोव ने अक्तूबर समाजवादी क्रांति के प्रति नकारात्मक रवैया अख़्तियार किया, लेकिन सोवियत सत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष में भाग नहीं लिया। – १३, १४, ३१, ८१, ११२, ११३, ११६, १२०, १२८, १३३, १४७, १५२, १६६

प्वांकारे, रेमों (१८६० – १९३४) – फ़ांसीसी प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञ, पहले विश्वयुद्ध के एक अनुप्रेरक; बार-बार मंत्री और प्रधानमंत्री रहे; १९१३ – १९२० में फ़ांसीसी गणराज्य के राष्ट्रपति। – १८३

ब

बर्नस्टीन, एडुआर्ड (१८५० – १९३२) – जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के घोर अवसरवादी पक्ष और दूसरे इंटरनेशनल के एक नेता, संशोधनवाद और सुधारवाद के सिद्धांतकार। – ६, १०

बावेर, ओटो (१८८२ – १९३८) – आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवाद और दूसरे इंटरनेशनल के एक नेता, सुधारवाद के एक रूप तथाकथित "आस्ट्रियाई मार्क्सवाद" के सिद्धांतकार और बुर्जुआ-राष्ट्रवादी "सांस्कृतिक-जातीय स्वायत्तता" सिद्धांत के एक रचयिता। व्ला० इ० लेनिन ने इस सिद्धांत के अवसरवादी अर्थ का भंडाफोड़ किया था। – ६, २७, ३८, ५७, ५८, १३८

बिस्मार्क, ओटो (१८१५ – १८९८) – राजकुमार, राजतंत्रवादी, प्रशा के राजनीतिज्ञ। १८७१ – १८९० में जर्मन साम्राज्य के प्रथम चान्सलर। प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का बलपूर्वक एकीकरण संपन्न किया। – १०४, १३२

बुल्गाकोव, सेर्गेई निकोलायेविच (१८७१ – १९४४) – बुर्जुआ अर्थशास्त्री, प्रत्ययवादी दार्शनिक; १९वीं शताब्दी के अंतिम दशक में "क़ानूनी मार्क्सवादी"। १९०५ – १९०७ की क्रांति के बाद कैडेटों से नाता जोड़ लिया। – ६

बूर्त्सेव, व्लादीमिर ल्वोविच (१८६२ – १९३६) – उदार-बुर्जुआ प्रकाशक, समाजवादी-क्रांतिकारियों के समर्थक, १९०५ – १९०७ की क्रांति की पराजय के बाद कैडेटों का समर्थन किया। पहले विश्वयुद्ध के दौरान घोर अंधराष्ट्रवादी। ज़ारशाही का विरोध करने से इन्कार किया; प्रतिक्रांतिकारियों के साथ मिलकर बोल्शेविकों के ख़िलाफ़ संघर्ष किया। – १२८

बेरदियायेव, निकोलाई अलेक्सांद्रोविच (१८७४ – १९४८) – रूसी प्रतिक्रियावादी, प्रत्ययवादी दार्शनिक, रहस्यवादी और मार्क्सवादविरोधी; १९०५ से कैडेट। – ३८

बेर्नहार्ड, लुड्विग (१८७५ – १९३५) – जर्मन अर्थशास्त्री और पत्रकार। एक अरसे तक पोलिश-प्रशाई राजनीति में सक्रिय रहे। पोलैंडवासियों को जर्मनी के अधीनस्थ कराये जाने के पक्ष में थे। – १२५

बोब्रिन्स्की, व्लादीमिर अलेक्सेयेविच (जन्म १८६८) – रूसी राजतंत्रवादी, बड़े ज़मींदार और चीनी के कारख़ानेदार। बोब्रिन्स्की ने देश के सरहदी इलाक़ों के रूसीकरण की नीति का समर्थन किया। – १३०, १३२

बोरहार्ड्ट, जूलिआन (१८६८ – १९३२) – जर्मन सामाजिक-जनवादी, अर्थशास्त्री और लेखक। १९१३ – १९१६ और १९१८ – १९२१ में वामपंथी सामाजिक-जनवादी *Lichtstrahlen* पत्रिका के संपादक। – १८६

म

माज़ेपा, इवान स्तेपानोविच (१६४४ – १७०६) – उक्रइनी हेतमान (फ़ौजी सरदार), उक्रइना को रूस से अलग करने और उसे पोलैंड अथवा स्वीडन के संरक्षण में एक अलग राज्य का रूप देने के उद्देश्य से चलाये गये आंदोलन का नेतृत्व किया। – ८६

मार्क्स, कार्ल (१८१८ – १८८३) – २६, ५६, ६३, १००-१११, १३०, १३२, १३८, १४१, १४२, १४५, १५४, १७५-१७८

मार्तीनोव, अलेक्सान्द्र समोइलोविच (पीकेर) (१८६५ – १९३५) – "अर्थवादियों" के एक नेता, प्रमुख मेंशेविक, बाद में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य। पहले विश्वयुद्ध के दौरान मध्यमार्गी स्थिति अपनायी। – ११५

मार्तोव, लेव (ज़ेदेरबाउम, यूली ओसिपोविच) (१८७३ – १९२३) – एक मेंशेविक नेता; प्रतिक्रिया के काल में (१९०७ – १९१०) विसर्जनवादियों का समर्थन किया। पहले विश्वयुद्ध के समय में मध्यमार्गी स्थिति अपनायी। – १२२, १५२, १६३, १८६, १९५

मास्लोव, प्योत्र पाव्लोविच (१८६७ – १९४६) – रूसी सामाजिक-जनवादी, अर्थशास्त्री; भूमि-समस्या पर अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें मार्क्सवाद का संशोधन करने की कोशिश की। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (१९०३) के बाद – मेंशेविक। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद राजनीतिक सरगरमी से हाथ खींच लिया और शिक्षा तथा विज्ञान संबंधी कामों में लग गये। – १२८

मेज़्ज़िनी, जुज़ेप्पे (१८०५ – १८७२) – सुप्रसिद्ध इतालवी क्रांतिकारी तथा बुर्जुआ जनवादी, जिन्होंने इटली की राष्ट्रीय मुक्ति और एकीकरण के लिए संघर्ष किया। – १०४

मेदेम – देखिये गोल्दब्लात।

मेन्शिकोव, मिखाईल ओसिपोविच (१८५९ – १९१९) – प्रतिक्रियावादी पत्रकार और यमदूतमभाई 'नोवोये व्रेम्या' नामक समाचारपत्र के एक कर्मचारी। – १२८

मोगिल्यान्स्की, म० म० (१८७३ – १९४२) – वकील, पत्रकार, १९०६ से – कैडेट। 'रेच' नामक कैडेट पार्टी के मुखपत्र में उक्रइना के प्रश्न पर लेख लिखे। – ७९, ८०

य

युरकेविच, ल० (ल० रिबालको) (१८८५ – १९१८) – उक्रइनी बुर्जुआ-राष्ट्रवादी, अवसरवादी। उक्रइनी मज़दूरों की अलग सामाजिक-जनवादी पार्टी स्थापित करने के हिमायती। १९१३ – १९१४ में मेंशेविक प्रवृत्ति की राष्ट्रवादी पत्रिका 'द्ज्विन' में सक्रिय रहे। – १६, २७, २६, ३०, ३८, ५३, ६१, ८१, ८२, ८८, ९६, ११२, १२०, १२२, १४४, १९८

र

रदीश्चेव, अलेक्सांद्र निकोलायेविच (१७४९ – १८०२) – रूसी लेखक, क्रांतिकारी ज्ञान-प्रसारक। – १२९

रादेक, कार्ल बेर्नगार्दोविच (१८८५ – १९३९) – २०वीं सदी के शुरू में गैलीशिया, पोलैंड और जर्मनी के सामाजिक-जनवादी आंदोलन में भाग लिया; पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीयतावादी, परंतु मध्यमार्ग की ओर नत थे; जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की समस्या पर ग़लत रुख अपनाया। १९१७ से बोल्शेविक पार्टी के सदस्य। १९२३ से त्रोत्स्कीपंथी पार्टी-विरोधी पक्ष के एक सक्रिय कार्यकर्ता; १९३६ में अपनी पार्टीविरोधी सरगरमियों के कारण पार्टी से निकाल दिये गये। – १६२, १८६, १८७, १९३

रियाज़ानोव, दवीद बोरीसोविच (गोल्देनदाख़) (१८७० – १९३८) – रूसी सामाजिक-जनवादी। पहले विश्वयुद्ध के दौरान मध्यमार्गी। – १७८

रुबानोविच, इल्या अदोल्फ़ोविच (१८६० – १९२०) – निम्न-बुर्जुआ समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी के एक नेता; पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १२८, १४७

रेआद, निकोलाई अन्द्रेयेविच (१७६२ – १८५५) – रूसी जनरल, १८५३ – १८५६ के क्रिमियाई युद्ध में भाग लिया। – १२२

रेगेर, तादेउश (१८७२ – १६३८) – गैलीशिया और साइलेशिया में पोलिश सामाजिक-जनवादी पार्टी के सदस्य, पत्रकार। १६०३ से १६२० तक *Robotnik Slaski* (साइलेशियाई मज़दूर) नामक समाजवादी साप्ताहिक के संस्थापक और संपादक; अनेक पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखा। १६११ से १६१७ तक आस्ट्रियाई संसद के सदस्य। – ७०

रेनर, कार्ल (१८७० – १६५०) – आस्ट्रिया के एक राजनयिक; आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवाद के दक्षिण पक्ष के एक नेता और सिद्धांतकार। बुर्जुआ-राष्ट्रवादी "सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता" के सिद्धांत के एक निरूपक। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १३८

रेनोदिल, पियेर (१८७१ – १६३५) – फ़ांसीसी दक्षिणपंथी समाजवादी। पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १४५

रोदिचेव, फ़्योदोर इवानोविच (१८५६ – १६३२) – बड़े ज़मींदार और ज़ेम्सत्वो (स्थानीय स्वशासन) के सदस्य, वकील, कैडेट पार्टी के एक नेता और उसकी केंद्रीय समिति के सदस्य, सभी राजकीय दूमाओं के सदस्य। – १२६

रोमानोव – १६१३ से १६१७ तक रूस में राज करनेवाले ज़ारों और सम्राटों का राजवंश। – १३२

रोमानोव, निकोलाई – देखिये निकोलाई द्वितीय।

ल

लफ़ार्ग, पाल (१८४२ – १६११) – फ़ांसीसी और अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के एक प्रमुख कार्यकर्ता, प्रतिभाशाली पत्रकार, फ़ांस में वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के पहले चंद अनुयायियों में से एक, कार्ल मार्क्स और फ़ेडरिक एंगेल्स के मित्र तथा सहकर्मी। पहले इंटरनेशनल के सदस्य। जूल गेद के साथ फ़ांस की मज़दूर पार्टी के संस्थापक और पार्टी के मुखपत्र *L'Egalité* (समानता) – के संपादक। अपनी बहुसंख्यक रचनाओं में अर्थशास्त्र, दर्शन, इतिहास और भाषाविज्ञान संबंधी मार्क्सवाद के सिद्धांतों का समर्थन तथा प्रचार किया। सुधारवाद और संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष किया। फिर भी किसानों की समस्या, जातीय प्रश्न और समाजवादी क्रांति के कार्यभारों के प्रश्न से संबंधित उनकी रचनाओं में सैद्धांतिक ग़लतियां हैं। – १०४, १०५

ल० व्ला० (ल० व्लादीमिरोव) – शेइनफ़िन्केल, मिरोन कोन्स्तान्तीनोविच (१८७६ – १६२५) का छद्मनाम। रूसी सामाजिक-जनवादी, बोल्शेविक। १६११ में बोल्शेविकों से अलग हो गये; पेरिस-प्रवास में जातीय प्रश्न पर व्याख्यान दिये (१६११)। १६१७ में छठी कांग्रेस में बोल्शेविक पार्टी में फिर से शामिल हुए। – १०६

लॉन्ग्वे, शार्ल (१८३६ – १६०३) – फ़ांसीसी मज़दूर आंदोलन के एक कार्यकर्ता, प्रूदोंवादी। १८६६ – १८६७ और १८७१ – १८७२ में पहले इंटरनेशनल की महापरिषद के सदस्य। १८७१ में पेरिस कम्यून के सदस्य। पेरिस कम्यून की पराजय के बाद इंगलैंड चले गये, जहां १८८० तक रहे। वापस आने पर फ़ांस की मज़दूर पार्टी में एक अवसरवादी धारा के "संभावनावादियों" से जा मिले। – १०४

लासाल, फ़र्दीनांद (१८२५ – १८६४) – जर्मन निम्न-बुर्जुआ समाजवादी, जर्मन मज़दूर महासंघ के संस्थापक। महत्वपूर्ण राजनीतिक सवालों पर अवसरवादी स्थिति अपनायी, जिसके लिए मार्क्स और एंगेल्स ने उनकी कड़ी आलोचना की। – ६३

लीबमैन (हेर्श, पीसाख़) (जन्म १८८२) – बुंद के एक प्रमुख नेता। १६११ में बुंद की केंद्रीय समिति के सदस्य, विसर्जनवादियों के साथ गठबंधन किया। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में ज़ारशाही सरकार की देश-विजय की नीति का समर्थन किया। – १६, २१, २५, २६,

स

सावेंको, अनातोली इवानोविच (जन्म १८७४) – बुर्जुआ राष्ट्रवादी, पत्रकार, बड़े ज़मीदार। चौथी राजकीय दूमा के सदस्य; 'नोवोये व्रेम्या' और 'कियेवल्यानिन' (कीयेववासी) नामक यमदूत-सभाई समाचारपत्रों के सहकर्मी। – ८६

सेम्कोव्स्की (ब्रोनस्टीन, सेम्योन यूल्येविच) (जन्म १८८२) – रूसी सामाजिक-जनवादी, मेंशेविक, अनेक मेंशेविक-विसर्जनवादी और विदेशी सामाजिक-जनवादी पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखा। व्ला० इ० लेनिन ने अपनी कई रचनाओं में सेम्कोव्स्की के जातीय तथा अन्य प्रश्नों से संबंधित विचारों की ज़ोर की आलोचना की। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में मध्यमार्गी। १९२० में मेंशेविकों से अलग हो गये। – ११-१४, ४०, ४२, ५३-५५, ६१, ७४, ८१, ८२, ८८, ९८, ११२, १२१, १२२, १२४, १४४, १९८, १९९

सोकोलोव्स्की (बासोक), (मेलेनेव्स्की मि० इ०) (१८७९ – १९३८) – उक्रइनी राष्ट्रवादी, मेंशेविक। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में जर्मनपंथी 'उक्रइनी स्वतंत्रता संघ' के सदस्य। – २९

स्टर्नर, माक्स (जोहन कास्पर श्मिद्‌त) (१८०६ – १८५६) – जर्मन दार्शनिक, बुर्जुआ व्यष्टिवाद और अराजकतावाद के एक सिद्धांतकार। – १०५

स्तालिन, जोज़ेफ़ विस्सारिओनोविच (१८७९ – १९५३) – रूसी और अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी मज़दूर आंदोलन के एक प्रमुख कार्यकर्ता। १८९८ में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी में शरीक हुए। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद जातीय मामलों के जन-कमिसार और १९१९ – १९२० में राजकीय नियंत्रण जन-कमिसार; बाद में मज़दूर किसान निरीक्षण जन-कमिसार। १९२२ से १९५३ तक पार्टी की केंद्रीय समिति के महासचिव। १९४१ से १९४६ तक जन-कमिसार परिषद के अध्यक्ष, बाद में सोवियत मंत्रि-परिषद के अध्यक्ष। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वर्षों में राजकीय प्रतिरक्षा परिषद के अध्यक्ष तथा सर्वोच्च सेनापति। – ७, २०२, २०५

स्तोलीपिन, प्योत्र आर्कादियेविच (१८६२ – १९११) – घोर प्रतिक्रियावादी, १९०६ से १९११ तक मंत्रिपरिषद के अध्यक्ष। १९०५ – १९०७ की पहली रूसी क्रांति के दमनकर्ता; घोर राजनीतिक प्रतिक्रिया की १९०७ से १९१० तक की एक पूरी मुद्दत उनके नाम के साथ जुड़ी हुई है। – ७, १८८

स्त्रूवे, प्योत्र बेर्नगार्दोविच (१८७० – १९४४) – बुर्जुआ अर्थशास्त्री और पत्रकार; "क़ानूनी मार्क्सवाद" के एक प्रतिनिधि, बाद में कैडेट पार्टी की केंद्रीय समिति के सदस्य। – ९, १४, २४, ३१, ३८, १००, १६८, १७४

स्मिर्नोव ए० (गुरेविच, एमानुईल ल्वोविच) (जन्म १८६५) – रूसी सामाजिक-जनवादी, मेंशेविक; प्रतिक्रिया के (१९०७ – १९१०) और क्रांतिकारी आंदोलन के पुनरुत्थान के वर्षों में विसर्जनवादी। पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी। – १२८

ह

हानेत्स्की, याकोव स्तानिस्लावोविच (१८७९ – १९३७) पोलैंड और रूस के क्रांतिकारी आंदोलन के एक प्रमुख कार्यकर्ता। पोलैंड और लिथुआनिया की अनेक सामाजिक-जनवादी कांग्रेसों में तथा रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी, चौथी और पांचवीं कांग्रेसों में भाग लिया। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में वामपंथी ज़िम्मरवाल्डवादियों से नाता जोड़ा। – ११३, ११४

हिंडेनबुर्ग, पाल फ़ॉन (१८४७ – १९३४) – जर्मन जनरल, राजतंत्रवादी। १९१६ – १९१७ में जर्मन सेना के प्रधान सेनापति, प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी के राष्ट्रपति (१९२५ – १९३४)। – १५०, १६२

हेक्कर, एमिल (१८७५ – १९३४) – पोलैंड की समाजवादी पार्टी के दक्षिण पक्ष के नेता, घोर राष्ट्रवादी। १८९४ से, लगभग ४० वर्षों के दौरान *Naprzód* नामक क्रैको समाजवादी समाचारपत्र के संपादक। १९०६ से १९१९ तक गैलीशिया और साइलेशिया में पोलैंड की सामाजिक-जनवादी पार्टी के एक नेता। – १००

होहेनज़ोलेर्न – प्रशा और ब्रैंडेनबर्ग (१४१५ – १९१८) तथा जर्मन साम्राज्य (१८७१ – १९१८) में राज करनेवाले सम्राटों का राजवंश। – १४८

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

प्रगति प्रकाशन,
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।